Master of Arts

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य और उसका इतिहास-1

(HINDI LITERATURE)

(DISTANCE MODE)

Centre for Distance and Online Education

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY

N.H.-24, Delhi Road,

Moradabad, Uttar Pradesh244001

Website: www.tmu.ac.in

EXPERT COMMITTEE

Dr.Omprakash Singh,
Assistant Professor
VARDHMAN COLLEGE BIJNOR, U.P.

Dr. Poonam Chauhan
Assistant Professor
S.B.D. GIRLS DEGREE COLLEGE DHAMPUR, U.P.

COURSE COORDINATOR

Dr. Namrta Jain
Assistant Professor
Faculty of Education, Teerthanker Mahaveer University. (TMU)

BLOCK PREPARATION

Unit Writers	Assisting & Proof Reading	
Dr. Namrta Jain,	**Dr. M. P. Singh**	**Dr. Vinod Kumar Jain**
Assistant Professor	**Professor**	**Associate Professor**
TMU	**TMU**	**TMU**

Secretarial Assistance and Composed By :

Mr. Deepak Malik
Assistant Registrar,
Faculty of Education, TMU.

COURSE INTRODUCTION

The Aadhunik Hindi Gady Sahity aur Unaka Itihaas -1 course, worth five credits and comprising five blocks, aims to enhance your understanding of political concepts and provide knowledge about various states.

This course adopts a cross-curricular approach to boost both your political and academic knowledge, making it easier and more efficient for you to comprehend study materials in other subjects.

The course is divided into five blocks of different units. The Block titles are as follows:

Block 1 **- व्याख्यांश**

Block 2 **- स्कंदगुप्त, आधे-अधूरे एवं गोदान से समीक्षात्मक**

Block 3 **- हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास**

Block 4 **- नाटककार**

Block 5 **- उपन्यासकार**

Each Unit is divided into sections and sub-sections. We begin each Unit with a statement of objectives to indicate what we expect you to achieve through the Unit. There are several activities in each section of the Unit which you must attempt. You should then check your answers with those given by us at the end of the Unit.

There are assignments based on this course. After completing the assignments, submitted to the CDOE, TMU. The assignment is evaluated and returned to you with comments which will help you to improve your proficiency in political Science.

We hope you enjoy the Course. Please attempt all the activities and exercises given in the Units.

Acknowledgements:

The material (pictures and passages) we have used is purely for educational purposes.

Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this

book. Should any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future editions of this book.

BLOCK INTRODUCTION

Block 1 (व्याख्यांश) has three Units. Under this theme we have covered the following topics:

Unit 1 : **स्कन्दगुप्त- जयशंकर प्रसाद**

Unit 2 : **आधे-अधूरे मोहन राकेश**

Unit 3 : **गोदान- प्रेमचंद**

"स्कन्दगुप्त" जयशंकर प्रसाद द्वारा ऐतिहासिक और सामाजिक पहलुओं को दर्शाता है, जबकि मोहन राकेश का "आधे-अधूरे" मानसिक संघर्ष और सामाजिक असंतोष को उजागर करता है। प्रेमचंद की "गोदान" भारतीय ग्रामीण जीवन की कठोर वास्तविकताओं और संघर्षों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। ये कृतियाँ भारतीय साहित्य में विविधता और गहराई का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो विभिन्न यथार्थों और भावनाओं को संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करती हैं।

We suggest you do all the activities in the Units, even those which you find relatively easy. This will reinforce your earlier learning.

Course Code: **DMAH102**	**CORE COURSE** **एम्.ए. प्रथम सेमेस्टर** **(हिंदी साहित्य)** **प्रश्नपत्र – द्वितीय** **आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य और उसका इतिहास -1**	**L-5** **T-0** **P-0** **C-5**
Course Outcomes:	पाठ्यक्रम अधिगम परिणाम को पढ़ने के उपरांत विद्यार्थी:-	
CO1.	हिंदी साहित्य इतिहास परंपरा के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि विकसित कर सकेंगे।	
CO2.	हिन्दी नाटक एवं कथेतर गद्य विधाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.	
CO3.	चयनित नाटकों और एकांकियों के माध्यम से अपने समय और समाज के अंतर्विरोधों को समझ सकेंगे.	
CO4.	चयनित हिन्दी निबंधो के माध्यम से अपने समय-बोध से परिचित हो सकेंगे.	
Course Content:		
Unit-1:	**व्याख्यांश** 1. स्कन्दगुप्त- जयशंकर प्रसाद 2. आधे-अधूरे मोहन राकेश 3. गोदान- प्रेमचंद	**10 Hours**
Unit-2:	स्कंदगुप्त, आधे-अधूरे एवं गोदान से समीक्षात्मक प्रश्न।	**10 Hours**
Unit-3:	हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियाँ और रचनाकारों पर निबंधात्मक प्रश्न।	**10 Hours**
Unit-4:	लघुत्तरीय प्रश्न- द्वतपाठ में निर्धारित गद्यकारों से सम्बद्ध दो लघुत्तरीय प्रश्न होंगे। नाटककार- भारतेन्दु हरीशचंद्र, डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल।	**10 Hours**
Unit-5:	उपन्यासकार जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, मन्नू भण्डारी।	**10 Hours**
Text Books:	1 जैनेन्द कुमार की कहानिया – सं. प्रदीप कुमार नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2 जयशंकर प्रसाद की यादगार कहानियां- जयशंकर प्रसाद-हिन्दी पॉकेट बुक्स, हरियाणा ३ हिन्दी का गद्य साहित्य डॉ० रामचन्द्र तिवारी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 4 गोदान- प्रेमचन्द 5 बारामासी - डॉ० ज्ञान चतुर्वेदी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 6 हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ० नगेन्द्र व डॉ० हरदयाल, मयूर बुक्स, नई दिल्ली 7 एक दुनिया समानान्तर सं. राजेन्द्र यादव	
Reference Books:	*** Latest editions of all the suggested books are recommended**	

इकाई – 1

व्याख्यांश

1. स्कन्दगुप्त- जयशंकर प्रसाद

2. आधे-अधूरे मोहन राकेश

3. गोदान- प्रेमचंद

रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शब्दार्थ

1.4 हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास

1.5 नाटक और एकांकी में अन्तर

1.6 हिन्दी एकांकी के उद्भव और विकास

1.7 उपन्यास का अर्थ एवं परिभाषा

1.8 हिन्दी उपन्यास के उद्भव और विकास

1.9 प्रेमचन्द के उपन्यासों की युगीन पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय

1.10 स्कन्दगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

1.11 शैली की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों की आलोचना

1.12 स्कन्दगुप्त' नाटक के आधार पर देवसेना का चरित्र-चित्रण

1.13 आधे-अधूरे (मोहन राकेश)

1.14 सारांश

1.15 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1.16 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास का अनुशीलन करने से यह तथ्य सामने आता है कि गद्य की उपस्थिति आदिकालीन साहित्य में विशुद्ध गद्य और चंपू विधा के रूप में रही है। चंपू यानी गद्य- पद्य मिश्रित विधा। भक्तिकाल में भी गद्य का स्वरूप अविकसित था। इस समय गद्य लेखन की दो प्रवृत्तियों थीं। एक काव्यात्मक गद्य लेखन जिसमें तुक का मिलना अनिवार्य था और दूसरा तुक रहित गद्य लेखन। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक पद्य की तुलना में प्राचीन गद्य साहित्य की उपस्थिति बहुत कम है। आधुनिक काल में हिंदी गद्य की रचनाओं का विपुल भंडार है। इसमे पहले के समय में भी अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत अपभ्रंश मिथित देशी भाषा (राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा) में गद्य की रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इससे प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी गद्य साहित्य उपलब्ध रहा है। उस समय 'गद्य' शब्द प्रचलित नहीं था पर गद्य साहित्य' को काव्य की कसौटी कहा जाता था।

संस्कृत में 'साहित्य' के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था, जिसमें गद्य और पद्य दोनों विधाओं की रचनाएँ शामिन मानी जाती थीं। बाद में 'काव्य' शब्द केवल 'पद्य' के लिए रूद्र हो गया। "संस्कृत में अनेक रूपों नाटक, कथा, आख्यायिका आदि की अत्यंत समृद्ध एवं मुविकमित परंपरा थी। अत हिंदी के प्रारंभिक युगों में गद्य का विकास न होने के पीछे 'मन्कृत के आदशों का पालन' करना नहीं अपितु उन्हें त्याग देना ही कारण है। वस्तुतः हिंदी में पूर्व अपश्वन में ही संस्कृत की गद्य-परंपरा बहिष्कृत एवं लुम हो चुकी थी।" (गणपतिचंद्र गुप्म)। अभिप्राय यह है कि सस्कृत में उपलब्ध गद्य साहित्य को उनके परवर्ती काल के माहित्यकारों ने पद्य बद्ध किया। संस्कृत गद्य से प्रेरणा लेकर उसे पद्य में परिवर्तित करने का काम अपभ्रंश के कवियों ने पहले किया। आधुनिक काल में पूर्व युगों की राग-प्रेम और कल्पनाशीलता का स्थान नार्किकता, बौद्धिकता और यथार्थता ने ने रखा है। इसी में इस काल में गद्य को अबाधित विस्तार भूमि प्राम हो रही है। इस कान के गद्य लेखन को लक्षित करते हुए, आचार्य रामचंद्र शुक्न ने इसे गद्य पान की संज्ञा से विभूषित किया। प्राचीन भाषाओं में गय माहित्य की कम उपस्थिति का एक कारण यह भी हो सकता है कि इस ओर पर्याम खोज अभी भी बाकी है।

1.2 उद्देश्य

- इस इकाई में हिंदी गद्य के उद्भव और विकास की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-
- आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की परिस्थितियों में अवगत हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य के विकास के कारक तत्वों में परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य की विकास यात्रा को समझ सकेंगे।

1.3 शब्दार्थ

1. क्रमिक = सिलसिलेवार
2. तदनुरूप = उसके अनुसार
3. प्रयुक्त = प्रयोग किया गया
4. बहिष्कृत = निकाल दिया जाना
5. लुप्त = अदृश्य हो जाना

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियाँ

1.4 हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास

हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

साहित्य के दृश्य और श्रव्य दो विभेद किए जाते हैं, जिनमें से दृश्य काव्य का आजकल माध्यम नाटक ही है। नाटक के उद्भव की दृष्टि से यद्यपि यह तथ्य उल्लेखनीय है कि संस्कृत के साहित्य में नाटकों की बड़ी समृद्ध परम्परा है, तथापि नाटक के अधुनाटक स्वरूप पर पाश्चात्य नाटकों का ही अधिक प्रभाव है। चौदहवीं से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक ब्रजभाषा मे कुछ संस्कृत के नाटकों का अनुवाद किया गया तथा छुटपुट रूप में कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गए। उदाहरण के लिए विद्यापति के रुकमणी-हरण, कृष्ण जीवन चरित्र, प्राणचन्द का रामायण महानाटक, हृदय का हनुमन्नाटक, बनारसीदास का समयसार, निवाज का शकुन्तला तथा ब्रजभाषीदास का प्रबौध चन्द्रोम ऐसे ही नाटक हैं, जिनमें मौलिकता के साथ-साथ संस्कृत के नाटकों का प्रभाव परिलक्षित होता है। उपर्युक्त सभी नाटक पद्यबद्ध हैं।

हिन्दी गद्य में लिखा गया प्रथम नाटक कौन-सा है? यह तथ्य किंचित विवादास्पद है। कुछ विद्वान ब्रजभाषा गद्य में लिखा गया प्रथम नाटक भारतेन्दु के पिता गिरिधरदास रचित 'नहषु' नामक नाटक को मानते हैं। राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास के शकुन्तला नामक

नाटक का अनुवाद करते हुए उसके पद्य भाग के लिए ब्रजभाषा तथा गद्य भाग के लिए खड़ी बोली का प्रयोग किया है। कुछ विद्वान् सन् (1830 ई. में रचित महाराज विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द- रघुनंदन' नामक नाटक को हिन्दी का प्रथम आधुनिक नाटक स्वीकार करते है। वास्तव में नहुष की भांति आनन्द रघुनन्दन में भी नाटकीय तत्वों का सम्यक पुट नहीं मिलता। अधिकांश विद्वान् नाटको के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को स्वीकार करते हैं, क्योकि स्वयं उनके द्वारा अनुवादित और मौलिक रूप में लिखित नाटकों द्वारा ही हिन्दी के नाटक साहित्य का विकास आरम्भ होता है। विकास क्रम की दृष्टि से आधुनिक कालीन नाटक साहित्य को निम्नांकित तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है-

1. भारतेन्दु युग, 2. प्रसाद युग, 3. प्रसादोत्तर युग।

1. भारतेन्दु युग-भारतेन्दु युगीन नाटकों के स्वरूप में भारतीय नाट्य शास्तर तथा पाश्चात्य नाटकों के स्वरूप के तत्वों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। एक ओर उनमें संस्कृत के नाटकों के समान नान्दी, प्रस्तावना, विदूषक, भरतवाक्य आदि की योजना की गयी है, तो दूसरी ओर अंग्रेजी और बंगला नाटकों के प्रभाव के कारण उनमें से इन तथ्यों की योजना के प्रति शिथिलता तथा अन्तर्द्वन्द के चित्रण पर अधिक बल दिये जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। भारतेन्दु काल में तीन प्रकार के नाटक मिलते हैं-

(क) अनुवादित नाटक-अनुवादित नाटकों के वर्ग में बंगला और अंग्रेजी और संस्कृत के नाटकों का ही हिन्दी में रूपान्तरण आता है। पं. सत्यनारायण कविरत्न तथा भारतेन्दु जी मैं संस्कृत के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। सन् 1861 में राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा कालिदास के प्रसिद्ध नाटक, अभिज्ञान शाकुन्तलम का अनुवाद किया। अंग्रेजी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करने की दिशा में लाला सीताराम का नाम उल्लेखनीय है, जबकि बंगला नाटकों का अनुवाद करने की दृष्टि से रूपनारायण पांडेय का नाम उल्लेखनीय है। भारतेन्दु जी ने भी बंगला के विद्यासुन्दर नामक नाटक का हिन्दी में छायावाद प्रस्तुत किया।

(ख) पारसी कम्पनियों के लिए लिखे गए नाटक-इस वर्ग के नाटककारों में रौनक बनारसी अहसान लखनवी, विनायक प्रसाद तालिक बनारसी, नारायण प्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक तथा आगा-हस्र कश्मीरी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में साहित्यिकता के स्थान पर ऐसी सामग्री की प्रधानता रहती थी, जिससे जनता का सस्ता मनोरंजन करके पैसा बटोरा जा सके। प्रसिद्धि की दृष्टि से राधेश्याम कथावाचक का वोर अभिमन्यु तथा रौनक बनारसी का इन्साफे महमूद और गुल बकावली अपने समय के बड़े प्रसिद्ध नाटक थे।

(ग) मौलिक नाटक-मौलिक नाटक लिखने के क्षेत्र में सर्वप्रथम भारतेन्दु ही थे, जिनके सत्य हरिश्चन्द्र, नील देवी, भारत-दुर्दशा, चन्द्रावती और अंधेरी नगरी, पाखण्ड विडम्बना, वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति, प्रेम योगिनी आदि नाटक प्रसिद्ध हैं। अपने नाटकों के माध्यम से भारतेन्दु जी ने एक ओर जहाँ राष्ट्रवासियों को उद्बोधित करने की चेष्टा की है, वहीं सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रहार किए हैं। भारतेन्दु काल में पौराणिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय जागरण सम्बन्धी, सभी प्रकार के विषयों पर नाटक लिखे गए हैं- भारतेन्दु कृत नील देवी; राधाकृष्णदास कृत पद्मावती और महाराणा प्रतापः बैकुंठनाथ दुग्गल कृत श्री हर्ष; गोपालराव कृत यौवन- योगिनी आदि। राष्ट्रीय जागरण सम्बन्धी नाटकों में उल्लेखनीय हैं-भारतेन्दु कृत भारत-दुर्दशा; शरदकुमार मुखर्जी कृत भारतोद्धार; खड़ग बहादुर मल्ल कृत भारत-भारती आदि। पौराणिक नाटकों में उल्लेखनीय हैं-दामोदर सप्रेम का रामलीला; शीतल प्रसाद त्रिपाठी का रामचरितावली; अयोध्या सिंह उपाध्याय के प्रद्युम्न विजय और रुकमणी परिणय; बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन का महादास आदि।

भारतेन्दु युग में अन्य अनेक नाटककार भी हुए जिनमें से विशेष उल्लेखनीय है-श्री बालकृष्ण भट्ट, जिनके लिखे छः नाटक मिलते हैं। 1. कविराज की सभा, 2. रेल का विकट खेल, 3. कलिराज की सभा, 4. बाल विवाह, 5. चन्द्रलेखा, 6. शर्मिष्ठा और देवयानी। भारतेन्दु युग के अन्य नाटककार और उनके नाटकों के नाम इस प्रकार हैं- श्रीनिवासदास-संयोगिता स्वयवर, धर्मवीर, प्रेम मोहिनी, प्रहलाद चरित्र; प्रतापनारायण मिश्र-गौ संकट, हठी हमीर, कली प्रभाव, जुआरी-सुकुआरी; राधाचरण गोस्वामी- अमरसिंह राठौर, सती चन्द्रावती आदि। राधाकृष्णदास-महाराणा प्रताप, श्री दामा दुःखिनी बाला, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन-प्रयाग रामागमन, भारत सौभाग्य, वीरांगना रहस्य वृद्ध विलाप आदि। इस युग के नाटक भाषा की सरलता, रोचकता और हास्य-व्यंग से ओत-प्रोत होने के कारण जन-रुचि को

अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल तो हुए किन्तु नाटक के विकास की दृष्टि से भारतेन्दु काल को उसका शैशव ही मानना चाहिए। उसका विकास तो प्रसाद काल में जाकर हुआ।

2. प्रसाद युग-प्रसाद जी बहुमुखी प्रतीभा के धनी साहित्यकार थे। जहाँ उन्हें आधुनिक युग का सर्वोत्कृष्ट कवि स्वीकार किया जाता है, वहीं उनको नाटक सम्राट भी स्वीकार किया जाता है। भारतेन्दु काल में हिन्दी नाटक का जो पादर्प (पौधा) आरोपित किया गया, वह प्रसाद काल में जाकर ही पुष्पित एवं फलित हुआ। प्रसाद जी ने नाटकों की वर्ण्य वस्तु, शिल्प-विधान विषय के प्रतिपादन और भाषा के क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। उनके नाटको में भारतीयों की परम्परा शैली में सुखान्त नाटकों तथा पाश्चात्य के जगत दुःखान्त नाटको का ऐसा गंगा-जमुना मिश्रण है कि उन्हें न तो सुखान्त कहा जा सकता है और न दुःखान्त ही, अपितु उनके नाटकों के लिए प्रसादान्त विशेषण का प्रयोग किया जाता है।

प्रसाद जी भारत के अतीत वैभव के प्रशंसक थे, अतः उन्होंने अपने नाटकों के विषय का चयन भी अधिकांशतया मौर्थ और गुप्त काल से किया है। इसके साथ ही प्रसाद जी मूलतथा कवि थे, अतः उनके नाटकों में जहाँ गीतों का बाहुल्य है, वहीं उनकी भाषा में भी काव्यात्मकता का पुट है। प्रसाद जी ने तेरह नाटकों की रचना की है जो वर्ण्य विषय की दृष्टि से पौराणिक और ऐतिहासिक हैं। उनके नाम हैं-1. सज्जन, 2. कल्याणी परिणय, 3. करुणालय, 4. प्रायश्चित, 5. राज्यश्री, 6. विशाख, 7. अज्ञातशत्रु, 8. जनमेष का नागयज्ञ, 9. स्कंदगुप्त, 10. एक घूंट, 11. कामना, 12. चन्द्रगुप्त, 13. ध्रुब स्वामिनी। प्रसाद जी के नाटकों में से कामना और एक घूँट एकांकी नाटक हैं। उनका चन्द्रगुप्त शीर्षक नाटक कल्याणी परिणय नाटक का ही परिवर्तित रूप था, अतः उनके लिखे नाटकों की संख्या बारह ही स्वीकार करनी चाहिए। प्रसाद जी के नाटकों में भारतीय नाट्य-शास्त्र के सिद्धान्तों को अपनाने के स्थान पर पाश्चात्य नाटकों के तत्वों का अधिक प्रभाव है। उनके अधिकांश नाटकों में नान्दी, प्रस्तावना, विदूषक और भरत वाक्य की योजना नहीं मिलती। श्री हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र और गोविन्द बल्लभ पंत आदि नाटककारों ने यद्यपि प्रसाद काल में ही नाटक रचना आरम्भ कर दी थी, किन्तु उन्हें प्रौढ़ता प्रसाद काल के पश्चात् ही उपलब्ध हुई। अतः उनके नाटकों का प्रसादोत्तर काल के अन्तर्गत प्रकाश डालना ही उचित है।

3. प्रसादोत्तर काल-प्रसादोत्तर काल में नाटक साहित्य का दूद्रुत गति से अनेक रंगी विकास हुआ जिसे स्थूलतमा तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) ऐतिहासिक पौराणिक नाटक,

(ख) समस्या प्रधान और सामाजिक नाटक,

(ग) एकांकी रेडियो रूपक, काव्य रूपक आदि नई नाट्य विधाएँ।

(क) ऐतिहासिक पौराणिक नाटक-ऐतिहासिक पौराणिक नाटकों में रचयिताओं में श्री हरिकृष्ण प्रेमी का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्हें प्रतिशोध, शिवा साधना, उद्धार शपथ, स्वप्न भंग, आहुति, प्रकाश स्तम्भ, कीर्ति स्तम्भ आदि लगभग बीस ऐतिहासिक पौराणिक नाटकों की रचना की है। इस वर्ग के अन्य नाटककार और उनके प्रसिद्ध नाटकों के नाम है- सेठ गोविन्ददास (इन्होंने लगभग 100 नाटक लिखे हैं) शशि गुप्त और हर्ष, उदयशंकर भट्ट-शक विजय, मुक्ति पच, दाहर, मत्स्यगंधा, अम्बा, विश्वामित्रः वृन्दावनलाल वर्मा-पूर्व की ओर, झांसी की रानी, ललितविक्रम, बीरबल: लक्ष्मीनारायण मिश्र-वस्तराज, गरुडध्वज, विरतता की लहरें; गोविन्द बल्लभ पंत-ययाति, अंतपुर का छिद्र, वरमाला, राजमुकुट, देवराज दिनेश-प्रतिशोध, मानव प्रताप, यशस्वी भोज; मोहन राकेश आषाढ़ का एक दिन, लहरों का राजहंस, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सदगुरुशरण अवस्थी, पांडेय, बेचन शर्मा उम्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, चतुरसेन शास्त्री आदि ने भी ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है।

(ख) समस्या प्रधान तथा सामाजिक नाटक इस श्रेणी में नाटकों में नाना प्रकार की सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये हैं, जिनमें किसी समस्या को प्रस्तुत करना ही नाटककार का मूल्य ध्येय रहता है। इन्हें समस्या प्रधान नाटक कहते हैं

और इस प्रकार के नाटककारों में लक्ष्मीनारायण विशेष प्रसिद्ध है। इनके प्रसिद्ध समस्या नाटकों के नाम हैं-सन्यासी, राजयोग मुक्ति का रहस्य, राक्षस का मन्दिर, गरुडध्वज, नारद की वीणा, आधीरात, सिन्दूर की होली।

सामाजिक नाटकों में में सेठ गोविन्दास, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द बल्लभ पत और उपेन्द्रनाथ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा नाटकों के नाम है- सेत गोविन्ददास कृत सेवा-पथ, सन्तोष कहाँ, दुःख क्यों, सिद्धान्त, स्वराज्य, स्वाग या ग्रहण, कुलीनता, पाकिस्तान, गरीबी अभीरीआदि, वृन्दावनलाल वर्मा कृत राखी की लाज केवट, विस्तार, खिलौने की खोज, बांस की फॉस, नीलकण्ठ, देखा-देखो आदि, गोविन्दवल्लभ पन्त कृति अंगूर की बेटी, सिन्दूर को बिन्दी आदि, उपेन्द्रनाथ अश्क कृत स्वर्ग को झलक, छठा बेटा, केंद, उड़ान, अलग-अलग रास्ते आदि।

(ग) एकांकी, रेडियो-रूपक, काव्य-रूपक आदि-एकांकी (एक अंक का नाटक) नाटककारों में डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम सर्वोपरि है, जिसके पृथ्वीराज की आँखें, चारुमित्रा, ऋतुराज, रेशमी टाई, ध्रुवतारिका, दीपदान आदि एकांकी संग्रह प्रसिद्ध है। अन्य एकांकी नाटककारों में उल्लेखनीय हैं-उपेन्द्रनाय अश्क (तूफान से पहले, देवताओं की छाहा, चरवाहे), सेठ गोविन्ददास (नानक की नमाज, बुद्ध कि एक शिष्या, युग, स्त्री का हृदय, पर्दे के पीछे), जगदीश चन्द्र माथुर (भोर का तारा, कलिज विजय रीढ़ की हड्डी, मकड़ी का जाला, खण्डहर, बंदी तथा घोंसले, खिड़की की राह)। अन्य एकांकीकार है- भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र, भगवतीचरण वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, चन्द्रगुप्त विद्यालिकार, सद्गुरु शरण अवस्थी आदि।

भाव-नाट्य या गीत नाट्यकारों में श्री उदयशंकर भट्ट का विशेष योगदान है जिनके राधा मत्स्यगंधा और विश्वामित्र उच्चकोटि के गीति नाट्य है। इनके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त- अनघ, उर्वशी, रामधारी सिंह दिनकर उन्मुक्त आदि।

1.5 नाटक और एकांकी में अन्तर

"एकांकी एक अंक का दृश्य काव्य है जिसमें एक ही कथा और कुछ ही पात्र होते है। उनके माध्यम से एक विशेष उद्देश्य की अभिव्यक्ति करते हुए केवल एकांकी ही प्रभाव की सृष्टि की जाती है।" दूसरे शब्दों में "एक ही अंक में समाप्त होने वाला नाटक एकांकी कहलाता है।"

रचना विधान-एकांकी के रचना विधान को कुछ इस प्रकार समझा जा सकता है।

जिस प्रकार उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन चित्रित होता है और एकांकी में केवल एक घटना। जिस प्रकार कहानी अपनी सीमा में बंधी होती है उसी प्रकार एकांकी को भी होती है। यही सीमा एकांकीकार की रचना प्रक्रिया की मर्यादा भी होती है। नाटककार को सुविधा है कि वह जीवन को चाहे जितना फैला सकता है। उसके कण-कण या प्रत्येक अंश का विशद् वृहद् चित्र प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु एकांकीकार को यह सुविधा नहीं है। उसके सामने होती है एक मार्मिक घटना, एक विशेष परिस्थिति या एक उत्तेजना भरा क्षण। अतः एकांकीकार का कार्य नाटककार के कार्य की अपेक्षा अधिक कठिन अधिक सूक्ष्म तथा अत्यधिक मर्यादित होता है। एकाको में विस्तार की आवश्यकता नहीं है, उस तार की आवश्यकता होती है जो क्षण के अपने अंशो को जोड़-तोड़ कर उसे किसी एक संज्ञा या नाम में ढाल देता है। इसलिए एकांकी का शिल्प तथा कृतित्व नाटक के शिल्प तथा कृतित्व से अधिक परिष्कृत होता है। एकांकी की कला नाटक की कला से भिन्न है। नाटक कलाकार को अपनी कला दर्शाने का, विशेष अवसर होता है। उसका रचना क्षेत्र, चूंकि विशाल होता है अतः उसके रंग भी एक से नहीं होते। उसके शिल्प में भी एकरूपता तो होती है, परन्तु उसका प्रवाह या सम्पादन या कृतिकर्म एक-सा नहीं होता। उसमें उतार-चढ़ावों की दूरियां अधिक होती है। उनका फासला अधिक होता है। अठ नाटक की बनावट में समरसता अपने फैलाव में कई बार विविध हो जाती है, किन्तु एकांकी में कृतिकार हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियाँ । को समरसता, विचार सम्पादन, घटना प्रवाह, शिल्प तथा कृतित्व को समेटकर चलना होता है। जीवन के प्रति उसकी निष्ठा अतिशय सहज रूप से अपने पात्री के माध्यम से पाठक के निकर आती-जाती है और उस छोटे से घटना चक्र में पाठक स्वयं की भी एक

पात्र मानकर जीने लगता है। उसका अनुभव एकाएक पात्र का अनुभव बन जाता है और वे दोनों शनैः शनैः एकाकार हो जाते हैं। यही रचनाकार के कृतित्व व शिल्प अथवा रचना विधान की सफलता है।

सफल रचना की दृष्टि से एकांकी का केनवास छोटा हो, उसका आकार सीमित अवधि का हो (35 से 45 मिनट) उसमें अभिनयं तत्व की सहजता ही तथा उसके रंग निर्देश में कोई कठिनाई या आपत्तिजनक कार्य न हो। इन सभी रेखाओं का ध्यान रखकर यदि एकांकी रचना की रचना की जाती है तो यह सफलता की ओर बढ़ने वाला प्रगतिशील तथा मर्यादित चरण होगा तथा एकांकी के रचना विधान के अनुसार होगा।

एकांकी की मूल विशेषताएँ अथवा लक्षण एकांकी की निम्नलिखित मूल विशेषताएँ होती हैं-1. एकांकी एक ही घटना, परिस्थिति या समस्या प्रधान होती है। 2. एकांकी का प्रारम्भ और अन्त दोनों ही आकस्मिक होते हैं। 3. एकांकी का लक्ष्य सदैव निश्चित रहता है। 4. एकांकी जीवन या समाज के एक विशिष्ट पहलू का चित्र होता है। 5. एकांकी में संकलन त्रय का निर्वाह सफलता का मापदण्ड होता है। 6. इसमें पात्र सीमित और कथा से सुसम्बद्ध होते हैं। 7. एकांकी में कुतूहल एवं अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता होती है। 8. एकांकी में अप्रधान प्रसंग के लिए कोई स्थान नहीं है।

एकांकी और नाटक में अन्तर-रचना शिल्प और कथावस्तु की दृष्टि से जो अन्तर कहानी और उपन्यास में है लगभग वैसा ही अन्तर एकांकी और नाटक में भी है।

1. नाटक में एक से अधिक अंक होते हैं, जबकि एकांकी में एक ही अंक होता है। 2. नाटक में मुख्य कथा के साथ-साथ अन्य गौण कथाएँ भी चलती है, जबकि एकांकी में केवल एक कथावस्तु होती है। 3. नाटक में बड़ी संख्या में पात्र और अनेक प्रसंग होते हैं, जबकि एकांकी में बहुत सीमित पात्र और प्रसंग होते हैं। 4. अनेक कथानकों के कारण नाटक का प्रभाव बहुआयामी होता है, जबकि एकांकी का कथानक केवल एक ही प्रभाव की सुष्टि करता है।

1.6 हिन्दी एकांकी के उद्भव और विकास

आधुनिक एकांकी का जन्म

आधुनिक एकांकी एक स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रगति कर रही है। वैसे तो भारत के प्राचीन काव्य में इसका संकेत मिलता है। जैसे अंक, वीची, प्रहसन आदि किन्तु आधुनिक एकाकी को इनसे जन्मी विधा नहीं माना जाता। दोनों में अन्तर यह है कि भारतीय काव्य से अफ बीथी, प्रहसन तथा अन्य विधाओं को जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है वह आधुनिक एकांकी के प्रस्तुतीकरण, उसके कथ्य तथा शिल्प से भिन्न है।

आधुनिक एकांकी का जन्म 'मिरेकल्स' और 'रिलिटीज' जैसे नाटक रूपों से माना जाता है। ये नाटक धर्म प्रचार के लिए खेले जाते थे। अग्रेजी साहित्य में शेक्सपीयर के लम्बे

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृति

कने पर से। इन नटकों के बीच में विट पूर्व इन्टरल्यूड' (अन्तर्नाटक) खेले थे। इन्नों इन्टी में अनि एकांकी के जन्म की झलक मिलती है। उन्नीसवी शाब्दी में लम्बे नाटकों के प्रस्तुतीकरण के मध्य दर्शकों के मनोरंजन के लिए एक प्रकार के प्रहसन खेले जाते थे। इन प्रहसन को 'कर्टन रेजर' (पट उत्थानक) कहा जाता था। यत्र तो यह है कि इसी 'कर्टन रेजर को आधुनिक एकांकी का जन्मदाता कहा जाता है। सन् 1903 में कोर प (बन्दर का पंजा) कर्टन रेजर के रूप में खेला गया था जो बहुत सफल हुआ। इसके पश्चात् इन्क्रन, शॉ तथा ओ नील जैसे अंग्रेज नाटककारों ने इस विया में पर्याप्त सुधार किया तथा इसे प्रहसन से हटाकर गम्भीर विषयों के लिए उपर्युक्त सिद्ध किया।

उद्भव और विकास-अध्ययन की सुविधा के लिए आधुनिक हिन्दी एकाकी को तौन भागों में बांटा जा सकता है-1 प्रारम्भ काल 2. विकास काल और 3. स्वातंत्र्योत्तर काल। प्रारम्भ काल-इस काल का आरम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु बाबू

हरिशचन्द्र के रूप में एक ऐसे व्यक्तित्व ने जन्म लिया जिसने हिन्दी को प्रत्येक क्षेत्र में आग बढ़ाया। उसका जीवन दर्शन एकदम नवीन था। उनकी हिन्दी के प्रति सेवाएँ अविस्मरणीय है। उन्होंने "वैदिकी हिंसा, हिता न भवति" लिखकर हिन्दी एकांकी के जन्म का प्रारम्भ किया। तो भी इस एकांकी की रचना में संस्कृत नाटक की झलक है, तथापि इसमें एक नयेपन का भी समावेश है जो पुरानी परिपाटी को त्याग कर नवीन मार्ग का अनुसरण करने को आतुर था। न तो ये नाटक संक्षिप्त थे, न इसमें संकलन क्रय का निर्वाह था, न ये नाटक आरम्प, संघर्ष तथा चरम सीमा के शिल्प विधान का स्पर्श करते थे, किन्तु तो भी ये नाटक प्राचीन लोक से (परम्परा से) हटकर चलने का संकेत देते थे। इस युग के नाटककारों में भारतेन्दुजी, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, बद्रीनारायण चौधरी, अम्बिकादत्त व्यास तथा बालकृष्ण भट्ट आदि का नाम प्रमुख है।

विकास कला-बीसवीं शताब्दी का आरम्भ हिन्दी के विविध विकास का काल माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में एकांकी लिखे तो गये, किन्तु या तो वे कोरे अनुवाद थे या भावानुवाद थे। उन पर बंग तथा मराठी और सबसे अधिक अंग्रेजी का प्रभाव या। धीरे-धीरे हिन्दी से यह प्रभाव हटता गया। सन् 1939 में बाबू जयशंकर प्रसादजी का "एक घूँट" प्रकाशित हुआ। यह एकांकी के एकदम निकट की वस्तु थी। कथावस्तु में प्रभाव था। संकलन त्रय की स्थिति भी स्पष्ट थी तया प्रस्तुति का दृष्टिकोण भी भारतेन्दु युग से भिन्न तथा विकसित था।

इसी काल में गुरुदेव रवीन्द्र के एकांकी प्रकाश में आये। उनकी "मुक्तधारा" ने एक नये मार्ग के खुल जाने तथा विकास के नये आयामों का संकेत दिया। इसी समय इब्सन, शॉ. सिज, बेरी, ओ नील तथा गात्सवदर्दी व एकांकी के क्षेत्र में नये प्रयोग किये। इन प्रयोगों के लिये स्थान खोजने में कठिनाई नहीं उठानी पड़ी। स्कूलों, कॉलेजों व युनिवर्सिटियों में मंच तैयार थे। रचनाकारों के सामने एक विशाल और उपयोगी क्षेत्र था। अतः एकांकी की कला शनैः शनैः निखरती चली गई। इसी काल में रेडियों ने भी एकांकी के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। फीचर तथा रिपोर्ताज को ध्वनि के माध्यम से अपने पाठकों तक पहुँचाने में इस काल का अदभुत सहयोग है। इस काल में सत्येन्द्र का 'कुणाल', 'पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा', राजकुमार वर्मा का पृथ्वीराज की आँखें व भुवनेश्वर का 'कार' प्रसिद्ध है। इन्हीं के साथ- मायक, श्री विष्णु प्रभाकर श्री उदयशंकर भट्ट, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, श्री एस. पी. आदि ने अपनी कृतियों हिन्दी में भेंट की।

स्वातंत्र्योत्तर काल-स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् एकांकी में नवे परिवर्तन आये। आज एकविधानमें अपने चरम की और पूर्ण सफलता के साथ बढ़ता जा रहा

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियाँ।

है। वह प्रगति के नये आयामों का स्पर्श कर रहा है। उसमें हास्य के साथ मानव-मन का गहन विश्लेषण भी सम्मिलित हो गया है। आज का लेखक मनोविज्ञान, घुटन तथा आदमी की रोजमर्रा (नित्य प्रति) की जिन्दगी से जूझ रहा है। उसके सामने आदमी अपनी सम्पूर्ण विविधताओं के साथ रचनाकार के सामने हैं। आज का एकांकीकार पश्चिमी विद्या 'एब्सई' के साथ-साथ चल रहा है। इस क्षेत्र में श्री धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, मुद्राराक्षस, विनोद रस्तोगी, शंभुनायसिंह, नरेश मेहता, विपिन अग्रवाल, शान्ति मेहरोत्रा अपना पूरा सहयोग दे रहे हैं।

एकांकी के तत्वों पर प्रकाश

उत्तर- एकांकी के तत्व-उपन्यास, कहानी व नाटक में जो तत्व होते हैं-वे ही तत्व एकांकी के भी होते हैं। क्योकि उपन्यास, कहानी व नाटक से एकांकी का पारिवारिक सम्बन्ध है। तत्वों की दृष्टि से नाटक, कहानी व उपन्यास की परम्परा एक ही है।

एकांकी को तत्व-दृष्टि से 6 भागों में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं- 1.

कथानक, 2. पात्र, 3. संवाद, 4. अभिनय तथा रंग-निर्देश, 5. देशकाल, 6. उद्देश्य। 1. कथानक जो स्थान शरीर में मेरूदण्ड (रीड़ की हड्डी) का है, वही स्थान एकांकी

के कथानक का होता है। एकांकी के लिए कथानक चुनते समय सावधानी से काम लेना होता है, क्योंकि कथानक के माध्यम से ही रचनाकार अपने आपको समाज के सामने प्रस्तुत करता है। कथानक यदि समय की माँग पूरी करने में सफल हो तो वह अधिक उपयोगी होगा। वैसे कथानक को चुनते समय, इतिहास, पुराण व लोक को ध्यान में रखना चाहिए। कथानक इतिहास, पुराण, धर्म, समाज, राजनीति अथवा लोक प्रसिद्धि के आधार पर भी हो सकता है, किन्तु उसका सम्बन्ध जीवन की यथार्थ स्थिति से होना चाहिए। केवल कल्पना से कथानक का निर्वाह नहीं हो सकता। उसमें जीवन की सच्चाई, उसके सुख-दुःख तथा उसकी भोगी हुई इकाई का समावेश होना चाहिए। एकांकी के कथानक में बूंद-समुद्र का नाता होना चाहिए। चूँकि एकांकी यदि किसी एक घटना की झलक है- बिम्ब है- विजिन है-अतः कथानक इतना सशक्त, सुघड़, सहज और प्रभाववान होना चाहिए कि उसका वाचन अथवा उसे देखते समय एक अनिवार्य या एक विशिष्ट आत्मीयता का अनुभव करे। यह माने कि जो कुछ पढ़ देख या सुन रहा है- वह उसके या उस जैसे अनेक मनुष्य के साथ घटता है बीतता है-और वह जीवन की अपनी सीमा में होने वाली बीतने वाले या वैसे ही सम्भावित सत्य का एक अंश है। सूर्य को यदि सम्पूर्ण जीवन के कुहासों, कुण्ठाओं, संघर्षों तथा उसकी सफलता अथवा असफलता, उसके आनन्द अथवा उसके रुदन की प्रतीक है। एकांकी में निहित कथानक एक ऐसी खुराक है-

जो बीमार समाज या व्यक्ति के आन्तरिक या बाह्य रोग की ताकतवर औषधि का एक घूंट है। कथानक के प्रवाह को अथवा उसके प्रस्तुतीकरण को तीन अंगों में विभक्त किया जा सकता है-1. आरम्भ, 2. संघर्ष, 3. चरम सीमा।

आरम्भ-कथानक का आरम्भ बड़ी सावधानी से होना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि एकांकी का केनवास (क्षेत्र या धरती) बहुत छोटा होता है। आरम्भ में कथानक में त्वरा, तेजी या गति की तीव्रता नहीं होनी चाहिए। उसमें उत्सुकता, जिज्ञासा, कौतूहल की सृष्टि होना चाहिए। आरम्भ का रूप एक हल्की-सी धारा के रूप में हो-जो जन्म लेकर अपने प्रवाह- मार्ग का निर्माण स्वयं करे। उसमें रचनाकार की ओर से इतनी शक्ति होना चाहिए कि वह प्रवाह के मार्ग में आने वाले संघर्षों को झेल जाय और अपने चरम की ओर बढ़ जाय। अतः एकांकी रिक एवं उसके इतिहास की विविध प्रवृतियों सहरकेनिअम होने वाला होना चाहिए। उसमे रहते को भनि हो पर तुफान का आपका निर्वाह नहीं हो सकेगा और शाम को पूर्ति अर्थ-संघर्ष ही एकाकी की गति है है है। यह एकांकी का यह भाग हैप के इसके लापता पुन, कुण्ठा, चाहे, असफलता, हास्य, किचेर अथवा आधीपता के क्षण का चित्रण होता है। घमासान युद्ध से जो स्थिति एक बौर, कुशल चोद्धा की होती है वह स्थिति संघर्ष को उपस्थित करते समय कृतिकार की होती है। उसके पात्र जिस आपारिक या बाड़ा परिस्थिति से जूते है उसका चित्रण एकांकीकार को बड़ी सावधानी से करना होता है, क्योंकि इस परिस्थिति के चित्रण के ठीक पश्चात् एकांकी की चरम ग्रीचा आ जाती है। जहाँ से आगे राह नहीं है। संघर्ष की स्थिति का चित्रण ही एकांकीकार की सफलता का द्योतक होता है।

चाथ सोचा-जैसे कोई पर्वतारोही पहाड़ की चोटी पर पहुंचकर एक सांस संतोष की लेता है-और फिर अपनी सफलता पर आनन्दित हो जाता है-वैसे ही एक एकांकीकार-अपनी रचना के चरण पर पहुंचकर सनु हो जाता है, क्योंकि अब उसे कुछ करना शेष नहीं रह गया है। अतः चरच सौभा पर पहुंचते पहुंचते एकांकीकार अपने पूर्ण विवेक, जिज्ञासा, रचना के कृतित्व अथवा आत्मीयता से पूर्ण हो जाता है। चरम सीमा का अर्थ है कि रचनाकार जहाँ पहुंचना चाहता था-वहां पहुंच चुका। यह अपनी कला का परिचय दे चुका, अपने पात्रों के माध्यम से अपने पाठक, श्रोता था दर्शक के सामने उपस्थित हो चुका।

2. पात्र एकांकी में पात्री की स्थिति शरीर के अंगों जैसी होती है। कथानक की पूर्ति के लिए पात्रों का चयन किया जाता है। एकांकी में पात्रों की भीड़ नहीं होना चाहिए। प्रमुख पात्र के आसपास बहुत कम पूरक पात्र होने चाहिए। पात्रों की संख्या अधिक हो जाने पर- कई रसोइये रसोई का सत्यानाश कर देते हैं। अतः पात्र का चुनाव करते समय कथानक के महत्व तथा उसको स्थिति की अनुरूपता का ध्यान रखना चाहिए।

प्राचीन परम्पत के अनुसार पात्र विशेषकर प्रमुख पात्र इतिहास, पुराण व लोक प्रसिद्ध होना चाहिए। प्राचीन परम्परानुसार नायक धीरोदत्त, धीर प्रशान्त या धीर ललित होना चाहिए। गायिका स्वकीया परकीया या गणिका होनी चाहिए, किन्तु आजकल यह परम्परा टूट चुकी है। आज के एकांको का नायक एक राजा भी हो सकता है और एक रंक भी। देखना यह होता है कि जीवन की विविधता तथा विषमता के चित्रण के लिए किस प्रकार के पुरुष व स्त्री की आवश्यकता है। इसी समस्यानुकूल पुरुष व स्त्री पात्रों द्वारा एकांकी के भाव संसार की सृष्टि करची होती है। इनों पात्रों के चरित्र चित्रण द्वारा घटना या क्षण को भाव जगत से स्थूल जगत (स्टेज) पर लगाकर खड़ा करना होता है। समय एकरूपता एकांकी में चित्रित नहीं हो सकती- किन्तु धरना या क्षण के अपने अस्तित्व का चित्रण उसमे अवश्य हो सकता है। प्रभान उत्पन्न करने तथा एकाको के चार्थ व्यापार को चित्रित करने का लक्ष्य ही एकांकी के पात्रों द्वारा पूरा किया जा सकता है।

3. संवाद-संवाद कथा के वाहक होते है। संवाद कथा के प्रवाह को गति देते हैं, पात्र की स्थिति यह करते है, संघर्ष को घुटन को या कचा को स्पष्ट करते है, पात्रों के व्यक्तित्व परविका करते हैं। अतः संवाद भाषा को सरलता, संक्षिप्तता पात्रानुकूलता, प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति और विषय तथा पात्र के प्रति रुचि उत्पन्न करने की शक्ति होनी चाहिए। संवादों से होकर पेश कर लिया जाना चाहिए। भाषा पात्रानुकूल होना चाहिए। शैली मेकतिरखना चाहिए। भाषा अहिलको समस्या, समय और विषण हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियाँ के अनुकूल हो। संवादों के स्वागत भाषण कम से कम हो। वैसे भी संवाद जितने छोटे होंगे उतने ही प्रभाव उत्पन्न करने वाले होगे। भाषा तथा संवादों से एकांकी में हास्यू एवं विनोद की सृष्टि का भी प्रावधान होना चाहिए। जो कार्य अंधेरे घर में दीपक करता है-वही कार्य एकांकी में संवाद करते हैं।

4. अभिनय तथा रंग संकेत एकांकी भी अभिनय का एक प्रमुख तत्व है। कथानक को रंगमंच पर जीवित कर देना उसे साकार कर देना, उसके अभिप्रेत तत्व को या उद्देश्य को चित्रित कर देना अभिनय कहा जा सकता है। एकांकी में अभिनय पात्र की परीक्षा है। अभिनय जितना वास्तविक सहज और स्वाभाविक होगा एकांकी उतना सफल होगा, पाठक पर अपना प्रभाव डाल सकेगा और व्यक्ति तथा समाज की संगतियों व विसंगतियों को उतना ही यथार्थ रूप में प्रकट कर सकेगा। प्राचीन नाटकाचार्यो ने अभिनय को चार भागों में विभक्त किया है- (1) आंगिक, (2) वाचिका, (3) आहार्च, (4) सात्विक, किन्तु आज का नाटक लेखक इन तत्वों से बंधा नहीं है। वह स्वतन्त्र है। वह समय, समस्या तथा पात्रानुकूल वेशभूषा, पात्रों की आयु, आदि का निर्देश करता है। वह रंग संकेतों द्वारा पात्रों के अभिनय, मंच की प्रस्तुति तथा कथा के भाव पक्ष को उभारकर, सजाकर अपने पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है।

5. देशकाल-नाटक की प्रस्तुति में देश व काल का विशेष ध्यान रखना होगा। रचनाकार देश व काल के आधार पर ही समाज तथा व्यक्ति की समस्याओं को, उनके संघर्षों को, द्वन्द्वों को, घुटन को तथा युगीन वातावरण को चित्रित करता है। देश और काल का अन्तर निश्चय ही एकांकी की देह को विकृत कर देगा व उसकी आत्मा का हनन हो जायेगा। 6. उद्देश्य-प्रत्येक रचना का एक न एक उद्देश्य होता है। उद्देश्यहीनता रचना केवल भटकाना है। अतः एकांकी की रचना का भी उद्देश्य होना चाहिए। इतिहास के पृष्ठों पर से लेकर किसी घटना द्वारा मानव के लोभ, कोई सामाजिक विसंगति, कोई व्यक्तिगत समस्या, जीवन के प्रति किसी अभाव का चित्रण ही एकांकी के उद्देश्य हो सकते हैं। उद्देश्य पूर्ति का अर्थ है- एकांकी का समापन और पाठक की तृप्ति। उद्देश्य पूर्ति के समय रचनाकार को बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। उसे कोरा उपदेशक नहीं बन जाना चाहिए। यदि उद्देश्य पूर्ति के समय यदि पात्र उपदेश देने लगेगा तो उसका प्रभाव पाठक पर अच्छा नहीं पड़ेगा। उद्देश्य पूर्ति तो कुछ इस भाति होना चाहिए-जैसे कोई धूप का मारा यात्री किसी छाया में शीतलता का अनुभव करे। अतः वह सहज और स्वाभाविक हो।

1.2 उद्देश्य

'उपन्यास' शब्द दो शब्दों 'टप' तथा 'न्यास' के योग से बना है। 'उप' का अर्थ है 'समीप' और 'न्यास' का अर्थ है, स्थापन। इस प्रकार उपन्यास का अर्थ है- मानव जीवन के निकट मानव जीवन का स्थापन। उपन्यास में मानव जीवन का हो चित्रण होता है, जिसे पढ़कर

पाठक मानव जीवन को समझने-बूझने का ज्ञान प्राप्त करता है। हिन्दी में उपन्यास अंग्रेजी के 'नावेल' (Novel) का पर्यायवाची है। 'नावेल' का अर्थ है गया। इटली में भी उपन्यास के लिए 'नविले' तथा फ्रांस में नोवल शब्द का प्रयोग होता था। कुछ प्रमुख पाश्चात्य व हिन्दी विद्वानों ने 'उपन्यास' की निम्नलिखित परिभाषाएँ की है-

हिन्दी नाटकं गच एवं उपन्यास के इतिहास को विविध प्रवृतियां

1. बेटर के अनुसार एक ऐसा करत विशालकाय तथा गद्यम आख्यान है, जिसने एक ही कचानक के अन्तर्गत पार्थीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और उरके किया कलापों का चित्रण करता है।"

2. कोस के अनुसार उपन्यास उस गाम अल्प-कथा का नाम है, जिसमें वास्तविक जीवन का पथार्थ चित्रण रहता है।"

3. न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- "उपन्यास कार्य कारण श्रृंखला में बंधा हुआ लम्बे आकार का काल्पनिक गद्य कथानक है। इसमें वास्तविक जीवर का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों के कार्यों का चित्रण किया जाता है।"

4. डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।

3. मुली प्रेमचन्दजी के शब्दों में "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों का उद्घाटन करना ही उपन्यास का काम है।"

6. डॉ. गुलाबराय के अनुसार "उपन्यास कार्यकारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन का रचनात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।"

7. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "मनोरंजक और निर्दोष कथानक, पात्रों का सजीव चरित्र निर्माण, भाषा की अनाडम्बर सहज प्रवाह की योजना द्वारा लेखक के अपने वैयक्तिक मत को पाउक के लिए सहज स्वीकार्य बनाने का नाम उपन्यास है।"

उपन्यास का स्वरूप

गद्य साहित्य को विभिन्न विधाओं में उपन्यास प्रमुख है। उपन्यास मानव जीवन तथा समाज पर आधारित पूर्ण कथानक होता है। यह कहानी से भिन्न है। कहानी जीवन के किसी एक पक्ष का चित्रण होता है, परन्तु उपन्यास में जीवन की विस्तृत झांकी होती है। उपन्यास मानव जीवन तथा समाज की विभिन्न घटनाओं का संग्रहित रूप होता है। इसमें कथावस्तु का व्यवस्थित संगठन होता है और चरित्र-चित्रण, देशकाल तथा उद्देश्य पर पूर्ण ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार उपन्यास का क्षेत्र जीवन में पूर्णतया सम्बद्ध है। कोई उपन्यास उत्तम पुरुष शैली थे होता है, तो कोई पात्रों की समष्टि के माध्यम से अग्रसर होता है। आत्मकथा, डायरी, जोवनी आदि अनेक शैलियों में उपन्यास लिखे जाते हैं।

उपन्यास की विशेषताएँ

उपयुक्त विवेचन के आधार पर उपन्यास की निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए-

(1) मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली कथा होनी चाहिए। अर्थात् जीवन की वास्तविक और यथार्थ कथा होनी चाहिए।

(2) इस कथा को एक समवेत मूर्तरूप और सजीवता प्रदान करने के लिए घटनाओं का श्रृंखलाबद्ध संयोजन होना चाहिए जो मानव जीवन को अपनी पूर्णता में उपस्थित कर सके। (3) जीवन जैसा 'था' और जैसा है की जागरूकता प्रदान कर जीवन कैसा 'होना चाहिए के आदर्श की प्रेरणा से मुक्त जीवन का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। अर्थात् भावी जीवन की कल्पनाओं से कथा की वास्तविक अनुप्राणिता होनी चाहिए। सरल शब्दों में, यथार्थ और आदर्श का समन्वय होना चाहिए।

उपन्यास के तत्व

पाश्चात्य विद्वान् श्री हडसन ने उपन्यास कला का तात्विक विवेचन करते हुए और उपन्यास की रचना के आधारभूत मूल तत्यो का निरुपण करते हुए (कथानक (कथा बस्तु), चादिगण अयोपकार देशका और भाषा-शैली और जीवन-दर्शन या उद्देश्य को उपन्यास का

मूल तत्व माना है। उन्नतत्वों को पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने अब उपन्यास के मूल तत्थों के रूप में ग्रहण कर लिया है। हम आगे उपन्यास के संदर्भ में उन्हीं का तांत्यिक विवेचन करेंगे।

1. कथानक (कथावस्तु) कथानक उपन्यास का मूल आधार है। बिना कथानक के कोई उपन्यास चाल नहीं सकता, क्योंकि उपन्यास मानव जीवन को लेकर चलता है और मानव चौथन में घटित घटनाएं तथा उसके सन्दर्भ में मनुष्य के क्रियाकलाप और मनोभाव ही कथा का स्वरूप निर्माण करते हैं। यहीं कथानक उपन्यास का मूल आधार बनती है।

उपन्यास में प्रायः कथानक के दो रूप रहते है-मनुष्य तथा गौण। मनुष्य कथा आदि से अन्त तक चलती है और वही लेखक के प्रतिपाद्य तथा अभीष्ट सिद्धि में सहायक होते हैं। गौण कथाएँ मुख्य कथा की सहायक बनकर आती है। कथा के चुनाव और विन्यास में उपन्यासकार को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए-

उपन्यास का कथानक युग जीवन से सम्बद्ध हो। (ii) अनर्ग तथा अनावश्यक वस्तुओं कसे मुक्त हो। (क) युग जीवन की मान्यताओं का पोषक हो। (iv) अंतकथाएँ मूलकथा के उत्कर्ष विधान में अनिवार्य रूप से सहायक हो।

उपन्यास के कथानक के चार प्रमुख गुण अपेक्षित हैं-मौलिकता, कुशलता, सम्भवता तथा रोचकता। मौलिकता का अर्थ सर्वथा नवीन सृष्टि है, परन्तु नवीनता का प्रश्न बड़ा जटिल है। दृष्टिकोण को भिन्नता उपन्यास के कथानक को नवीनता प्रदान करती है।

कथानक का दूसरा गुण कुशलता का अर्थ घटनाओं की व्यवस्थित रूप से नियोजना है। उपन्यासकार अपने लक्ष्य विशेष को दृष्टि में रखते हुए सामान्य जीवन की कतिपय घटनाओं का चुनाव करता है। इन चुनाव के उपरान्त उपन्यासकार का उत्तरदायित्व अपनी कल्पना के सहारे इन घटनाओं में एक-सूत्रता स्थापित करना है।

कथानक का तीसरा बांछनीय गुण सम्भवता है। उपन्यास को केवल सम्भव और विश्वसनीय घटनाओं को ही अपनी रचना में स्थान देना चाहिए। इसलिए उपन्यासकार को यथार्थ जीवन से सम्बद्ध केवल सत्य और सम्भव घटनाओं को ही अपने उपन्यास में स्थान देना चाहिए।

कथानक का चौथा गुण रोचकता है। यह वस्तुतः उपन्यास का प्राण है। इसके बिना उपन्यास का अस्तित्व ही नहीं, इसके लिए उपन्यासकार को नवीनता का समावेश करना चाहिए। पाठकों की उत्सुकता को बनाये रखने के लिए घटनाओं में आकर्षण तथा कौतूहल का समावेश करना चाहिए।

श्रेष्ठ कथानक की चर्चा करते हुए डॉ. भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं- "कहानी के उस बिस्तार में कला की दृष्टि से उसका संचरण और परिपाक होता है। घटनाचक्र को एकता या अनेक मुखी जीवनधारा का स्वस्थ विलयन ही उसका पाक है। घटनाचक्र की एकता वस्तुगठन के रूप में उपन्यास के रस को कलत्य प्रदान करती है।"

2. पात्र तथा चरित्र-चित्रण पात्र और चरित्र-चित्रण को महत्व देते हुए मुशी प्रेमचन्द ने कहा है-उपन्यास ही मानव चरित्र का चित्र मात्र है। वस्तुतः पात्र ही कथानक को विकसित करते है और उनका चरित्र उपन्यास को गन्तव्य तक ले जाता है। पात्र ही उपन्यास रूपी सागर में कथानक रूपी नाव को उद्देश्य रूपी तट की ओर ले जाने वाले कर्णधार है।

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृति

चरित्र-चित्रण पात्रों के क्रियाकलापों से सम्बन्ध रखता है। पात्रों के क्रियाकलाप है घटनाओं का कारण बनते हैं और घटनाओं का श्रृंखलाबद्ध संयोजन कथावस्तुका रूप ग्रहण करता है। पात्रों के बिना कया का अस्तित्व नहीं हो सकता। पात्रों के बरित्र ही घटनाओं में तथा सम्बन्धित अन्य पात्रों के सम्बन्ध सूत्रों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार उपन्यास में आने वाले हर पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषताएँ होती है। जो घटनाएँ कथा का अंग बनती है उन्नतीं के संदर्भ में पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती चलती है। उपन्यास में चरित्र-चित्रण की अनेक विधियों प्रयोग में आती है। उन्हें निम्न प्रकार से देखा जा सकता है-

(1) कभी उपन्यासकार अपनी ओर से विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करता है।

(ii) कभी अन्य पात्रों के माध्यम से अन्य पात्रों का बरित्र उभरता है।

(iii) कभी पात्रों के आपसी सम्बन्धों के माध्यम से पात्रों का चरित्र उभरता है।

(iv) तो कभी-कभी किसी पात्र द्वारा किए गए किसी काम या कही गयी कोई बात की प्रतिक्रिया किये गये काम या कही गयी बात से चरित्र उभरता है।

(v) और कभी पात्र स्वयं अपने मनोविश्लेषण द्वारा अपनी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

चरित्र की दृष्टि से विद्वानों ने तीन प्रकार के चरित्र माने हैं- उत्तम, मध्यम और अचम। उत्तम पात्र आदर्श पात्र होते हैं। मध्यम पात्र वह होते हैं, जो अच्छाई बुराई के बीच अकोले खाते हैं और अच्छाई-बुराई से संघर्ष करते हुए अच्छाई की ओर बढ़ते हैं। अथम पात्र वह है, जो निरन्तर बुराई में ही दूबे रहते हैं। उत्तम पात्रों में अच्छाई का अंश अधिक और बुराई का अंश कम होता है।

उपन्यास के पात्र जीवन के विभिन्न वर्गों और स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपनी चारित्रिक विशेषताओं के साथ-साथ अपने वर्ग और स्तर की चारित्रिक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

3. कथोपकथन-कथोपकथन या संवाद उपन्यास का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है, जो उपन्यास के स्वरूप गठन में मुख्यतः चार काम करता है-कथावस्तु को आगे बढ़ाता है, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट करता है, घटनाओं में श्रृंखला तथा सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करता है। कयोपकथन द्वारा उपन्यासकार उपन्यास में वर्णित घटनाओं तथा दृश्यों को अपेक्षित रूप तथा सजीवता और मर्मस्पर्शिता उत्पन्न करता है एवं कथा विस्तार करता है।

पात्रों के आपसी कथोपकथन द्वारा ही पाठक पात्रों के मनोभावों और अलग-अलग स्वभावों से परिचित होता है और उनके प्रति अलग-अलग मनोभावों का निर्माण करता है।

विभिन्न पात्रों के आपसी विरोधी मतों को व्यक्त करने वाले कयोपकथनों के द्वारा ही उपन्यासकार उपन्यास के उद्देश्य और विचार को स्पष्ट करता है।

कथा तथा उसके विकास में पात्र की उपयुक्त भूमिका के प्रति उपयुक्तता पात्रों की अपनी विशेषताओं, जीवन-स्तर आदि को अनुकूलता सम्बद्धता, स्वाविकता एवं सहजता, सजीवत संक्षिप्तता एवं उद्देश्य को उभारने की क्षमता आदि योकयन के अनेक गुण है। 4. देशकाल या वातावरण देशालाही है कि कला देश प्रदेश वा स्थान की है और उसका है और उस स्थान तथा सम की परिस्थितियों क्या है? उनका पार पड़ता है? इस दृष्टि से उसके तौर पेद किए जा सकते है-सा एक

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तिर्या ।

पहली के अन्तर्गत लेखक सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज, वेशभूषा, पात्रों का जीवनगत स्तर, उनको शिक्षा, संस्कृति, संस्कार आदि का चित्रण करता है।

दूसरी के अन्तर्गत लेखक उसके परिवेश तथा संदर्भ में पात्रों की मनोदशा का भावात्मक स्वरूप प्रस्तुत करता है और उसे अधिक मार्मिकता प्रदान करता है। तीस्से का उपयोग ऐतिहासिक उपन्यासों में ही होता है।

अतः देशकाल और वातावरण के विषय में सामान्यतः कहा जा सकता है कि कथानक के मर्म और पात्रों की विशेषताओं को उभारने की उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

5. भाषा-शैली-भाषा-शैली का उपन्यास के तत्वों में अपना प्रमुख और महत्वपूर्ण स्थान होता है। भाषा-शैली ही उपन्यास को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़े जाने की उत्सुकता और उमंग पाठक में जगाती है।

भाषा और शैली यद्यपि अलग-अलग हैं, किन्तु भाषा-शैली का अंग है शैली भाषा का प्राण है। भाषा कथा और उसके पात्रों को वाणी प्रदान करती है और शैली उस वाणी में साभिप्राय अर्थ की प्राण प्रतिष्ठा करती है। शैली कथा को कहने और प्रस्तुत करने तथा पात्रों को

चारित्रिक विशेषताओं और मनोभावों को चित्रित करने के ढंग से सम्बन्ध रखती है। शैली ही वास्तव में उपन्यास में मौलिकता के गुण का समावेश करती है।

भाषा सरल, सजीव, पात्रोनुकूल, रोचक, मर्मस्पर्शी, प्रभावपूर्ण और प्रवाहमयी होनी चाहिए। शैली अनेक प्रकार की होती है, जैसे वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पात्रात्मक शैली, डायरी शैली, जीवन शैली और मिश्रित शैली आदि। अधिकांश उपन्यासों में एक साथ कई शैलियों का प्रयोग किया जाता है।

भाषा-शैली का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से लेखक अपने उपन्यास को प्रभावमय और मर्मस्पर्शी बनाता है और उसमें मौलिकता का समावेश करता है।

6. उद्देश्य-उपन्यास का उद्देश्य निःसन्देह कथा के माध्यम से मनोरंजन जुटाना है, परन्तु गहराई से देखें तो यह मनोरंजन साधन है, साध्य नहीं। उपन्यास का साध्य है जीवन की व्याख्या। समस्त साहित्य का सम्बन्ध जीवन से है, जीवन की अभिव्यंजना ही उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है। उपन्यासकार जीवन की व्याख्या इस प्रकार सुन्दर शैली में करता है कि वह सहज प्राह्म हो जाती है।

उपन्यास लिखना भी अपने में एक उद्देश्य है। कोई लेखक उपन्यास तभी लिखता है, जब वह किसी कथा, किन्हीं पात्रों और उनके जीवन रहस्यों से जिनका परिचय या तो उससे हुआ है या जिनका उदय जीवन के अनुभवों के आधार पर उसकी कल्पना में हुआ है, परिचय यह अपने से अन्य सबसे कराना चाहता है। उपन्यास की कथा की कल्पना की अपनी भोगी हुई अनुभूतियों का जब वह अन्यों के साथ मिलकर सहयोग करना चाहता है, तो वह उपन्यास के रूप में उसे अभिव्यक्त कर सबके सहयोग योग्य बना देता है। अतः उद्देश्य उपन्यास का एक अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण तत्व है।

हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास

1.8 हिन्दी उपन्यास के उद्भव और विकास

उत्तर- हिन्दी उपन्यास-उद्भव और विकास उपन्यास आधुनिक युग की महत्वपूर्ण कथा-विया है। इसका प्राचीन युग रूपकथा और आख्यायिका में देखा जा सकता है। प्राचीन

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियां

युग में कादम्बरी, हर्ष चरित, बैताल पचीसी, सिहासन बत्तीसी आदि के अनुवाद मिलते हैं। उन्नीसवीं सदी में जिस समय हमारे देश में पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के सम्पर्क के कारण राष्ट्रीय जागरण की एक देशब्यापी लहर उत्पन्न हो गई थी और राष्ट्रीय जागरंण में अनेक उत्तरदायित्व की महत्ती-भूमिका को अदा करने के लिए हिन्दी पद्य और उसकी विभिन्न विधाओं का जन्म हो रहा था। उसी समय हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ ही हिन्दी उपन्यासी का सूत्रपात हुआ। राष्ट्रीय जागरण में अपने सहयोग के उत्तरदायित्व की भूमिका निभाने के उद्देश्य से आरम्भ में हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय जागरण का तत्व स्पष्ट रूप से मिलता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यासों के विकास का भी अध्ययन सुविधा की दृष्टि से निम्न चरण में कर सकते हैं-

1. प्रथम चरण-प्रेमचन्द पूर्व युग।
2. द्वितीय चरण-प्रेमचन्द युग।
3. तृतीय चरण-प्रेमचन्द उत्तर युग।
4. उपन्यास शैली में नवीन प्रयोग।

1. प्रथम चरण-प्रेमचन्द से पूर्व का युग सन् 1870 से 1916 तक माना जाता है। इस युग में हिन्दी उपन्यासों का आरम्भ बंगला और मराठी भाषा के उपन्यासों के अनुवाद से होता है। यद्यपि बंगला और मराठी भाषा का साहित्य भी हिन्दी साहित्य की ही भाँति आरम्भ में पद्यमय ही था, किन्तु उन भाषाओं में हिन्दी भाषा की अपेक्षा गद्य-साहित्य का आरम्भ अपेक्षाकृत पहले शुरू हुआ। यही कारण है कि बंगला और मराठी भाषा में उपन्यास पहले शुरू हुए। यद्यपि उन भाषाओं में भी उपन्यास का आरम्भ पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से ही

आरम्भ हुआ था और हिन्दी की अपेक्षा बंगला और मराठी भाषाएँ पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में पहले आई। अतः उनमें गद्य की विधाओं का सूत्रपात पहले हुआ। हिन्दी में वह प्रभाव अधिकांशतः बंगला और मराठी साहित्य के माध्यम से हुआ हिन्दी उपन्यास का आरम्भ बंगला और मराठी उपन्यासों के अनुवाद से होता है।

भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों ने बंगला और मराठी भाषा से अनुवाद करके प्रारम्भ किये। भारतेन्दु एक जागरूक कलाकार थे। राष्ट्रीय जागरण में नाटकों की ही भाँति उपन्यासों की महत्ता को भी उन्होंने समझा था और उसके विकास की ओर भी उनका ध्यान गया था, किन्तु साहित्य के अंग का समर्थन करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। यद्यपि उन्होंने अनुवाद के अतिरिक्त एक मौलिक उपन्यास 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' भी लिखना प्रारम्भ किया था जो असमय में ही उनकी मृत्यु हो जाने के कारण आरम्भ होकर ही रह गया।

हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यासकार होने का श्रेय श्री निवासदास को प्राप्त होता है। आपका पहला मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' सन् 1832 में प्रकाशित हुआ था। श्रीनिवासदास के बाद हिन्दी के अनेक लेखकों ने उपन्यास लिखने आरम्भ किए। बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', किशोरीलाल गोस्वामी का 'हृदय हारिणी', लज्जाराम मेहता का 'परतन्त्र लक्ष्मी', कार्तिप्रसाद का 'दीनानाथ', हनुमतसिंह का 'चंद्रकला', राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' अच्छे सामाजिक उपन्यासों में से थे। इन सभी उपन्यासों में समाज-सुधार की भावना निहित है। विधवाओं की दयनीय दशा, सामाजिक कुरीतियों के परिणाम आदि इनके सामान्य विषय हैं। इस युग में ऐतिहासिक इतिवृत को लेकर भी उपन्यास लिखे गये, जिनमें इतिहास के पृष्ठों से कचा ग्रहण कर लेखकों ने तत्कालीन जीवन पर सुधारवादी प्रभाव डालने के उद्देश्य से उनका सृजन किया है।'

इस युग में लिखे गए उपन्यासों की एक दूसरी है-तिलस्मी और अय्यारी के उपन्यासों श्री जो सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। देवकीनन्दन खत्री, दुर्गाप्रसाद खत्री और गोपालराम गहमरी का

नामू इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। सन् 1891 में देवकीनन्दन खत्री ने 'चंद्रकान्ता' और 'चन्द्रकांता संतति' नामक दो प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। इस युग के समस्त उपन्यास साहित्य को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-आचार, धर्म, भीति, समाज-सुधार आदि को भावना से प्रेरित सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास, जिनमें उपदेश का स्वर अधिक है तथा शुद्ध मनोरंजन के लिये लिखे गये तिलिस्मी और अय्यारी के उपन्यास।

प्रथम वर्ग के उपन्यासों में तत्कालीन समाज की बदलती हुई परिस्थितियों में नए आदर्शों का चित्रण मिलता है, तो दूसरे वर्ग के उपन्यासों में कल्पित राजवर्ग और उससे सम्बन्धित चरित्रों को लेकर षड्यन्त्र तिलिस्म और अय्यारी का मनोरंजन और रोमांचकारी वर्णन मिलता है।

2. द्वितीय चरण-हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास में द्वितीय चरण का आरम्भ उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन से माना जाता है। यद्यपि प्रेमचन्द पूर्व से ही हिन्दी उपन्यासों के कथागउन शैली और उद्देश्य आदि की दृष्टि से अन्तर आने लगा था, लेकिन वह अन्तर इतना स्पष्ट नहीं हो पाता था कि स्पष्ट रूप से उसे विकास के दूसरे चरण का द्योतक मान लिया जाये। उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन से यह अन्तर बिल्कुल स्पष्ट हो गया। यही कारण है कि प्रेमचन्द से ही हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास का दूसरा चरण माना जाता है और विकास के द्वितीय चरण को प्रस्तुत करने का श्रेय प्राप्त है। प्रेमचन्द का उपन्यास 'सेवासदन' हिन्दी का पहला उपन्यास है, जिसमें सामाजिक संघर्ष को अपने यथार्थ रूप में कथावस्तु का आधार बनाया गया है। इसे हम हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास का मूल स्तम्भ कह सकते हैं।

प्रेमचन्द ने एक नवीन राष्ट्रीय चेतना को लेकर उपन्यास लिखने आरम्भ किए थे। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय चेतना ने एक संगठित शक्ति का रूप ग्रहण कर लिया था। भारतेन्दु काल में जो राष्ट्रीय जागरण केवल सांस्कृतिक सुधार तथा भारतीय गौरव के

पुनरुत्थान के रूप में आरम्भ हुआ था, वह स्वराज्य स्थापना का रूप ग्रहण कर चला था। परिणामतः साहित्य में भी हमें वहीं परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, किसान वर्ग और मजदूर वर्ग के जीवन की आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ उनके सम्बन्धों से उत्पन्न पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का चित्रण किया है। हमारे समाज का पूरा जीवन उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ है। उन्होंने हमारी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त नैतिक, सांस्कृतिक तथा अन्य अनेक व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं का सफल समाधान अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके आरम्भिक उपन्यासों में आदर्श की स्थापना का आग्रह है, ऐसा आदर्श जिसे वह पहले सोचकर और उसे अपनी कथा के विकास के द्वारा स्थापित करने का निश्चय करके चले। लेकिन 'प्रेमा' से लेकर 'गोदान' तक वह क्रमशः आदर्श से यथार्थवाद की ओर अग्रसर होते हुए जान पड़ते हैं।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के द्वारा उपन्यास साहित्य के विकास का जो दूसरा चरण प्रस्तुत किया है, उसके प्रभाव को लेकर अनेक नये उपन्यासकार उपन्यास क्षेत्र में आगे आये। इस युग के उपन्यासकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं-

बृजनन्दन सहाय (सौदयोंर्योपासक 1919), जयशंकर प्रसाद (कंकाल, तितली, इरावती, अपूर्ण), अवधनारायण (विमाता 1923), विश्व पूजन सहाय (देहाती दुनिया 1925), आचार्य चतुरसेन शास्त्री (हृदय की परख, व्यभिचार, अमर अभिलाषा, आत्मदाह, नीलमती, वैशाली की नगर वधू आदि), विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (माँ, भिखारिणी आदि), पांडेय बेचन शर्मा 'उथ' (दिल्ली का दलाल, चंद हसीनों के खतूत, बुबुआ बेटी, शराबी घटा, सरकार तुम्हारी

(हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृति

आँखों में आदि), चण्डी प्रसाद इदपेश (मनोरमा, मंगल प्रभात आदि) प्रताव नारायण श्रीवास्त (विदा, राधिकारमण प्रसादसिंह, तरंग, राम रहीम, पुरुष और नारी आदि), जी. पी. श्रीवास् (गंगा जमुनी, दिलजले की आह) वृन्दावनलाल वर्मा (गढ़ कुडार, विराटा की पदमिनी कुण्डली चक्र, महारानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, माधवजी सिंधिया आदि), भगवती प्रसाद बाजपेयी (मौटी चुटकी अनाथ पत्नी, त्यागमयी, प्रेम विवाह, पतिता की साधना, दो बहने नि चलते, भूदान, अधिकार का प्रश्न आदि), कृपानाथ मिश्र (प्यास), जैनेन्द्र कुमार त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा विवर्त, व्यतीत), इलाचन्द जोशी (घृणामयी, पढ़ें की रानी, मेड छाया, सन्यासी, निर्वासित मुक्तिपथ, जहाज का पंछी आदि), गोविन्द बल्लभ पन्त (प्रतिमा मदारी प्रगति की राह आदि), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अप्सरा अलका लिल्ली, निकायमा

प्रभावती, बब्लेशुर, वकरिहा, कुल्लीभाट, चोटी की पकड़)। 3. तृतीय चरण-प्रेमचन्द की सजग, सामाजिक जीवन के चित्रण की परम्परा को अधिक

यथार्थरूप में लेकर लिखे जाने वाले प्रगतिवादी उपन्यासों से हिन्दों उपन्यासों के विकास के तीसरे चरण का आरम्भ माना जाता है। प्रगतिवादी उपन्यास्सों में मजदूर, किसान और मध्यम वर्ग के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक संघों का चित्रण है। इसमें निम्न वर्ग में उभरती शक्ति और चेतना को मुखरित किया गया है। इस नयी प्रगतिवादी चेतना को लेकर उपन्यास लिखने वालों में प्रमुख हैं-यशपाल कृष्णचन्द, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', नागार्जुन, रागेयराचव,

श्रीकृष्णदास, अमृतराय आदि । हिन्दी के समस्त उपन्यास साहित्य को देखने से स्पष्ट होता है कि कथावस्तु की दृष्टि से उनके तीन वर्ग हैं-1. सामाजिक, 2. ऐतिहासिक और 3. पौराणिक, सभी सामाजिक उपन्यासले में यद्यपि मानव के सामाजिक या व्यक्तिगत संघर्षों और समस्याओं का ही चित्रण मिलता है. लेकिन लेखकों के चेतना भेद और दृष्टि भेद के अनुसार प्रगतिवादी, फायडवादी, गाँधीवादी आदि भेद हो जाते हैं। लेखकों ने जिस दृष्टि से सामाजिक जीवन और उनकी समस्याओं तथा संघर्षों का चित्रण किया है, उसी से उपन्यास की चेतना और उद्देश्य में भेद उत्पन्न हो जाता है।

4. उपन्यास शैली में नवीन प्रयोग इधर उपन्यासों की टेकनिक में भी कई नये प्रयोग सामने आये हैं, जिनमें यह उल्लेखनीय है-राहुलजी का 'सिंह सेनापति', हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', शिवप्रसाद मिश्र की 'बहती गंगा', धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' 'गुनाहों का देवता', राजेन्द्र यादव 'प्रेत बोलते हैं' आदि। पिछले दशक में हिन्दी उपन्यास ने अभूतपूर्व उन्नति की है। शिप तथा चेतना दोनों ही

दृष्टियों से अनेक नये उपन्यासकार पिछले दशक में जन्म लेकर ख्याति प्राप्त कर, हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक होने का गौरव प्राप्त कर गये हैं। जैसे राजेन्द्र यादव, चंदकमाल जोशी, बागवेन्द्र शर्मा, गुरुदत्त, फणीश्वरनाथ रेणु आदि। इस युग में प्रकाशित प्रसिद्ध उपन्यास जहाज का पड़ी. रांगेय राघव का 'काका', राजेन्द्र यादव का उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' आदि।

हिन्दी का उपन्यास साहित्य बहुत तेजी से विकास कर रहा है। यह संक्षेप में हिन्दी के उपन्यास साहित्य के विकास का इतिहास है। इस विकास में ऐतिहासिक उपन्यासों के सुजन की ओर लेखकों का ध्यान गया था। श्री किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, श्री जगरामदान गुप्त आदि अनेक उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यासों के विकास के प्रथम चरण में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

उपन्यास साहित्य के विकास के द्वितीय चरण में श्रीवृन्दावनलाल वर्मा के रूप में एक ऐसी प्रतिभा ने जन्म लिया जिन्होंने हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास और संक में महत्वपूर्ण योग दिया। तब से निरन्तर ऐतिहासिक उपनाम हिन्दी उपन्यास साहित्य के हर में वृद्धि करते आ रहे है और ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का चाव और उन्हें पड़ने की दि

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियाँ।

पाठकों में निरन्तर बढ़ती जा रही है। यह सत्य हिन्दी के निरन्तर बड़ी संख्या में प्रकाशित होने बाले उपन्यासों से सहज ही सिद्ध और स्पष्ट है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अनेक प्रतिभा सम्पन्न नए लेखक पदार्पण कर रहे हैं। इन्होंने उसके विविच्य पक्षों को नए आयाम देने का प्रयत्न किया है। इनमें अधिक उल्लेखनीय है- रमेश बक्षी, नरेन्द्र कोहली, निर्मल वर्मा रामदरश मिश्र, राही मासूम राजा, श्याम सुन्दर व्यास, मालती जोशी आदि। इनके द्वारा समसामयिक शहरी तथा ग्राम्य जीवन का बड़ा सहज और यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

1.9 प्रेमचन्द के उपन्यासों की युगीन पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय

प्रेमचन्द ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने समाज सापेक्षता में ही अपने उपन्यासों और कहानियों की रचना की थी। युग की हर करवट को उन्होंने गहराई और निकटता से जाना परखा था और उसकी गति को न सिर्फ समझा ही था वरन् उसे दिशा देने का भी काम किया था।

युगीन राष्ट्रीय परिस्थितियाँ-प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन 1900 के आसपास से ही आरम्भ होता है। उन्होंने लिखा है- "उपन्यास तो मैंने 1901 में लिखना शुरू किया। मेरा एक उपन्यास 1902 में निकला और दूसरा 1904 में। प्रेमचन्द की आयु 1936 में हुई थी। इस प्रकार उनका रचनाकाल लगभग 36 वर्ष का रहा है और यह 36 वर्ष भारतीय जीवन में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि दृष्टियों से बड़े ही उथल-पुथल के वर्ष रहे हैं।

राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म सन् 1885 में हुआ था और प्रेमचन्द का जन्म 1881 में। यदि दोनों की चेतना के विकास को समानान्तर रखकर अध्ययन किया जाये तो सहज ही दोनों की समानान्तर एकरूपता स्पष्ट हो जायेगी। कांग्रेस का जन्म भारतवासियों को छुट-पुट सहुलियतें दिलाने के सुधारवादी दृष्टिकोण से हुआ था। किन्तु 1808-10 तक उसमें अपने अधिकारों, अंग्रेजी दमन के विरोध में और गतानुगत संस्कारों और रूढ़ियों को बदलने का संघर्षशील स्वर तेजी से उभरने लगा था। बंग-भंग के विरोध में जन आन्दोलन और लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी में बम्बई के मजदूरों की हड़ताल इस काल की दो प्रमुख घटनाएँ थी, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में नई चेतना का संचार किया था। इसके बाद जलियांवाला बाग, रोलेट एक्ट, सन् 1920- 21 का सत्याग्रह आन्दोलन, क्रान्तिकारियों के संगठन, मजदूर वर्ग के संगठन, रूसी जनक्रान्ति का प्रभाव और देश में माक्र्सवादी संगठनों का जन्म, सन् 1929 में कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता का नारा और गरम दल तथा नरम दलों के रूप में उसका विभाजन सन् 1930-31 का सत्याग्रह, गांधीजी का हरिजन आन्दोलन, सन् 1935 में

लखनऊ कांग्रेस की समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य की घोषणा और समाज से हर प्रकार की असमानता को मिटाने के निश्चय की घोषणा आदि प्रेमचन्द युग की राष्ट्रीय युगीन परिस्थितियों की प्रमुख घटनाएँ है। यह कहना सही होगा कि यह विभिन्न सौड़ियों है राष्ट्रीय चेतना के विकास की।

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियों

युगीन राष्ट्रीय परिस्थितियों के प्रति प्रेमचन्द की जागरूकता-प्रेमचन्द ने सन् 1920-21 के आन्दोलन के अवसर पर अपनी बीस साल की सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था और अपनी साहित्य साधना के द्वारा राष्ट्रीय चेतना को जगाना अपना जीवन लक्ष्य बना लिया था। मृत्यु पर्यन्त बड़े से बड़ा लालच, कष्ट और त्याग भी उन्हें अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर सका।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में युग चित्रण 'प्रेमा', प्रेमचन्द का पहला उपन्यास माना जाता है। इसमें विधवाओं के दयनीय जीवन का मार्मिक वर्णन है और जीवित ही मृत बन जाने वाली विधवाओं के विद्रोह को इसमे स्वर दिया गया है। विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन कर उन्होंने समाज सुधार को एक नया क्रान्तिकारी स्वर दिया।

'सेवासदन' में समाज की एक ऐसी ही दूसरी विकट समस्या दहेज की समस्या को लिया गया है, जो नारियों के जीवन में अभिशाप का कारण बनती है। इस उपन्यास में उन्होंने समाज की उन परिस्थितियों, खोखली मान्यताओं और आडम्बरपूर्ण जीवन को बदलने की क्रान्तिकारी दृष्टि दी है, जो समाज में वेश्याओं को जन्म देती है। आवश्यकता उन मूल कारणों को बदलने की है न कि वेश्याओं से नफरत करने की, क्योंकि नफरत खोखली और दिखाऊ है। एक ओर तो समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति उनके सम्पर्क में आने का प्रयास करता है और साथ ही उनसे नफरत करने का। उन्हें समाज का कलंक मानने का दिखावा करता है। बड़े ही निर्मम शब्दों में प्रेमचन्द ने तथाकथित प्रतिष्ठित वर्ग के इन अंतर्विरोधी खोखले जीवन-मूल्यों का पर्दाफाश किया है। 'प्रेमाश्रय' में प्रेमचन्द की दृष्टि निम्न मध्यमवर्ग के पारिवारिक जीवन के अन्तर्विरोध की

विडम्बनाओं से हटकर सामाजिक वर्ग की विषमताओं के अन्तर्विरोधी की विडम्बनाओं की ओर गयी और उनकी दृष्टि राजनीतिक रूप से अधिक सचेत और जागरूक हो गयी। 'प्रेमाश्रय' में पहली बार किसान वर्ग की विद्रोह चेतना को स्वर मिला। मनोहर जमींदार के कारिन्दा गिरधर महाराज से कहता है, 'यहाँ कोई दुर्बल नहीं है। जब कोड़ी-कोड़ी लगान चुकाते हैं, तो घौस क्यों सहें।'

इस उपन्यास पर गाँधीवादी राजनीति का बड़ा ही गहरा प्रभाव है, किन्तु प्रेमचन्द गाँधीवादी विचारधारा के अन्ध अनुयायी नहीं थे, वरन् उसके तटस्थ आलोचक भी थे। 'रंग भूमि में उन्होंने और भी व्यापक क्षेत्र की कथा को ग्रहण किया था। यह उस समय का उपन्यास है, जब कल-कारखाने खुलने लगे थे और नए मजदूर वर्ग का जन्म हो चला था। यह स्थिति प्रेमचन्द की दृष्टि भारतीय संस्कृति के लिए जबर्दस्त खतरा पैदा कर रही थी। उनकी यह चिन्ता इस उपन्यास के कथानक विशेषकर नायक, सूरदास के चरित्र से साफ झलकती है। इसमें पूँजीवाद को जन्म देने वाले यंत्र परिचालित उद्योगों के गुण-दोष, पूँजीवादी व्यवस्था की शोषण विधि, दासता के दिनों में ध्वंसावशिष्ट सामंत वर्ग की मनोवृत्ति एवं कार्यविधि अंग्रेज शासकों का स्वेच्छाचारी, पोलिटिकल एजेंट द्वारा नियन्त्रित निर्देशित देशी राज्यों की क्रूर एवं भ्रष्टाचारी शासन नीति, कौंसिल के भारतीय मेम्बर्स की उपहासास्वद तथा व्यर्थ स्थिति और उठतो हुई जन भावना तथा देशानुरक्ति के बड़े ही सजीव चित्र इस विशालकाय उपन्यास में चित्रित किये गये हैं।'

'निर्मल' उनकी एक मध्यम वर्ग के खोखले जीवन की विडम्बनाओं की मार्मिक कहानी है, जो अनमेल विवाह की मुख्य समस्या पर आधारित है। 'सेवा-सदन' के समान ही मध्यम वर्ग के जीवन का छोटा-सा उपन्यास है, किन्तु प्रसंगानुकूल निम्न वर्ग के संघर्ष को इनमें स्वर दिया गया है। राष्ट्रीय आन्दोलन समाज के विविध वर्गों किसान, मजदूर, अछूत तथा नारियों के प्रति एक मानवतावादी दृष्टिकोण को जन्म दे रहा था, क्योकि यही वर्ग शताब्दियों से सबसे अधिक पीड़ित

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियों।

और दबा हुआ रहा है। प्रेमचन्द ने भी इन्हों वर्गों को विशेषकर अपनी सहानुभूति प्रदान की है।

उनके भीतर छिपे हुए गुणों को उजागर किया है। सूरदास और दीनानाथ ऐसे ही पात्र है। 'गब्बन' यद्यपि मूलतः मध्यमवर्ग की खोखली प्रतिष्ठा के अंतर्विरोधों की मार्मिक कहानी है, किन्तु प्रेमचन्द वह कोई छोड़ते नहीं जहाँ उन्हें अंग्रेजी सरकार के दमन और राष्ट्रीय आन्दोलन के चित्रण का अवसर मिले। उपन्यास में भी उन्होंने अवसर खोज ही निकाला।

'कर्मभूमि' फिर इनका 'रंगभूमि' के बाद दूसरा विशालकाय उपन्यास है, जो 1930- 31 के राष्ट्रीय सत्याग्रह आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इस उपन्यास में तत्कालीन युग जीवन अपनी अनेकमुखी समस्याओं और संघर्षों के साथ मुखर हो उठा है। इसमें राष्ट्रीय आन्दोलन में पहली बार नारी वर्ग के सक्रिय योगदान का विशद वर्णन है। इसी आन्दोलन में प्रेमचन्द की पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी भी जेल गयी थीं। इस उपन्यास के नारी पात्र सुन्दा, मुन्नी, रेणुका देवी, नैना, सकीना, पठानिन आदि सूमन, निर्मला, सोफिया, जालपा आदि पिछले उपन्यासों के नारी पात्रों से कहीं आगे है। इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द ने आजादी के लिए छुट- पुट बलिदानों और प्रयासों की व्यर्थता को दिखाते हुए सामूहिक चेतना के जागृत और संगठित होने पर बल दिया है- "हमें प्रजा में जागृति और संस्कार उत्पन्न करने की चेष्टा से करते रहना चाहिए। हमारी शक्ति पूरी जाति की आत्मा को जगाने में लगानी चाहिए।"

'गोदान' तक आते-आते सामाजिक वर्ग वैषम्य और उसके पारिवारिक, सामाजिक एवं व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों के अन्तर्विरोधों की विडम्बना को प्रेमचन्द और भी गहराई से समझ गये थे।

प्रेमचन्द के रचनाकाल में भारतीय चेतना में अनेक परिवर्तन आये और उन्होंने अपने हर परिवर्तन के मोड़ पर भारतीय चेतना में नए अध्याय जोड़े। इस आन्तरिक स्थिति के साथ- साथ विदेशी घटनाचक्रों के प्रभाव ने भी चेतना को नया आकार और रूप देने का काम किया और 'गोदान' की रचना के समय तक राष्ट्रीय धरातल पर यह स्पष्ट हो चला था। विषमता रहित समाज की स्थापना ही भारतीय जन-जीवन की पीड़ाओं को दूर कर एक सुखी जीवन की स्थापना कर सकता है। प्रेमचन्द की स्वयं की भी यह धारणा हो गयी थी। इस चेतना में उन्होंने 'गोदान' की रचना की थी।

'गोदान में किसान, पुजारी, पण्डे, सूदखोर, मिल-मालिक, मजदूर, तथाकथित नेता, सरकारी अफसर, अछूत, स्वर्ण आदि विविध वर्गों का जीवन एक साथ चित्रित हुआ है। भारतीय जीवन के ग्राम और नगर दोनों पक्ष और दोनों की भिन्न संस्कृतियों का चित्रण उपन्यास की मुख्य विशेषता है। उपन्यास नयी युगान्तरूप चेतना प्रदान करता है कि जमीदार प्रथा का अन्त होगा, जमीनों का मालिक किसान होगा और मजदूर ही मिलों का मालिक होगा।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमबन्द हिन्दी के अकेले ऐसे उपन्यासकार हैं, जिनकी साहित्य साधना की मात्रा राष्ट्रीय चेतना के विकास की मात्रा के समानान्तर चली है। कहीं उन्होंने उसे वाणी दी है, तो साथ ही कहीं उसे नयी दिशा और नया स्वर भी।

प्रेमचन्द्र की उपन्यास कला का मूल्यांकन

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृति

उत्तर- उपन्यास की कला का स्वरूप उपन्यास के छतत्व माने जाते हैं-कर चरिय-चित्रण, कयोपकथन, देशकाल, भाषा-शैली और उद्देश्य उपन्यास में इन छ. सका निर्वाह करते हुए उपन्यास को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करने में ही उनकी कला का परिचय मिलता है। इसी कसौटी पर हम प्रेमचन्द की उपन्यास कला का परिचय देंगे।

प्रेमचन्द की उपन्यास कला प्रेमचन्द की उपन्यास कला हर उपन्यास के साथ विकसित और परिमार्जित होती गयी है। यदि हम प्रेमचन्द को उपन्यास कला की विकास यात्रा का मध्य सेवा सदन' को मान ले तो उस यात्रा के दो भाग किये जा सकते हैं-पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध।

हर उपन्यासकार की कला का निरुपण इस बात से होता है कि वह किस उद्देश्य के जीवन दर्शन के प्रतिपादन के लिए तथा किस दृष्टि से उपन्यास लिख रहा है। अपने अभीष्ट को इह करने के लिए वह उसी दृष्टि से कथा-चयन, कया-गठन, चरित्र-चित्रण देशकाल की परिस्थितियों का वर्णन और भाषा-शैली का प्रयोग करता है। यह बात प्रेमचन्द के साथ भी लागू होती है। यह

निर्विवाद सत्य है कि प्रेमचन्द मूलतः सोद्देश्य उपन्यासकार थे। यदि इस तथ्य को सामने रखकर देखा जाये तो पूर्वार्द्धकाल के उपन्यासों में प्रेमचन्द

का आदर्शवादी स्वर अधिक प्रबल दौख पड़ता है और उत्तरार्द्ध में यथार्थवादी। यद्यपि यह बात भी सही है कि उनके पूर्वार्द्धकालीन उपन्यासों में भी जीवन की सच्ची और यथार्थ स्थिति का चित्रण मिलता है और जिन आदर्शों की स्थापना भी उन्होंने की है, वह आदर्श भी जीवन की यथार्थ स्थितियों से प्रेरित है, जैसा 'प्रेमा' में विधवा विवाह। इसी तरह उत्तरार्द्धकालीन उपन्यासों में भी जीवन की नई परिस्थितियों के अनुरूप नया रूप देने के लिए उन्होंने आदर्श चरित्रों की अवतारणा की है। यथार्थ और आदर्श के इस अनिवार्य सम्मिलन और परस्पर पूरक गुण की ध्यान में रखकर उन्होंने आदशों-मुख यथार्थवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। अतः उनकी उपन्यास कला का सर्वप्रथम और सर्वप्रधान गुण आदशोन्मुख यथार्थवाद को कहा जा सकता है। यह गुण कथा चयन और कथा-संयोजन दोनों में दिखायी पड़ता है।

प्रेशचन्द ने उपन्यास लिखने के उद्देश्य और उपन्यास लिखना नहीं आरम्भ किया था, उन्होंने उपन्यासों को भारतीय जन-जीवन का चित्रण करने और नये विचारों का प्रतिदान करने के लिए

सबसे उत्तम माध्यम माना था, क्योंकि उपन्यास साहित्य ही एकमात्र ऐसी विधा है जिसमें जीवन के विविध रूपों की गतिविधियों का सजीव और व्यापक चित्र प्रस्तुत करना सम्भव होता है। इसीलिए प्रेमचन्द ने मुख्य रूप से उपन्यास लिखने में अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। कथा चयन में कला का दृष्टिकोण हर कलाकार अपनी कलाकृति से जो प्रभाव उत्पन करना चाहता है, उसको अपने दृष्टिपथ में रखकर ही यह कथा अथवा दृश्य का चयन करता है। अतः किसी भी कलाकार की विशेषता को समझने लिए सबसे पहले यह देखना आवश्यक है कि उसने जीवन के किस रूप को अपनी कला का विषय बनाया है। प्रेमचन्द ने निम्न मध्यम वर्ग की खोखली पाखण्डपूर्ण और अन्तर्विरोधी मान्यताओं से उत्पन्न जीवन की विडम्बनाओं, किसान और मजदूर वर्ग एवं अछूतों के शोषण और उनकी पीड़ा तथा भारतीय समाज में नारी की पीड़ा को अपनी रचना का विषय बनाया है और उसके उसके चित्र इस रूप में उभरकर पाठक को संवेदना का ही विषय नहीं बनाती, वरन् उसमें उन पीड़ाओं के मूल कारणों को समाज में निर्मूत करने की सचेतन जागरूकता भी उत्पन्न होती है। समाज के लिए समाज से कया को महण करना उनकी कला की बहुत बड़ी विशेषता है।

कथा संविधान की कलागत विशेषताएँ जीवन के जिस पक्ष को जिस उद्देश्य से चित्रित करने की दृष्टि से प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के लिए कथा का चयन किया था उन्हें

हिन्दी काटक, रंगमंच एवं उपत्य के इतिहास की विविध प्रति

दृति और उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने अपने उपन्यासों की कथा का संयोजन भी किया है। यद्यपि हर उपन्यास की एक अधिकारिक का है, किन्तु मूल मर्म को अधिक संवेदनशील, मा प्रभावशाली और प्रेरणादायक बनाने के लिए उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में अनेक प्रासंगिक कथाओं से एग भरकर उसे अधिक और मूर्तरूप प्रदान किया है। प्रेमचन्द ने जीवन के जिस पक्ष को भी रचना का विषय बनाया है उसे अपनी समता में प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य रहा है। इसीलिए उन्होंने समता प्रदान करने वाली प्रासंगिक कथाओं को भी जोड़ा है। यही कारण है कि उसके अधिकांश उपन्यासों में यदि मूल कथा गाँव की है, ती नगर की कया भी आ गयी है और अगर मूल कया नगर की है, तो उसमें गाँव की कथा भी जुड़ गई है, क्योंकि यह जीवन को नगर और गाँव के विभाजित कटघरों में अलग-अलग करके नहीं देखते थे। इसीलिए भी, क्योंकि वह जिस युग के उपन्यासकार थे, उस युग में यह विभाजन परिस्थितियीवश अपने आप ही और भी कम होता जा रहा था। 'गोदान में गाँव और नगर को कन्याओं को लेकर अनेक आलोचकों ने उसे प्रेमचन्द की उपन्यास-कला का दोष माना है और यही दोष 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में भी माना है, किन्तु वस्तुतः यह दोष नहीं उनकी कथा संविधान का कलात्मक गुण है। कथा एवं पात्रों के प्रतिनिधित्व का गुण प्रेमचन्द के उपन्यासों की कथा यो तो प्रत्यक्षतः एक व्यक्ति, एक परिवार, एक स्थान की कला है, किन्तु वह समूचे समाज और देश को कथा बन जाती है। उनके हर उपन्यास की कथा में यह व्यापक प्रतिनिधित्व की गरिमा के

गुण को सहज ही देखा जा सकता है। किसी भी रचना में इतनी व्यापक प्रतिनिधित्व की गरिमा उत्पन्न करना मामूली कला का काम नहीं है। यह कहानी को इस ढंग से उभारते और चित्रित करते हैं कि वह फिर एक व्यक्ति, परिवार या स्थान की कहानी नहीं रह जाती।

यही बात उनके पात्रों के विषय में भी सही है। उनके पात्र व्यक्ति भी है और समष्टि के प्रतिनिधि भी। उनके हर पात्र का दुहरा व्यक्तित्व है। व्यक्तिगत तथा समाजगत और दोनों के सम्मिलित रूप में ही उसका असली और पूर्ण व्यक्तित्व उभरता है। सुमन वेश्या बन जाती है, इससे उसकी व्यक्तिगत चारित्रिक कमजोरियों कारण है, किन्तु उतनी ही सामाजिक परिस्थितियों भी कारण है। इस व्यापक सामाजिक संदर्भ में ही उसका चरित्र उभरता है। सूरदास में व्यक्तिगत अच्छाइयर्या सामाजिक सन्दर्भ में ही उभरती है और वह प्रतिनिधि चरित्र बन जाता है। जालपा की छिपी पड़ी चारित्रिक अच्छाइयों उभरती नहीं अगर उसे उनको उभारने का सामाजिक वातावरण न मिलता, यह स्वयं अपनी उन अच्छाइयों से अनजान थी।

प्रेमचन्द के पात्रों के हृदय परिवर्तन के टेकनीक कोरी आदर्शवादी और निर्जीव टेकनीक नहीं है, बल्कि परिस्थिति-प्रेरित है। अतः चरित्र अधिक स्वाभाविक, जीवंत और अपने लगते है। सभी पात्र अच्छाई और बुराई से युक्त जीवन की स्वाभाविक परिस्थितियों के पात-प्रतिघात से स्वतः उभरते हैं। लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं और साथ ही परिस्थितियों के हाथ की कठपुतलियों भी नहीं है। उनके अपने आदर्श हैं, जो जीवन को विपरीत परिस्थितियों में भी विकास करने की प्रेरणा देते हैं।

चरित्र-चित्रण की विश्लेषणात्मक कला प्रेमचन्द के पात्रों के चरित्र मुख्यत दुहरी टेकनीक से विकसित होते हैं। अपने चारित्रिक गुण-अवगुण और परिस्थितियों का सपात। अत. पात्र अधिक सजीव और उनका चरित्र, मनोवैज्ञानिक है। प्रेमचन्द ने अपनी ओर से बहुत कम पात्रों का परिचय या उनकी चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यास घटना प्रधान कहे जा सकते है, किन्तु उत्तरा के अधिकांश उपन्यास चरित्र प्रधान है। उन्होंने अनेक अविस्मरणीय स्त्री-पुरुष पात्रओं का गुजन किया है, विशेषकर

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियों

विन वर्ष में से। यह बात से। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि प्रेमचन्द ने चरित्र-चित्रण के लिए विश्लेषणात्मक कला का अनुसरण किया है, अर्थात् चरित्रों का परिस्थिति सापेक्ष विकास हुआ है। हर पात्र की जीवनगत परिस्थितियों का विश्लेषण करके यह पता लगाया जा सकता है कि उस पात्र का चरित्र ऐसा क्यों हुआ या उसने ऐसा क्यों किया ? यानी पात्रो के चित्रण में भी आदशों-मुख यथार्थवादी शैली का प्रयोग किया गया है।

शैली की सांकेतिकता तथा प्रतीकात्मकता प्रेमचन्द ने देशकाल, पात्र और घटना के चित्रण में न तो नितात स्कूल और अभिधात्मक शैली का प्रयोग किया है और न नितान्त सूक्ष्म दुर्योध शैली का बल्कि बीच की सन्तुलित सांकेतिक शैली का प्रयोग किया है। व्यंगात्मक शैली का भी प्रयोग किया है, विशेषकर शोषक वर्ग या पाखण्ड वर्ग के चित्रण में। प्रतीक शैली का प्रयोग बहुत कम है। किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से सभी वर्णन और चरित्र-चित्रण प्रतीकात्मक है, क्योंकि सभी वर्णनों और पात्रों का स्वरूप प्रतिनिधित्वपूर्ण है। इस प्रकार वे समाज की स्थिति विशेष अथवा

पात्रों के प्रतीक बन जाते हैं। भाषा-चूंकि प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों जनसाधारण के अर्थात् किसान, मजदूर, अछूत

और निम्न मध्यम वर्ग के जीवन पर आधारित है, अतः भाषा भी जनसाधारण की बोलचाल वाली है। उसमे मुहावरों, लोकोक्तियों और कहावतों का खूब खुलकर प्रयोग हुआ है। वह इतनी सरल है कि अनपढ़ भी सुनकर आसानी से समझ सकता है, किन्तु उसमें अनगढ़पन नहीं है। सरल होते हुए भी साहित्यिक है और परिमार्जित है। प्रेमचन्द आरम्भ में उर्दू के हो लेखक थे। उन्होंने शिक्षा भी उर्दू में ही पाई थी। अतः उर्दू की रवानी और प्रवाह, जिन्दादिली और मुहावरेदानी उसके विशेष गुण हैं। सहजता, रोचकता, सजीवता, प्रभावशीलता, मुहावरेदानी और

प्रवाहशीलता उनकी भाषा के सहज गुण हैं। देशकाल, घटनाओं और परिस्थितियों के चित्रण में चिन्त्रोपमता-प्रेमचन्द के

उपन्यासों में विशेषकर उत्तरार्द्ध के उपन्यासों में देशकाल, घटनाओं और परिस्थितियों के चित्रण में एक सजीव चित्रोपमता के दर्शन होते हैं। सारा वर्णन पाठक की आँखों के सम्मुख ऐसे सजीव रूप में प्रस्तुत हो जाता है मानो वह उसका प्रत्यक्ष दृष्टा अथवा स्वयं एक पात्र के रूप में भोक्ता हो। इसलिए उनके उपन्यासों की कथा और पात्रों के जीवन के साथ पाठक का हार्दिक संवेदनात्मक तादात्म्य अधिक गहरा हो जाता है। पाठक पात्रों की सजीव भूमिका में अपने को कल्पित करके उसी स्थिति में जीता है। पात्रों और कला के साथ पाठक की इतनी निकटता का अनुभव, जितना प्रेमचन्द के उपन्यासों में हो पाता है, उतना हिन्दी के बहुत कम उपन्यासो में हो पाता है।

कला की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कचा चयन में निम्न

वर्ग की उपेक्षित जीवन में भी सौन्दर्य खोज निकालने की कला के दर्शन होते हैं। कथा-संविधान में जीवन को उसको समग्रता में चित्रित करने की विशिष्ट कला दृष्टिगोचर होती है। कथा एवं पात्रों में प्रतिनिधित्व को गरिमा और व्यापकता है। उनकी कथा एक व्यक्ति, परिवार या स्थान को कथा होते हुए भी सब व्यक्तियों की एवं परिवारों की और पूरे भारतीय समाज की कथा है। उनक शैली में चित्रोपमता, सजीवता और रोचकता है, सांकेतिकता और व्यंगात्मकता है। उनको भाषा उनके व्यक्तित्व के समान है और अपनी सरलता, सहजता और सादयों में प्रभावशील है।

1.10 स्कन्दगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

स्कन्दगुप्त प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक कहा जाता है और अधिकांश समीक्षक उसे ऐतिहासिक नाटक मानते हैं परन्तु साथ ही इसकी अनैतिहासिकता सिद्ध करने वाले कुछ विचारक भी है। इन विद्वानों का कहना है कि 'स्कन्दगुप्त' का ऐतिहासिक आधार प्रामाणिक नहीं है। स्कन्दगुप्त की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में यहाँ विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रसाद का दृष्टिकोण

स्वयं प्रसाद जी ने अपनी नाट्यकृति 'स्कन्दगुप्त' विक्रमादित्य के प्रथम संस्करण के परिशिष्ट में स्कन्दगुप्त नाटक की आधार भूमि के सम्बन्ध में सविस्तार विचार किया है। उन्होंने मगध का गुप्तराजवंश, मालव का राजवंश, विक्रमादित्य तथा कालिदास नामक चार उपशीर्षकों के अन्तर्गत अपने इस नाटक के ऐतिहासिक आधार को स्पष्ट किया है। अतः उनके विचारों के उल्लेखनीय अंश यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं।

1. मगध का गुप्त राजवंश-गुप्तवंश के परम प्रतापी सन्नाट समुद्रगुप्त ने सन् 335 से 385 तक राज्य किया। उसके पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य-पाटलिपुत्र का विक्रमादित्य का शासन-काल सन् 385 से 413 तक रहा। उसका पुत्र कुमारगुप्त, महेन्द्रादित्य मालव का विजेता कहा जाता है और उसने सन् 413 से 455 तक राज्य किया। इसका पुत्र स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य-उज्ययिनी का द्वितीय विक्रमादित्य-महान् वीर था और उसने सन् 455 से 467 तक राज्य किया। उसके चांदी के सिक्कों पर 'परम भागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्त' अंकित है। उसके पश्चात् उनका विमातापुत्र पुरगुप्त प्रकाशादित्य गद्दी पर बैठा जिसने केवल दो वर्ष शासन किया। स्कन्दगुप्त के पश्चात् उसने 'श्री विक्रम' नामक उपाधि ग्रहण कर ली क्योंकि उसके सोने के सिक्कों पर भी 'श्री विक्रम' मिलता है।

2. मालव का राजवंश मालवराज नरवर्मा, सिंहवर्मा का पुत्र था जो गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त का समकालीन था। मन्दसौर में सन् 424 के शिलालेख के अनुसार नरवर्मा और विश्ववर्मा स्वतन्त्र मालवंश के तथा गंगाधार के शिलालेख में श्री विश्ववर्मा स्वतंत्र नरेश के रूप में वर्णित है। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र बंधुवर्मा मालव के सिंहासन पर बैठा और गुप्त सम्राट कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य के अधीन हुआ। विश्वकर्मा का छोटा पुत्र भीमवर्मा सम्भवतः कौशाम्बी का शासक था।

३. विक्रमादित्य-इस सम्बन्ध में प्रसाद ने अत्यधिक विस्तार के साच विचार किया है और उनके विचारों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

सूर्या स्कन्दगुप्त

या पर (i) चन्द्रगुप्त द्वितीय का नाम तो चन्द्रगुप्त क्रमादित्य थी। उसने उसको उपाधि विक्रमादित्य सौराष्ट्र के शकों को पराजित किया।... शकीर होना विक्रमादित्यै होने के लिए आवश्यक था।

(ii) कथा सरितसागर में लिखा है- 'विक्रमादित्य इत्यागीद्राजा पाटलिपुत्र थे।'

(iii) गुप्तवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त का मालव पर मभ्पूर्ण अधिकार नहीं थाः वह उज्जयिनीनाथ नहीं थे। उनकी उपाधि विक्रमादित्य थी, तब उनसे पहले एक विक्रमादित्य 385

से पूर्व हुए थे। (iv) ई. पूर्व पहली शताब्दी में एक विक्रमादित्य हुए।

(v) स्कन्दगुप्त तीसरा विक्रमादित्य था।

(vi) कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्कों पर 'परम भागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्य' स्पष्ट मिलता है। और इसी के समय में मालव के स्वतंत्र नरेश विश्वकर्मा के पुत्र बुन्धवर्मा ने गुप्त साम्राज्य की अधीनता स्वीकार की। गंगाधर के शिलालेख द्वारा विक्रमाब्द 480 तक मालव का स्वतंत्र रहना प्रमाणित होता है और 529 विक्रमाब्द के मंदसौर वाले शिलालेख में कुमारगुप्त की सार्वभौम सत्ता मान ली गई।

(vii) स्कन्दगुप्त के सिक्कों में 'परम भागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्त' का उल्लेख मिलता है। स्कन्दगुप्त के शिलालेख से प्रकट है कि गुप्त कुललक्ष्मी विचलित थी। म्लेच्छों और हूणों से आर्यावर्त्त आक्राना था। अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए स्कन्द्र ने धरती पर सोकर रातें बितायी। जूनागढ़ के शिलालेख से यह भी स्पष्ट है कि स्कन्द ने हूणों से युद्ध कर अपने विकट पराक्रम से धरती को विकम्पित कर दिया और शकों का मूलाच्छेद कर धर्मदत्त को वहाँ का शासन नियुक्त किया।

(viii) स्कन्द को सौराष्ट्र के शकों और तोरमाण के पूर्ववर्ती हूणों से लगातार युद्ध करना पड़ा था तथा उसका विमाता-पुत्र पुरगुप्त भी उसके विरुद्धं षड्यन्त्र रचता था। तत्कालीन विचलित राजनीति को स्थिर रखने के लिए प्राचीन राजधानी पाटलिपुत्र या अयोध्या से दूर एक केन्द्र स्थल में राजधानी स्थापित करना सर्वथा आवश्यक था। इसीलिए स्कन्दगुप्त ने वर्तमान मालव की मौर्यकाल की अवन्ती नगरी को अपने साम्राज्य का केन्द्र बनाया और शक तथा हुणों को परास्त कर आर्यावर्त से विदेशी आक्रांताओं का मूलाच्छेद कर 'विक्रमादित्य' नामक उपाधि धारण की।

(ix) पिटारी के स्तम्भ... से यह भी स्पष्ट होता है कि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ही द्वितीय कहरूर-युद्ध का विजेता तृतीय विक्रम था।

4. कालिदास-प्रसाद ने मातृगुप्त और कालिदास को एक ही व्यक्ति मानते हुए उसे स्कन्दगुप्त को समकालीन सिद्ध करने के पक्ष में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किए हैं-

(1) काव्यकार कालिदास और नाट्यकार कालिदास पृथक-पृथक थे।.... हम नाटककार कालिदास को प्रथम और ईसवी पूर्व का कालिदास मानते हैं।.... दूसरे कालिदास की 'उपाधि' कालिदास थी न कि उसका नाम कालिदास था।.... यह काव्यकार कालिदास अनुमानतः पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और छठवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जीवित थे। लोगों का मत है कि ये काश्मीर के थे। मेद्यदूत में जो इनका वर्णन है वह काश्मीर-वियोग का वर्णन है। इसका समय हूणों के उत्पाद और आतंक से पूर्ण था। कालिदास के नाटकों में इस भाव का विकास इसलिए नहीं है कि वह शकों के निकल जाने पर सुखः शान्ति का काल था।

(ii) ज्योतिर्विदाभरण ईसवी की की पाँचवीं शताब्दी के अन्त और छठी के आरम्भ में होने वाले कालिदास की कृति है। नाटककार (कालिदास) के पीछे भिन्न एक दूसरे कालिदास के होने का और केवल काव्यकार होने की उसमें प्रमाण हैं।.. काव्यकार कालिदास नाटककार से भिन्न हुए। 'कालिदास' उनकी तपाधि थी, परन्तु वास्तविक नाम क्या था ?

(iii) 500 वर्ष के प्राचीन 'पराक्रम बाहु चरित्र' में कहा गया है कि सिहल के राजकुमार धातुसेन (कुमारदास) से कालिदास की बड़ी मित्रता थी और उसने कालिदास को अपने यहाँ आमंत्रित भी किया था। महावंश के अनुसार उसका राज्यकाल 511 से 524 ई. तक। वह स्वयं अच्छा कवि था तथा 'जानकी चरित्र' का रचियता भी था। है और

(iv) 'राजतरंगिणी' में एक विक्रमादित्य का वर्णन है जिन्होंने प्रसन्न होकर काश्मीर का राज्य 'मातृगुप्त' नामक एक कवि को दिया था। डाक्टर भाऊदाजी का मत है कि यह मातृगुप्त ही कालिदास थे। प्रवरसेन, मातृगुप्त और विक्रमादित्य परस्पर समकालीन छठी शताब्दी के माने जाते हैं।

(v) महाराष्ट्रीय भाषा का काव्य 'सेतुबन्धु' दहमु प्रवरसेन के लिए कालिदास ने बनाया था।... प्रवरसेन का नाम 'तजीन' भी था और संभवतः उसकी सभा में रहकर कालिदास ने अपनी जन्मभूमि काश्मीर में यह पहली कृति तैयार की होगी क्योंकि उस समय प्राकृत का प्रचार काश्मीर में अधिक था। वह उसकी प्राकृत है जो उस समय भारतवर्ष में राष्ट्र भाषा के रूप में व्यवहत थी और इसीलिए उसका नाम महाराष्ट्री था।.... कालिदास के संस्कृत काव्यों और महाराष्ट्रीय काव्य में कल्पना-शैली और भाव का साम्य भी है।

(vi) ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कारण से प्रवरसेन और मातृगुप्त (कालिदास) में अनबन हो गयी तथा मातृगुप्त को राजसभा और काश्मीर छोड़कर मालव आना पड़ा..... अब उन्हें स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का हो आश्रित मानना होगा क्योंकि तुंजीन और तोरमाण के समय में काश्मीर पारस्परिक विग्रह के कारण अरक्षित था। उज्जयिनी के विक्रमादित्य के लिए यह उल्लेख भी है 'सकाश्मीरान्सकौवेरी काष्णश्चरी कृता' और स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य को हो चदान्यता थी कि काश्मीर विजयकर उसे मातृगुप्त को दान कर दिया।

स्वमत निर्धारण उक्त चार सीर्षकों के अन्तर्गत विवादास्पद ऐतिहासिक तथ्यों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने के उपरान्त प्रसाद ने अपने इस नाटक के सम्बन्ध में कुछ निजी मान्यताएँ भी प्रस्तुत की है, जिन्हें कि इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

(1) विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरान्त मातृगुप्त काश्मीर राज्य छोड़ देता है और वही समय सिहल के कुमार धातुसेन का भी हैं अतः इस नाटक में धातुसेन भी एक पात्र है। (B) बन्धुवर्मा, चक्रपालित, पर्णदस, सर्वनाग, भटार्क, पृथ्वीसेन, खिगिल प्ररुपाठकोदि
भीमवर्मा, गोविन्दगुप्त आदि सभी पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति है।

(iii) अनन्तदेवी का स्पष्ट उल्लेख पुरगुप्त की माता के रूप में मिलता है और यही पुरगुप्त स्कन्दगुष्ठ के बाद शासक हुआ।

(iv) स्कन्दगुप्त की माता का नावै देवकी रखा गया है और स्कन्दगुप्त के एक किलालेख में 'हतरिपुरिव कृष्णोदेवकीभ्युपेतः' उल्लेख भी मिलता है।

(v) देवसेना और जक्माला वास्तविक और कल्पित पात्र दोनों ही हो सकते हैं। विजया, कमला, रामा और मालिनी जैसी किसी दूसरी नागधारिणी स्त्री की भी उस काल की सम्भावना है। तब भी ये कल्पित हैं।

प्रसाद की मान्याताओं का खण्डन यद्यपि प्रसाद ने अपने नाटक 'स्कन्दगुप्त विक्रमादिन्य' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर
विस्तारपूर्वक विचार किया है पर कुछ समीक्षक इसे सर्वथा अनेनिहारिक नाटक मानते हैं और श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने तो इस सम्बन्ध में निम्नांकित विधा

(1) आज की पुरातात्विक सामग्री हमारे सम्मुख उपस्थित है उनसे इस बात में सन्दे उपस्थित हो गया है कि स्कन्दगुप्त कुमारगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र अथवा वैध उत्तराधिकारी था।

(2) स्कन्दगुप्त का जो अभिलेख भितरी (जिला गाजीपुर) में पाया गया है उसमें उसने अपने पिता तथा सम्पूर्ण पितामहों की सूची दी है। उनके साथ ही उनकी पत्नियों अर्थात् अपनी पितामहियों का भी उल्लेख किया है। पर पिता के नाम के बाद उसमें माता का नाम नहीं दिया है। निःसन्देह ही उनके पीछे कोई सामाजिक अथवा पारिवारिक रहस्य अवश्य है। जब तक ऐसी कोई बात न हो जो समाज अथवा परिवार में उसकी स्थिति को ही न बताती हो, तब तक कोई व्यक्ति अपनी माता का गौरव मानने में संकोच न करेगा। यह इस सन्देह को पुष्ट करता है कि स्कन्दगुप्त की माँ राज परिवार की नहीं थी और उसको राजमहिषी अथवा महिषी का पद प्राप्त नहीं था। इस प्रकार स्कन्दगुप्त किसी भी प्रकार राज्य पाने का अधिकारी न था। बिना अधिकारी हुए ही उसने अपने पराक्रम से ही राज्यधिकार प्राप्त किया था।

(3) स्कन्दगुप्त को राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए राजकुमारी से संघर्ष करना पड़ा था पर वह संघर्ष पुरगुप्त से न होकर घटोत्कचगुप्त से हुआ था। तुमैन (जिला गुना, मध्य भारत) से एक खण्डित शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि घटोत्कचगुप्त प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र था।

(4) स्कन्दगुप्त के पश्चात् स्वयं पुरगुप्त के शासक होने का कोई भी प्रमाण उपलब्ध
नहीं है।

(5) प्रसाद जी ने कुमारगुप्त को विलासी शासक के रूप में अंकित कर उसके प्रति अन्याय किया है।

(6) निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि गोविन्दगुप्त, स्कन्दगुप्त के समय तक जीवित थे।

(7) पर्णदत्त, चक्रपालित, बंधुवर्मन, भीमवर्मन, मातृगुप्त, शर्वनाग, भटार्क, पृथ्वीसेन आदि पात्र ऐतिहासिक अवश्य है पर जिस रूप में वे प्रस्तुत। किये गये गये हैं उन उनका ऐतिहासिक अस्तित्व संदिग्ध है।

(8) नारी पात्रों में अनन्तदेवी के अतिरिक्त सभी कल्पित हैं।

स्कन्दगुप्त की ऐतिहासिकता

यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' नाटक को सर्वथा
अनैतिहासिकता सिद्ध करना उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि प्रसाद जी द्वारा प्रस्तुत किए प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य कई ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हैं जिनके आधार पर नाटक की कई घटनाएँ प्रमाणित सिद्ध हो जाती हैं: जैसे-

1. श्री.आर.डी. बैनजर्जीकृत-The age of the Imperial Guptas के अनुसार सम्राट कुमारगुप्त दुर्बल और विलासी शासक था तथा महाराजकुमार गोविन्दगुप्त की मृत्यु स्कन्दगुप्त के जीवन काल में हुई थीं।

१. सी स्टेन्ट गय चौधरी की Political History of Ancient India के अनुसार स्कन्दगुप्त की योग्यता और पराक्रम की धाक कुमारगुप्त के समय में ही जम गई थीं।

8. पर मूल Corpus Inseriptionunm Indicarum Vol. III के अनुसार सम्राट कुमारगुप्त ने पुष्यमित्रों से युद्ध किया था और समृद्ध व सशक्त पुष्यमित्रों को भलीभांति पराजित कर स्कन्दगुप्त शासक बना। उसकी पदवी 'परम भट्टारक महाराजाधिराज' ची और वह क्षितिज, शतपति भी। था। उसने साम्राज्य का विभाजन प्रान्तों में कर, प्रान्तीय शासक नियुक्त किए और इस प्रकार सौराष्ट्र अन्तर्वेद व कोमल में क्रमशः पर्णदत्त, शर्वनाग व भीमवर्मा की नियुक्ति की गई। प्लीट ने देवक को स्कन्द की माता कहा है।

ऐतिहासिक तथ्यों ये यह ती स्पष्ट हो हो जाता है कि प्रसाद के स्कन्दगुप्त की कई घटनाएँ शभाणिक है अत. उसे सर्वया अप्रामाणिक या अनैतिहासिक कहता उपर्युका नहीं जान पड़ता है।

इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय

जैसा कि स्वयं प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' के प्रथम संस्करण के परिशिष्ट में लिखा है पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि जहाँ तक सम्भव हो सका है न होने दो गई है। फिर भी कल्पना का अवलम्ब लेना ही पड़ा है, केवल घटना भी परम्परा ठीक रखने के लिए। इस प्रकार प्रसाद नाटक में कथावस्तु को सुसम्बद्ध रखने के लिए कुछ कल्पित घटनाएँ और पात्र भी जोड़े गये हैं तथा इनके उपयोग से नाटक कां सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया है।

वस्तुतः नाटककार या उपन्यासकार अपनी कल्पना का प्रयोग करने का एक अधिकार रखता है। और वह कचावस्तु पर। ध्यान देते हुए उपर्युक्त कल्पनाएँ भी कर सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रसाद को इतिहास का गहन अध्ययन था पर वे इतिहासकार की अपेक्षा साहित्यकार अधिक थे। अतः अपनी साहित्यिक परिधि में उद्देश्य पूर्ति की दृष्टि से कल्पना का अवलम्ब ऐतिहासिक घटनाओं में परिवर्तन-परिवर्द्धन भी कर देते थे। श्री शिवप्रसाद सिंह ने कहा भी है इतिहास यदि उनकी स्थापनाओं से सामंजस्य रखता है तो वे उसकी अभ्यर्थना करते हैं। यदि ऐतिहासिक मान्यताएँ उनके पक्ष के विरोध में जाती हैं तो वे उनका खंडन करने के लिए इतिहास की शरण लेते

हैं और यदि खंडन नहीं कर पाते तो उन्हें निराधार कहने में भी संकोच का अनुभव नहीं करते। एक बात का प्रसाद अवश्य हमेशा ध्यान रखते हैं कि उनकी सुनिश्चित मान्यताएँ किसी न किसी प्रकार का प्रश्रय कर सकें। अपनी मान्यताओं के प्रकार के लिए नाटकों से ज्यादा सुविधापूर्ण और दूसरी काव्य विधा नहीं, तटस्थ और स्थिति-प्रज्ञ रहकर वे अपने पात्रों के माध्यम से अपनी विचार धाराओं का बलपूर्वक प्रचार कर सकें, जी उन्हें अभिष्ट था। इस प्रकार अपने सांस्कृतिक या ऐतिहासिक नाटकों में प्रसाद ने स्वीपलब्ध सत्य को अभिव्यक्ति दी। इसलिए स्कन्दगुप्त में भी प्रसाद ने कल्पना और इतिहास का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है, यथा- 1. अवन्ती दुर्ग में स्कन्द को मालव का राज्य देने का निश्चय और मालवेश बन्धुवर्मा के त्याग की सभी घटनाएँ काल्पनिक ही हैं।

2. भटार्क और अनन्तदेवी द्वारा हूणों से गुप्त संधि की योजना, गांधार घाटी के युद्ध, बन्धुवर्मा की मृत्यु, कुम्भा के बाँध में स्कन्द का वह जाना आदि घटनाएँ प्रसाद की स्वतंत्र कल्पना पर ही आधारित है।

3. प्रख्यातकीर्ति और धातुसेना द्वारा ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष को रोकने के प्रयास की घटना काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक जान पड़ती है; क्योकि स्कन्दगुप्त के शासनकाल काल के अन्तिम दिनों में बाहाण धर्म और बौद्ध धर्म के मध्य संघर्ष चलने की सम्भावना अवश्य की जा सकती है।

4. शर्वनाग के पुत्रों की हत्या, हूणों द्वारा देवसेना पर अत्याचार के प्रयास, कमल की कुटी में स्कन्दगुप्त की चिन्ता आदि घटनाएँ भी काल्पनिक हैं। 5. महादेवी देवकी की समाधि की योजना भी नाटकार की मनःसुष्ट घटना ही है और वहाँ पर्णदत्त व देवसेना के कार्य, स्कन्द आगमन, विजया की प्रर्वचना व आत्म-हत्या, विजय के रत्नागृह की प्राप्ति तथा पुनःसैन्य-संगठन आदि घटनाएँ भी प्रसाद की स्वतंत्र कल्पनाएँ, है। 6. प्रख्यातकीर्ति द्वारा हूण, सेना के कार्य में अवरोध, धातुसेन का अनन्तदेवी, पुरगुप्त और हूण सेनापति को बन्दी कर लेना, पर्णदत्त की मृत्यु तथा खिगिल की हार आदि घटनाएँ भी काल्पनिक है।7. नाटक की अन्तिम और श्रेष्ठतम घटना 'देवसेना की विदा' भी प्रसाद के कवि-हृदय की कोमल कमनीय सर्जना है।

निष्कर्ष इस प्रकार सभी दृष्टियों से विचार करने के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्कन्दगुप्त नाटक में इतिहासे और कल्पना का अपूर्व व सुन्दर समन्वय है।

"नाटककार पर रचना-काल की परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव

उत्तर- आधुनिकता और सामाजिक समस्यायें स्कन्दगुप्त में आधुनिकता भी है, लेखक ने जहाँ एक ओर पात्रों के सहारे जीवन में संघर्षों का चित्रण किया है, वहाँ प्रसंगानुसार सामयिक प्रश्नों पर भी विचार किया है।

राजनीतिक दृष्टि से प्रसाद-युग हलचल का समय था और रौलेट ऐक्ट, जलियाँ वाला बाग का हत्याकांड आदि घटनाएँ भारतीयों को विक्षुब्ध कर रही थीं। यद्यपि गाँधी जी मानवता में विश्वास करने का पाठ पढ़ाते हुए अहिंसा पर जोर दे रहे थे पर सर्वसाधारण जनता में विदेशी शासकों के प्रति असन्तोष एवं अविश्वास के भाव व्याप्त हो गये थे अतः भारत के अतीत की गौरवपूर्ण स्मृतियाँ देश के नाम पर मर मिटने के लिए वीरों का आह्वान करने लगी और लोकमान्य तिलक का 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' मन्त्र देश के कौने-कौने में गूंज उठा था। मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयद्रश वध' में कहा भी है- अधिकार खोकर बैठे रहना यह महादुष्कर्म है। न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।।

'स्कन्दगुप्त' नाटक के आधार पर प्रसाद की देशभक्ति का स्वरूप

उत्तर- इस प्रकार स्वाधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना न केवल धर्म था अपितु उनके नाम पर मौने बैठे रहना पाप भी था। इसीलिए हमें 'स्कन्दगुप्त' में तत्कालीन उग्र देशभक्ति व वीरत्व-भावना के दर्शन होते हैं-देखिये, "नहीं तो क्या रोने से भीख माँगने से कुछ अधिकार मिलता है? उसके हाथों से बालक नहीं उसका अधिकार ही कैसा? और यदि भीख मांगकर मिल भी जाय, तो शान्ति की रक्षा कौन करेना।"

वस्तुतः भटार्क का यह कथन नरम दल वालों के प्रति चुनौती-सी है जो सरकार को स्मरण पत्र आदि देकर स्वराज्य प्राप्ति की आशा करते थे। इसीलिये प्रसाद जी ने कायर व भीरु पुरुषों के लिए उन्नति का मार्ग अवरुद्ध मानते हुए अनन्त देवी से कहलाया भी है, "जो चूहे के शब्द से भी शंकित होते हैं, जो अपनी साँसों से ही चौंक उठते हैं, उसके लिए उन्नति का कदाचित मार्ग नहीं है।" साथ ही उनकी दृष्टि में "अर्थ देकर विजय खरोदना तो देश की वीरता के प्रतिकूल है" और उन्होंने देश के लिये विशुद्ध पुरुषार्थी व वीर नरसिंहों की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए जयमाला से कहलाया भी है, "एक प्रलय की ज्वाला अपनी तलवार में फैला दो। भैरव के श्रृंड़ी नाद के समान प्रलय हुंकार से शत्रु-हृदय कंपा दो। वीर। बढ़ो, गिरो ती मध्याह्य के भीषण सूर्य के समान।"

वस्तुतः यह एक सत्याग्राही को नहीं बल्कि प्रांतिकारी को पुकार है। नाटक का नायक स्कन्दगुप्त स्पष्ट रूप में यह घोषणा करता है, "क्षत्रियों का कर्तव्य है-आगरा होना, विपति घर हँसते हुए आलिंगन करना, विभीषिकाओं की मुस्कराकर अवहेलना करना-और विपन्नों के लिए अपने धन के लिए देश के लिए प्राण देना।" इसीलिए वह देश के नाम पर अपने प्राण न्यौछावर कर देता है और इस आत्य-बलिदान के समय शोक करने की अपेक्षा भाव-भावना के असु चहाने के लिए कहता है 'यह रोने का नहीं आनन्द का समय है। कौन भौर इसी तरह जन्मभूमि में प्राण देता है, यही मैं ऊपर से देखने जाता हूँ।"

नाटककार ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि देश तभी स्वतन्त्रता की अनुभूति कर सकता है जब अनेक बौर आत्म बलिदान के लिये प्रस्तुत हों और केवल पुरुष ही नहीं नारी को भी स्वातन्य-यज्ञ में अपनी आहुति डालनी होगी। इसीलिये विजया से उन्होंने कहलाया भी है... एक नहीं, ऐसे सहस्त्र स्कन्दगुप्त, ऐसे सहस्त्रों देव-तुल्य उदार युवक, इस जन्मभूमि पर, उत्सर्ग हो आजाए। सुना दो यह संगीत जिससे पहाड़ हिल जायें और समुद्र कंप कर रह जाये, अंगड़ाइयों लेकर प्रचकुन्द की मोह-निद्रा से भारतवासी जाग पड़े। हम तुम गली-गली, कोने-कोने पर्यटन करेंगे, पैर घड़ेंगे, और लोगों को जगायेंगे।" इतना होते हुए भी प्रसाद द जी ने वीरत्व-भावना के ऊपर गाँधीबाद का अंकुश भी रखा है और गोविन्दगुप्त से कहलाया है- "वीरता केवल उन्माद नहीं है। केवल शस्त्र बल पर टिकी हुई वीरता बिना पर की होती है। उसकी दृढ़ भित्ति है. न्याय।"

'स्कन्दगुप्त' नाटक में देश-प्रेम की उत्कृष्ट भावना भी है और नाटककार ने देश व देश की प्रत्येक वस्तु के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए कहा है "जन्म भूमि! जिसकी धूल में लोटकर खड़े होना सीखा, जिसमें खेल-खेलकर शिक्षा प्राप्त की, जिसमें जीवन के परमाणु संगठित हुए थे तथा "भारत समग्र विश्व का है और सम्पूर्ण वसुन्धरा इसके प्रेम-पाश से आबद्ध है। अनादि काल से ज्ञान की, मानवता की ज्योति यह विकीर्ण कर रहा है। वसुन्धरा का हृदय भारत, किस मूर्ख को प्यारा नहीं है ? तुम देखते नहीं कि विश्व का सबसे ऊँचा श्रृंड्ग इसके सिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है?" साथ ही 'स्कन्दगुप्त' में अतीत के प्रति श्रद्धा व अतीत का गौरवगान भी है और नाटक की समाप्ति पर पाये जाने वाले गीत में विगत का गौरवगान, गौरव रक्षा का यत्न व देश के आन-बान पर बलिदान हो जाने की भावना भी है।

शासन के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण करते हुए प्रसाद ने राम-राज्य का आदर्श सर्वोपरि माना है और देवकी के इन शब्दों में उनकी वाणी ही मुखरित हो उठी है "तुम्हारी माता की मंगल कामना है कि तुम्हारा शासन-दण्ड, क्षमा के संकेत पर चला करे।" साथ ही वह धर्म को राजनीति से पृथक् देखना ही उचित समझते हैं और नारी जागरण व नारी-उत्थान की भावना भी व्यक्त करते हैं। वह नर और नारी को समान ही मानते हैं तथा पुरुष को नारी से श्रेष्ठ समझना उन्हें स्वीकार नहीं है।

नाटककार ने यह भी प्रतिपादित करना चाहा है कि भारत की नारियाँ हमेशा जीवन-संग्राम में पुरुषों के साथ रही हैं और जयमाला कहती भी है "हम क्षत्राणी हैं, चिर-सिंगिनी खड्गगलता का हम लोगों से चिर-स्नेह है।" इसी प्रकार सावित्री की भाँति रामा अपने पुण्य-प्रभाव से अपने पति की प्राण-रक्षा करती है और धातुसेन यह भी कहता है, "भारत की नारियों के कारण हो इस देश का मस्तक हमेशा ऊँचा रहा है" तथा कायर और देशद्रोही पुत्र को जन्म देने की अपेक्षा भारत की नारी बन्ध्या रहना अधिक श्रेष्ठ समझती है।

'स्कन्दगुप्त' में आध्यात्मिक श्रेणी के विकास को श्रेष्ठ माना गया है और मनुष्य में उदात्त वृत्तियों को आवश्यक मानते हुए कहा गया है, "लाभ ही के लिये मनुष्य सब काम करता, हो पशु बना रहना ही उसके लिये पर्याप्त था।" साथ ही एक स्थल पर मार्क्सवादी विचारधारा भी और कहा भी है, "अपरस्वत्य है भूखों का और धन पर स्वत्व देशवासियो का। इस प्रकार धर्म की पत्नों मुख अवस्था का भी चित्रण किया गया है और बौद्धों की देशद्रोहित का उल्लेख करते हुए ब्राह्मण धर्म पर भी व्यंग्य किये हैं तथा उसे टका धर्म माना हैलोभने हुनाका व्यवसाय चला दिया। दक्षिणाओं की योग्यता से स्वर्ग, पुत्र, घर पर विजय और मोक्ष तुम बेचने लगे।" इस प्रकार स्कन्दगुप्त अतीत के तट पर वर्तमान का चित्र है और उसमें आधुनिकता भी विद्यमान है।

1.11 शैली की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों की आलोचना

उत्तर- शैली की दृष्टि से विचार करने पर भी प्रसाद के नाटक सफल हो कहे जायेंगे और जैसा कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कहना है "प्रसाद ने न तो प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र से अपने को अलग किया है न पाश्चात्य नाट्य-विधियों का अन्धानुसरण। दोनों का उचित सामंजस्य उनकी नाट्यकला की प्रमुख विशेषता है। पूर्वक रंग, प्रस्तावना नान्दी पाठ, भरत वाक्य आदि का त्याग, (प्रारम्भिक नाटक इसके अपवाद हैं) अन्तर्द्धन्द्ध और बहिर्द्धन्द्र का प्राधान्य, चमत्कारपूर्ण प्रसंगों को अवतारणा, बस्तु-विन्यास का प्राधान्य, स्थिति परिवर्तन उपस्थित करने के लिए करुणा और भय का सम्मिलित चित्रण (अजातशत्रु में पद्मावती को मारने के लिए उदयन का उद्यत होना, 'स्कन्दगुप्त' में देवसेना का प्रपंचबुद्धि के जाल में फैसना) इत्यादि। इन सबका उचित प्रहग पाश्चात्य शैली के आधार पर किया गया है। अजातशत्रु में तो कार्य-व्यापार का विकास भी पाश्चात्य नियमों के ही आधार पर हुआ है। साथ ही नाटकों में 'रस' की प्रधानता, कार्य की अवस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों तथा संधियों की उपस्थिति (स्कन्दगुप्त तथा बन्द्रगुप्त में तीनों स्पष्ट लक्षित होती हैं), नायकों का उदात्त व्यक्तित्व, प्रख्यात कथानक अधिकारिक और प्रामणिक कथानकों का उचित सम्बन्ध, यह सब भारतीय आदर्शों के आधार पर हुआ है। स्वगत कवान का बाहुल्य, रंगमंच की रचनां के निर्देश का अभाव, गीतों का बाहुल्य हास्य का स्वरूप, इन सबकी उपस्थिति भी भारतीय परम्परा के आधार पर ही की गई है। इस प्रकार प्रसाद ने अपने नाटकों में दोनों का सुन्दर समन्वय उपस्थित किया है।"

प्रसाद जी के नाटकों के कथोपकथनों की समीक्षा

उत्तर- प्रसाद के नाटकीय संवाद व्यवहारानुकूल भाव-व्यंजक, संघर्षमय और मनोवैज्ञानिक है तथा उनमें एक प्रकार की अनूठी सजीवता-सी विद्यमान है। इसी प्रकार पात्रों के अनुरूप ही उनका वार्तालाप भी है और संवादों के माध्यम से पात्रों का चरित्र भी स्पष्ट हो सका है, उदाहरणार्थ-

"मालविका सम्राट अभी कितने ही भयानक संघर्ष सामने हैं।

चन्द्रगुप्त संघर्ष ! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़ कर देखो मालविका ? आशा और निराशा का, कुछ भावों का अभावों से द्वन्द्व ! कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची में एक रिक्त चिन्ह लगा देता है। मनोवेगानुसार कथोपकथन में पात्रों की भाषा में परिवर्तन भी होता रहता है और यहाँ

क्रोध का जितना सजीव चित्रण वार्तालाप द्वारा हुआ है 'रक्त में पिपासु ! क्रूर कम्मर्मा मनुष्य !

कृतघ्ना कीच का कोड़ा। नर्क की दुर्गन्ध। मेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होने दूंगी।' प्रसाद के

नाटकों में स्वगत पद्यात्मक संवादों की भी अधिकता है और कहीं-कहीं स्वगतो की अधिकता के कारण अस्वाभाविकता भी आ गयी है जैसे-

"विरुद्धक- (आप ही आप) घोर अपमान। अनादर की पराकाष्ठा और तिरस्कार की भैरव नाद ! यह असहनीय है। धिक्कारपूर्ण कौशल देश की सीमा कभी भी मेरी आँखों

सूर्या स्कन्दगुप्त ।

से दूर हो जाती: किन्तु मेरे जीवन का विकाससूत्र एक बड़े कोमल कुसुम के साथ बंध गया है।

हृदय नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है। जीवन के प्रभात का वह मनोहर स्वप्न, विश्व भर की मदिरा बनकर मेरे उन्माद की सहकारिणी कोमल कल्पनाओं का भंडार हो गया। मल्लिका । तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्ध रात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्र-लीक से कोमल होरक कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमल कंठ की रसीली ठानें पुकार कर तुम्हारा अभिनन्दन करने तुम्हें सम्हालकर उतारने के लिए नक्षत्र-लोक को गयी थी। शिशिर कणों से सिक्त पवन तुम्हारे उतारने की सीढ़ी बना था, उषा ने स्वागत किया, चाटुकार मलयानिल परिमल की इच्छा से परिचारक बन गया और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृन्त का आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा। उसके खेलते-खेलते तुम्हें उस आसन से भी उठाया और गिराया। तुम्हारे धरती पर आते ही जटिल जगत् की कुटिल गृहस्थी के आलबाल में आश्चर्यपूर्ण, सौन्दर्य रमगी के रूप में तुम्हें सबने देखा। यह कैसा इन्द्रजाल था-प्रभात का वह मनोहर स्वप्न था-सेनापति बन्धुल एक हृदयहीन क्रूर, सैनिक ने तुम्हें अपने उष्णीष का फूल बनाया और हम तुम्हें अपने घेरे में रखने के लिए कंटीली झाड़ी बनकर पड़े ही रहे। कौशल के हम आज भी कंटक स्वरूप है-

देश-काल और वातावरण में चित्रण की ओर भी प्रसाद का ध्यान गया है और उन्होंने व्यक्त व प्रच्छन्न दो ही रूपों में तत्कालीन अवस्था की झाँकी प्रस्तुत की है। जिस काल से व्यक्तियों का स्वरूप अंकित किया है उनमें उस काल की छाप विद्यमान है और प्रायः सभी नाटकों में तत्कालीन यथार्थ राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक स्थिति का भी आभास दिया गया है। साथ ही प्रसाद के नाटक सोद्देश्य है और संस्कृति-प्रधान नाटकों की रचना करते हुए भी उनकी दृष्टि जौवन की विभिन्न समस्याओं पर गयी है तथा ध्रुवस्वामिनी ऐतिहासिक, राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चाटक होते हुए भी समस्या नाटक है। इसमें प्रसाद जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो मनुष्य इतना पतित हो कि अपनी पत्नी की भी शकराज से भेंट करा दे वह पति कहलाने का अधिकार नहीं रखता और राजा यदि अयोग्य हो तो उसे राजसिंहासन से उतार देना चाहिए।

प्रसाद के नाटकों में आधुनिक युग के भी उज्जवल चित्र विद्यमान हैं और ध्रुवस्वामिनी तो सम्पूर्ण रूप में वर्तमान युग का ही चित्र है तथा अजातशत्रु में बिम्बसार का अजातशत्रु की अयोग्यता में राज्यभार न देने का बहाना करना ब्रिटिश साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का द्योतक है। चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त में भी आधुनिकता की झाँकी है तथा अलका का अलख जगाना वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों के भाग को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार 'आक्रमणकारी ब्राह्मण और बौद्ध का भेद न रखेंगे' में हिन्दू-मुस्लिम एकता की एक झलक है तथा 'मालव और मगध' को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह आत्म-सम्मान मिलेगा' में प्रांतीयता की झाँकी है। स्कन्दगुप्त तो राष्ट्रीय भारत का प्रतिरूप है और 'मेरा देश मालव नहीं तक्षशिला भी है, समस्त आर्यावर्त है में अखण्ड भारत की भावना है तथा 'अन्न पर अधिकार है भूखों का और घन पर अधिकार है देश का' में समाजवादी विचारधारा की झलक है। इसी प्रकार स्कन्दगुप्त में चैत्य के पास जो बौद्ध व ब्राह्मणों का संघर्ष है वह हिन्दू-मुस्लिम का रूप प्रस्तुत करता है।

1.12 'स्कन्दगुप्त' नाटक के आधार पर देवसेना का चरित्र-चित्रण

उत्तर- आदर्श नारी-चरित्र-वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में नारी पात्रों का महत्व है और कथावस्तु के अन्तर्गत उनका उतना ही महत्व है जितना कि पुरुष-पात्रों का। चूंकि प्रसाद सभी पात्र का चारित्रिक विद्यास कृत्रिम न होकर अर्न्तद्वन्द्र व घटनाओं के यात प्रतियातों से होने वाले चरित्र-विकास की मनोवैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर हुआ है। अतः माननी अंतराकी दी परस्पर विरोधी सद व असद प्रवृत्तियों के आधार पर उनके नारी पात्रों के भी दो वर्ण दोख पड़ते हैं।

एक विचारक के कथानुसार 'उनकी नारी पात्रों का एक वर्ग वह है जो जीवन के सुख दुःखी की, धूप-छाँह भरी कठिन दोपहरी में भी अपने निश्चित आदों का संबल लिरी सतर क्रियमाण रहता है। ऐसे पात्रों को हम आदर्श पात्रों की कोटि में रख सकते हैं। आध्यात्मिक आदर्शों में निःस्वार्थ स्याम, क्षमा, करुणा, अहिंसा एवं सर्वभूत हित कामना आदि आत्मपरिष्क आदशों का समावेश होता है और आधिभौतिक के अन्तर्गत जातीय गौरव, राष्ट्र-प्रेम आत्मसम्मान, आदि जीवनोत्कर्ष सम्बन्धी आदर्श आते हैं। ये आदर्शपूर्ण पात्र व्यष्टि को समष्टि के लिये बलिदान कर देते हैं। इन आदर्शों के अनुगामी पात्रों की हम दूसरे शब्दों में 'सती-गुणी- पात्र' भी कह सकते हैं।

देवसेना मालवराज बंधुवर्मा की बहिन है और 'स्कन्दगुप्त' नाटक की प्रधान नारी पात्र है। वह एक आदर्श पात्र ही है और जैसा प्रो. राजेश्वर प्रसाद अर्गल का कहना है, 'देवसेना का चरित्र प्रसाद जी की एक अलौकिक भेंट है। प्रकृति की गोद में पली हुई बनदेवी मूक प्रणय की करुण कहानी है। देश और प्रेम के लिये जिसका उत्सर्ग परिजात के फूल से भी कोमल, हिमालय से भी महान् और वेदना से भी कठोर रहा हो, जिसने कोयल के मधुर संगीत में अपनी वेदना का स्वर मिलाकर हृदय में क्रन्दन मचाने वाले संगीत की रचना की हो, वर्षों के मीठे स्वप्ने के साकार स्वरूप की कल्पना की हो, नीड़ों द्वारा पाली हुई आकांक्षाओं के सुपल को वापिस लौटा दिया हो इसी बाला का यह सौम्य सुन्दर चित्र है।'

संगीत-प्रियता और प्रकृति प्रेम-देवसेना के चरित्र में संगीत-प्रियता का गुण विशेष रूप से विद्यमान है और उसका संगीत प्रेम जन्मजात है तथा जीवन के विषम क्षणों में भी वह संगीत की तरंगों में मग्न रहती हैं। मालव दुर्ग पर हूणों व शकों के सम्मिलित आक्रमण के समय भी वह गाना चाहती हैं और उसकी संगीत प्रियता के अतिरके को देख भीमवर्मा कहता भी है. 'देवसेना तुझे गाने का भी विचित्र रोग है।' परन्तु हम इसे चारित्रिक त्रुटि नहीं कह सकते क्योंकि स्थूल व बाह्य सृष्टि से संगीत को देखने वाले भले ही संगीत-प्रियता को रोग समझ बैठे पा वास्तव में संगीत रोग नहीं है। देवसेना तो संगीत को ब्रह्म की सत्ता के समान सर्वत्र व्याप्त देखते है और वह कहती भी है- 'प्रत्येक परमाणु के मिलने में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विरक्त कर रखा है, इसी से तो उसका स्वर विस वाणी में शीघ्र नहीं मिलता... पक्षियों को देखों, उनकी चहचह, कल-कल, छल-छल कोकली में रागिनी है।

अपने इन उद्‌गारों से देवसेना सामान्य अनुभूति के स्वर से ऊँचे उठ रहस्यात्मक अनुभूरी के क्षेत्र में पहुंची हुई जान पड़ती है और उसको भावनाभिव्यक्ति संकेतात्मक व गम्भीरतम है जाती है। इसीलिए परिजात वृक्ष का परिचय देते समय वह अपना ही जीवन अप्रस्तुत रूप से व्यक्त करती है और उसका चरित्र मानव-पहुंच से बहुत ऊँचा उठा जान पड़ता है। यह संगीर की प्रभविष्णुता और मनोरमता विश्व-प्रकृति में तो सर्वत्र देखती ही है पर मानव संस्कृति में थे उसका मंगलमय रूप स्वीकार करते हुए कहती है, 'सर्वात्मा के स्वर में आत्म-समर्पण के प्रत्येक काल में अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का विस्मृत हो जाना एक मनोहर संगीत है।'

देवसेना का संगीत-प्रेम भावावेष्ठित भी है और एक विचारक ने तो उसके प्रति यही कहा है कि देवसेना एक करुणा भोगी सिहरन के समान है जो नाटक में एक नीर-भरी बदली बनकर आती है, उसे लक्ष्य कर जयमाला कहती भी है जब तू गाती है तब तेरे भीतर की रागिनी रोती है और वह स्वयं अपनी सखी से कहती है, 'जब हृदय में रुदन का स्वर उठता है' तभी संगीत की घीणा मिला लेती हूँ। संभवतः जिस स्कन्द का यह मन ही मन अनुराग करती थी, उसे विजया की और आकृष्ट देख उसके हृदय में वेदना हिलोरें लेने लगती है और उसका संगीत भी वेदनायुक्त हो जाता है। एक स्थल पर वह कहती भी है, 'मेरे प्रिय गान। अब क्यों गाऊँ और क्यों सुनाऊँ ? इस बार-बार के गाए हुए गीतों में क्या आकर्षण है-क्या बल है जो खींचता है? केवल सुनने को नहीं प्रत्युक्त जिसके साथ अन्तकाल तक कंठ मिला रखने की इच्छा जग जाती है।'

पावन प्रेम-व्यंजना-देवसेना की प्रणय कथा की अत्यन्त हृदयस्पशों है और अपने जीवन के बसंतकाल में-जिस स्कन्द की प्रतिभा मानस में प्रतिष्ठत करती है वही विजया की ओर आकृष्ट हो जाता है। मालव की राज सभा में विजया के प्रति कहे गए स्कन्द के इस कथन- 'विजया, यह तुमने क्या किया' से वह स्कन्द के हृदय की दशा समझ लेती है परन्तु वह सामान्य नारी की भाँति ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित नहीं होती। । वह अपनी असाधारण गम्भीरता और सहिष्णुता

से अपने नारी हृदय कीं सहज दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर मानव जीवन के अत्यन्त उच्च स्तर पर स्थिर होती है।

यही उसके चरित्र की महानता है पर विजया उसे समझ नहीं पाती और उस पर आरोप लगाती है, तब वह स्पष्ट कह देती है- 'शीघ्रता करने वाली स्त्री! अपनी असावधानी का दोष दूसरों पर फेंक। देवसेना मूल्य देकर प्रणय नहीं लेना चाहती है....। इस प्रकार वह यह स्पष्ट कर देती है कि विजया की भांति वह प्रेम को खरीदना नहीं चाहती और प्रणय हृदय की शुद्ध अनुभूति ही है। वह चाहती है कि किसी प्रकार विजया के हृदय से यह भ्रम दूर कर दिया जाय कि वह उसकी प्रणय-प्रतिद्वन्दिनी है और प्रपंचबुद्धि से वह कहती है 'परन्तु...

कापालिक ! एक और भी आशा मेरे हृदय में है। वह पूर्ण नहीं हुई। मैं डरती नहीं हूँ। केवल उसके पूर्ण होने की प्रतीक्षा है। विजया के स्थान को मैं कदापि न ग्रहण करूँगी। उसे भ्रम है, यदि वह छूट जाता.....।'

देवसेना का प्रेम वासनायुक्त नहीं है और मन-ही-मन स्कन्द को प्रेम करते हुए भी वह है. विषय वासनायुक्त प्रेम के स्थूल स्वरूप को स्वीकार नहीं करती। स्कन्दगुप्त उसके सामने प्रणय-निवेदन कर उसे अपना समस्त महत्व अर्पित कर उसके साथ एकांतवास की कामना करता है पर वह एक सामान्य नारी नहीं है। अतः इस प्रणय-प्रस्ताव से मुग्ध हो प्रेम के सच्चे आदर्श को नहीं भूलती। वह कहती है.....प्रतिदान लेकर मैं उस महत्व को कलंकित न करूँगी। मैं आजीवन दासी बनी रहूँगी परन्तु आपसे प्रणय में भाग न लूँगी। स्कन्द उससे पुनः अनुरोध करता है और जब वह साम्राज्य की इच्छा त्याग उसके साथ एकान्त कानन में जीवन व्यतीत करना चाहता है तब उसका विवेक जागृत हो उठता है। वह नहीं चाहती कि उसका अपराध उसके शुद्ध प्रेम के लिए अपनी महान् आकांक्षाओं को विस्मरण कर दे और वह स्पष्टतः कह देती है-"आपको अकर्मण्य बनाने के लिए देवसेना जीवित न रहेगी।

वह यह भी नहीं चाहती कि वह अपने प्रिय के पथ में रोड़ा बने और स्कन्द उसके लिए आर्य साम्राज्य की कामना का पुनीत लक्ष्य भुला दे। वह उसके सामने अपने प्रेम का यथार्थ स्वरूप भी प्रकट कर देती है- 'इस हृदय में.... आह! कहना ही पड़ा, स्कन्दगुप्त को छोड़कर न तो कोई आया और न वह जायेगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम न होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिए, उसे कामना के भंवर में फंसाकर कलुषित न कीजिए। नाथ! में आपकी ही हूँ उसे अपने को दे दिया है, अब उसके बदले कुछ लेना नहीं चाहती।'

अपूर्व त्यागमयी देवसेना अपूर्व त्यागमयी है और त्याग ती मानी उसके चरित्र में मूर्तिभार होकर ही विद्यमान है। यह विजया के लिए अपना सर्वस्व तक न्यौछावर कर देती है और प्रेम को अपने अन्तस्थल में छिपाये रखती है। यह त्याग से ही ईश्वर की प्राप्ति समझती है और इसीलिए वह अपने प्रेम का मूल्य नहीं चाहती। उसके भाई बन्धुवर्मा ने देश-प्रेम के कारण अपने देश मालव को निस्वार्थता से त्याग दिया था अतः अपने भाई के त्याग को वह स्वार्थ के रूप में नहीं देखना चाहती। इसीलिए वह स्कन्दगुप्त के साथ विवाह नहीं करना चाहती, क्योंकि तब लोग यह समझते कि 'मालव' देकर देवसेना का ब्याह किया जा रहा है।

परम लोकोपयोगी व मंगलमयी देवसेना के चरित्र में नारी जीवन की अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं और वह साहस, कर्तव्य पालन, देश-सेवा आदि विविध सात्विक भावों से अलंकृत त है। नाटक के प्रथम अंक में ही हम उसे देश के मान और स्त्रियों के शील की प्रतिष्ठा के लिए हूणों व शकों के आक्रमण के समय अन्तःपुर की रक्षा करते देखते हैं। वह एक गौर क्षत्राणी बाला की भाँति शस्त्रचालन द्वारा अपने अदम्य साहस का भी परिचय देती है और कालानार में जब कुम्भा की तीव्र-धार में स्कन्द के साथियों सहित बह जाने पर आर्यावर्त में घोर अराजकता, विश्रृखंलता व पराजयपूर्ण भावना फैलने लगती है तब अपनी देश-भक्ति पूर्ण ओजस्विनी

संगीत लहरी से देशवासियों में उत्साहपूर्ण जीवन संचार करती है। वह भीख मांगकर सैनिकों का भरण-पोषण करती है और साम्राज्य के इन निरबलम्ब

बिखरे हुए रत्नों की रक्षा के लिये भिक्षा-वृत्त अपनाकर अपूर्व सहिष्णुता का परिचय देती है। भिक्षा माँगते समय विलास और नीच वासना से भ्रष्ट साधारण जन उसके प्रति वासनायुक्त कलुषित कटाक्ष करते हैं और पर्णदत्त उत्तेजित हो उठता है लेकिन वह उसे शान्त करते हुए कहती है. क्या है बाबा! क्यों चिढ़ रहे हो। जाने दी जिसने नहीं दिया उसने अपना, कुछ तुम्हारा तो नहीं ले गया।

सभी दृष्टियों से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उसका चारित्र परम लोकोपयोगी व मंगलमय है और उसके चरित्र की विशिष्टताओं को लेकर यह मानना ही पड़ता है कि उसके चारित्र का निरालापन प्रसाद की सर्वोत्कृष्ट उद्भावना ही है। यद्यपि कुछ विचारक देवसेना को प्रसाद को अलौकिक भेट कहते हैं और भले ही वह एक अलौकिक सृष्टि हो लेकिन हमारी दृष्टि में देवसेना को अलौकिक मानना उचित न होगा और जो उसे अलौकिक मानते हैं उनके लिए देवसेना का यह कथन ही पर्याप्त है- 'परन्तु संसार में ही नक्षत्र से उज्जवल किन्तु कोमल स्वर्गीय संगीत की प्रतिभा तथा स्थायी कीर्ति सौरभ वाले देखे जाते हैं। उन्हीं से स्वर्ग का अनुमान कर लिया जा सकता है।

स्कन्दगुप्त नाटक के आधार पर अनन्तदेवी के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- महत्वाकांक्षी और कुटिल-अनन्तादेवी सम्राट कुमारगुप्त की युवा-महिषी है और उसकी सीत देवकी को महादेवी व राजमाता होने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है उससे वह असंतुष्ट है। उसमें जन्मजाति महत्वाकांक्षा है और इसलिये यह उत्तराधिकार के नियम के प्रतिकूल बड़ी रानी देवकी के पुत्र युवराज स्कन्दगुप्त को अधिकारच्युत कर अपने पुत्र पुरगुप्त को राजरिहासन पर बैठाना चाहती है। अपनी इस महत्वाकांक्षापूर्ति के लिए जो तानाबानापा सुनती है यह 'स्कन्दगुप्त' नाटक का प्रमुख अंश है और इसीलिये भले ही यह प्रत्यक्ष रूप से

हमारे सामने बहुत कम आती हो पर वास्तव में वह नाटक के एक प्रमुख अंश का केन्द्र-विन्तु है तथा उसे निर्विवाद रूप से इस नाटक में खलनायक कहा जा सकता है।

नारी होकर भी वह निर्भीकता और साहसपूर्ण षड्यन्त्र रचना में पढ़ है। यह यह निश्चय करती है कि, अपनी नियति का पथ में अपने पैरों पर चलूँगी और यह यह अच्छी है कि ऐसा करने में अनेक भयानक संकटों का सामना करना पड़ेगा पर उसे विश्वास है कि 'शुद्र हृदय- जो चूहे के शब्द से भी शंकित होते हैं जो अपनी साँस से ही चौक उठते हैं, उनके लिए उन्नति का कंटकित मार्ग नहीं है। महत्वाकांक्षा का दुगर्म स्वर्ग उनके लिए स्वप्न है।' इस प्रकार उसमें अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु साहस, कठोरता, कौशल व कुटिलता का अतिरेक है और इनकी सहायता से ही वह अग्रसर होती है।

जघन्य कार्य-अनन्तदेवी 'विषय विह्व' वृद्ध सम्राट को विलास की अधिक मात्रा से

जीवन के जटिल सुखों की जटिल गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त कर अपने लिए कार्य-क्षेत्र व अनुकूल वातावरण तैयार कर लेती है और अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिए मटार्क को महाबलाधिकू बनवाकर उसे चिरकाल के लिए कृतज्ञता के पाश में बाँध लेती है तथा वह उसके कार्य-साधन का उपर्युक्त अस्त्र भी बन जाता है। इतना ही नहीं वह प्रपंचबुद्धि को भी अपनी ओर मिलाती है और उन-दोनों भटार्क व प्रपंचबुद्धि के सहयोग से मगध में 'पारसीक मदिरा को धारा' के स्थान पर 'रक्त की धारा' बहाती है। इस प्रकार वह गुप्त-साम्राज्य के खंड प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देती है और कुमारगुप्त की कौशलपूर्ण व रहस्यमय मृत्यु में उसका ही हाथ है। वह महादेवी देवकी की हत्या का भी आयोजन करती है और आर्य साम्राज्य की सुरक्षा व शान्ति की चिन्ता न कर हूणों से उत्कोच लेकर उनके साथ षड्यन्त्र रचती है। नगरहार के युद्ध में स्कन्द की पराजय अनन्तदेवी की कुमंत्रणा का ही कुपरिणाम है।

व्यवहार-कुशल-अनन्तदेवी व्यवहार-कुशल भी है। है और प्रसंगानुकूल बातचीत कर कार्य-साधना की कला में भी पूर्ण निपुण है। भटार्क के समय वह 'शत्रु पुरी में असहाय और अबला' बनकर उसकी सहायता प्राप्त करती है तथा शर्वनाग को देवकी की हत्या के लिए तैयार करते समय उसे भयभीत करने के लिए कहती है- 'सौगन्ध है, यदि विश्वासघात करेगा तो कुत्तों से नुचवा दिया जायेगा।' इसी प्रकार जब वह देवकी के समक्ष पहुँचती है तो सिंहनी की भांति गरज कर उसे भयभीत करने की चेष्टा करती है और कहती है- "परन्तु व्यंग की विष-ज्वाला रक्तधारा से भी नहीं बुझती, देवकी! तुम मरने के लिए प्रस्तुत हो जाओ।'

अपने इस षड्यन्त्र में स्कन्द द्वारा बाधा दिये जाने पर वह उसके सामने घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़ती हुई कहती है- 'स्कन्द। फिर भी मैं तुम्हारे पिता की पत्नी हूँ।' स्कन्द उसे क्षमा कर देदा है और कहता है- 'कुसुमपुर में पुरगुप्य को लेकर चुपचाप बैठी रही-जाओ-मैं स्त्री पर हाथ नहीं उठाता, परन्तु सावधान! विद्रोह की इच्छा न करना, नहीं तो क्षमा असम्भव है।

अनन्तदेवी पर स्कन्द की इस चेतावनी का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता और वह षड़यन्त्र रचना में रत रहती है तथा उसका उक्त व्यवहार भी अन्त तक बना रहता है। वह विजया को पहले तो पुरगुप्त के साथ सिंहासन पर बैठाने का प्रलोभन देती है पर उसमें विरोध भाव देखकर उसे चेतावनी देते हुए कहती है इतना साहस। तुच्छ स्त्री तू जानती है कि किसके साथ बात कर रही है? मैं वही हूँ-जो अश्वमेद्य पराक्रम कुमारगुप्त से, बालों को सुगन्धित करने के लिए गन्ध चूर्ण जलवाती थी-जिसकी एक तीखी कोर से गुप्त साम्राज्य डॉवाडोल हो रहा है. स्मरण रखना में हूँ अनन्तदेवी। तेरी कूटनीति के कंटकित कातन की दावाग्नि-तेरे गर्व शैल श्रृंग के वज्र में वह आग लगाऊंगी, जो

प्रलय के समुद्र से भी न बुझे।' इस प्रकार वह विजया को आतंकित करने में सफल हो जाती है पर नाटक के अन्त में जब वह पुरगुप्त के साथ बन्दी भेष

में स्कन्द के सामने लाई जाती है। तब अत्यन्त दोन और सरल बनकर वह कहती है-क्यों लज्जित करते हो स्कन्द। 'तुम भी मेरे पुत्र मुझे क्षमा करो सम्राट'।

अत्यन्त हीन कोटि का चरित्र-अनन्त देवी के चरित्र का अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उसका चरित्र आदर्श से बहुत नीचे गिरा हुआ है। वह स्वार्थ प्रेरित है। पति- पुत्र से विरोध, सपलों की वध-चेष्टा तथा साम्राज्य के विरुद्ध विदेशियों को सहायता प्रदान करना आदि गलत काम करती है। इस प्रकार लक्ष्य भ्रष्ट व मर्यादा हीन होने के कारण उसे अपने उद्देश्य में सफलता भी नहीं मिलती है। अतः उसका चरित्र बहुत कुछ अशों में शेक्सपीयर को लेडी मैकबेथ के अनुरूप है।

स्कन्दगुप्त नाटक की कथावस्तु

उत्तर- डॉ. गुलाबराय ने कचावस्तु, पात्र, रस और अभिनय नाटक के चार तत्त्व बताये है तथा डॉ. भागीरथ मिश्र ने भी नाटक के केवल चार तत्व ही मानते हुए कहा है 'भारतीय दृष्टि से विवेचित चार अंगों-कथावस्तु, पात्र, रस और अभिनय में सभी अंशतः समावेश हो जाता है। प्रथम दो तो सभी में हैं ही। अभिनय के भीतर कथोपकथन, भाषा और प्रदर्शन (Spectacle) सभी आ जाते हैं। इतना ही नहीं वेश भूषा तक आहार्य में सम्मिलित हैं। शैली का विवेचन वृत्ति के अन्तर्गत किया गया है। उद्देश्य और विचार भारतीय दृष्टि से रस के अन्तर्गत आ जाते हैं जिनके अनुसार रस ही नाटक या रूपक का मूलतः प्रतिपाद्य है। ऐसी दशा में कई अलग तत्व मूलतः बच नहीं पाता।

'स्कन्दगुप्त' के रचयिता श्री 'जयशंकर प्रसाद' ने स्वयं भारतीय और पाश्चात्य नाट्यतत्वों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं तथा उनके विचार 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' नामक पुस्तक में संकलित भी हैं। उन्होंने पाश्चात्य नाट्याचार्यों को नाटक विषयक विरोधी भावना को भारतीय दृष्टि के प्रतिकूल मानकर समस्त भारतीय चिन्तन को आनन्दवादी धारा जिसका प्रतीक हुन्न था और दुःखवादी धारा जिसका प्रतीक कंरुण था नामक दो धाराओं में विभक्त माना है। प्रसाद जी का कहना है, भारतीय वाड्मय में नाटकों को ही सबसे पहले काव्य कहा गया।

इसके उपरान्त प्रसाद जी ने सामाजिक कारणों द्वारा उत्पन्न हुई पाश्चात्य जगत की दुःखपूर्ण एवम् संघर्षमय जीवन और आर्यों के आनन्द प्रधान जीवन की ओर संकेत करते हुए नाट्यरचना विषयक नूतन रुचियों का उल्लेख करते हुए लिखा है, वर्तमान काल में नाटकों के विषयों के चुनाव में मतभेद है। कथावस्तु को भिन्न प्रकार से उपस्थित करने की प्रेरणा बलवतो हो गयी है। कुछ लोग प्राचीन रस सिद्धान्त से अधिक महत्व देने लगे हैं- चरित्र चित्रण पर। उनसे भी अग्रसर हुआ है दूसरा दल, जो मनुष्य के विभिन्न मानसिक आकारों के प्रति कुतुहलपूर्ण हैं, अथवा व्यक्ति-वैचित्र्य पर विश्वास रखने वाला है। ये लोग अपनी समझी हुई कुछ विचित्रता मात्र को स्वाभाविक चित्रण कहते हैं, क्योंकि पहला चरित्र-चित्रण तो आदर्शवाद से बहुत यनिष्ठ हो गया है, चारित्र्य का समर्थक है, किन्तु व्यक्ति-वैचित्र्य वाले अपने को यथार्यवादियों में रखना चाहते हैं।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो प्रसाद के नाटकों में पूर्व पश्चिम का मधुर समन्वय मिलता है और अधिकांश आलोचक इससे सहमत भी हैं अतः नाट्यकला की दृष्टि से स्कन्दगुप्त का मूल्यांकन करते समय हमें भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही नाट्यशास्त्रियों के विचारों को ध्यान में रखना चाहिए।

कथावस्तु-स्कन्दगुप्त की कथावस्तु संक्षिप्त ही है और जैसा कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने अपनी समीक्षात्मक कृति 'हिन्दी का गद्य साहित्य' में लिखा है, गुप्त साम्राज्य के सम्राट कुमारगुप्त विलासों है। वे अपनी छोटी रानी अनन्तदेवी के प्रभाव में है। अनन्तदेवी अपने पुत्र पुरगुष्ठ को राज्य दिलाना चाहती है। बड़ी रानी देवकी असठाय है। उसका पुत्र स्कन्दगुप्त योग्य है। वह अपने अधिकारों के प्रति उदासीन है। मालव राज्य पर विदेशियों का आक्रमण होता है। स्कन्दगुप्त रक्षा के लिये जाता है।

राजधानी में अनन्तदेवी कुचक्र रचती है। कुमारगुप्त का निधन होता है। पृथ्वीसेन, महादण्डनायक और महाप्रतिहारी अन्तर्विद्रोह नहीं चाहते अतः आत्महत्या करते हैं। भटार्क अनन्तदेवी के साथ है। बौद्ध कापालिक प्रपंचबुद्धि भी इन्हीं लोगों के साथ मिला हुआ है। अनन्तदेवी, देवकी की हत्या कराना चाहती है। शर्वनाग को इसके लिए तैयार किया जाता है। उसकी साध्वी स्त्री रामा विरोध करती है। ठीक समय पर पहुँच कर स्कन्दगुप्त रक्षा करता है। माता के साथ स्कन्दगुप्त उज्जियनी जाता है, वहाँ उसका राज्यभिषेक होता है। स्कन्दगुप्त मालव के बनकुबेर की कन्या विजया की ओर आकर्षित है। मालवकुमारी देवसेना स्कन्द को चाहती है। विजया को यह विश्वास है कि देवसेना के सामने स्कन्द हमें स्वीकार नहीं करेगा। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह भटार्क को वरण करती है। देवसेना को ज्ञात हो जाता है कि स्कन्द वस्तुतः विजया की ओर आकर्षित है। वह उदासीन होती है। राज्याभिषेक के उपरान्त अनन्तदेवी मुक्त होकर पुनः हूणों से मिलकर विद्रोह करती है। भटार्क उसका साथ देता है। ठीक समय पर युद्ध में वह कुम्मा का बाँध काट देता है स्कन्दगुप्त सेना के साथ बह जाता है। साम्राज्य की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है।

स्कन्दगुप्त पुनः सैन्य संगठन करता है। अब भटार्क उसके साथ है। विजया स्कन्दगुप्त का प्रेम पुनः प्राप्त करना चाहती है पर विफल होने पर आत्महत्या कर लेती है। विजया का रत्नागृह मिल जाता है उससे सेना संगठन में सुविधा होती है। युद्ध होता है हूण पराजित होते हैं। स्कन्दगुप्त, पुरगुप्त को ही राज्य दे देता है। स्वयं आजीवन कुमार रहता है।

उक्त संक्षिप्त कथा को नाटककार ने पाँच अंकों में विस्तारपूर्वक अंकित किया है और कथा संगठन पर भी पूर्ण ध्यान दिया है। चूंकि स्कन्दगुप्त में कथा की एक ही अविच्छिन्न धारा सम्पूर्ण नाटक में प्रवाहित है और उसमें 'अजातशत्रु' की भाँति कई कथा सूत्रों को एक कथानक में गूहने का प्रयास नहीं किया गया। अतः कथानक सुसंगठित व श्रृंखलाबद्ध हैं। आवश्यकतानुसार कुछ प्रासंगिक कथाओं की भी योजना की गई है परन्तु इसमें कथा-सौन्दर्य को तनिक भी क्षति नहीं पहुंची और प्रसाद जी ने इस बात पर पूर्ण ध्यान दिया है कि प्रारम्भ से अन्त तक अविच्छिन्नता बनी रहे। नाटक की कथा का आधार ऐतिहासिक ही है और नाटककार ने कल्पना का सहयोग सेते हुए भी ऐतिहासिकता अक्षुण्ण रखी है। स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त, गोविन्दगुप्त, चन्धवर्मा, पुरगुप्त, हर्तनाग और अननादेयी आदि पात्र ऐतिहासिक है तथा नाटक की अनेक घटनाओं का समर्थन ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर किया जा सकता है।

पात्र-योजना-पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से जब हम स्कन्दगुप्त की समीक्षा करते हैं तो हम देखते हैं कि उसमें स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त, गोविन्दगुप्त, पर्णदत्त, चक्रपालित, बन्ननुवर्मा भीमवर्मा, मातुगुप्त, प्रपंचबुद्धि, शर्वनाग, कुमारदास (धातुसेन) पुरगुप्त, भटार्क,

पृथ्वीन, खिगिल, मूल, प्रकीर्ति देवकी, अनन्त देवी, जयगाला, देवसेना, विजया, कमला, रामा और मालिनी आदि पच्चीस उल्लेखनीय पाए है तथा उनके अतिरिक्त महाप्रतिहार 'महादण्डनायक' प्रहरी, सैनिक, दासी आदि अन्य पात्र भी हैं पर पात्रों की इस अधिकता से नाट्य सौन्दर्य को कोई क्षति नहीं पहुंची और नाटककार ने चरित्र-चित्रण में विशेष ध्यान दिया है। उसमें प्रायः प्रत्येक पात्र की चारित्रिक विशिष्टताओं को स्पष्ट किया है और चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता पर भी ध्यान रखा है। साथ ही स्कन्दगुप्त के पात्र देवता, राक्षस और मनुष्य नामक तीन वर्षों में विभाजित किए जा सकते हैं तथा मानव की तीन विभिन्न स्थितियों व वृत्तियों का सुन्दर निरूपण भी 'स्कन्दगुप्त' में हुआ है। स्कन्दगुप्त, देवसेना, पर्णदत्त और बन्धवर्मा देवता चरित्रों की कोटि में आते हैं तथा शर्वनाग व जयमाला मानव चरित्र हैं और मटार्क, अनन्तदेवी, प्रपंचबुद्धि व विजया राक्षस कोटि में आते हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रसाद जी ने राक्षसत्व को प्रधानता कभी नहीं प्रदान की अपितु इस कोटि के पात्रओं को दानव वृति के कारण दुष्ट मार्ग पर पड़ते दिखाकर भी भय, प्रेम, आत्मशोधा, उपदेश आदि के कारण उनमें परिवर्तन भी दिखाया गया है। 'स्कन्दगुप्त' के पात्रों में मर्यादा पालन का भाव भी है और पुरुष व नारी के कार्य एवम् भाव-व्यापारों का सुन्दर तारतम्य दिखाया गया है। इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक के पात्र योजना में एक ओर तो साधारणीकरण का सिद्धान्त लागू होता है और दूसरी ओर व्यक्ति-वैचित्र्य वाला सिद्धान्त भी पाया जाता है अतः प्रत्येक पात्र के हृदय में द्वन्द्र का तूफान उठता रहता है तथा यही द्वन्द्व नाटकों में चारित्रिक विकास में सहायक सिद्ध होता है। स्कन्दगुप्त की पात्र योजना में

मनोवैज्ञानिकता पर भी ध्यान दिया गया है और नारी- जीवन के चरित्रांकन में 'प्रसाद' को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार पात्र और चरित्र- चित्रण की दृष्टि से स्कन्दगुप्त एक सफल नाट्यकृति है।

'स्कन्दगुप्त' न तो सुखान्त है न दुखान्त ही। वस्तुतः वह प्रसादान्त है

सुखान्त या दुःखान्त- 'स्कन्दगुप्त' नाटक के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठता है कि इसे सुखान्त कहा जाय या दुःखान्त ? सामान्यतः सुखान्त नाटक उसे कहा जाता है जिसकी समाप्ति सुखान्त वातावरण में हो और दुःखान्त नाटक उसे कहते हैं जिसका अन्त दुःखपूर्ण हो। हमारे यहाँ दुःखान्त नाटकों का अभाव रहा है और पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप हो दुखान्त नाटकों का प्रचलन हुआ। प्राचीन यूनानी साहित्य में तो दुःखान्त नाटकों का विशेष रूप से प्रचलन रहा है और शेक्सपीयर ने भी दुःखान्त नाटकों की रचना की है।

अतः 'स्कन्दगुप्त' में सुखान्त और दुःखान्त का अद्भुत समन्वय-सा मिलता है क्योंकि वह नाटक न तो पूर्णतः सुखान्त है और न पूर्णतः दुखान्त। विश्म्भर 'मानव' के कचानुसार, "ऐसा लगता है कि नायक की दृष्टि से नाटक विषादान्त, उद्देश्यों की दृष्टि से सुखान्त। दुःखान्त के लिए यह आवश्यक नहीं है कि किसी की मृत्यु ही दिखायी जाय। स्कन्दगुप्त का हताश होना मृत्यु से भी अधिक भयंकर है।" यहाँ बात दूसरी है। नाटक का लक्ष्य प्रेम नहीं है अतः यह निराशा-यह भी अनिर्दिष्ट कि इस बेचारे से अन्तःकरण का आलिंगन करके न सक और देव एक राती है। कामु है-पूरा हो।कोमात हो कहे। किसान कोकपप करने की आवश्यक है। एक सकती है ने पाएक कापुर के तिलक के हो क्यों नहीं कर दिया और स्केलिन केका पूर्ण विकास क्योकि स्थिति को दिखा अभी शेष हैं। आसबकुछ विषय होने पर स्कन्द के साथ एक बार उसे फिर खड़ा किया गया। इस दृश्य देसे स्कन्द के मुख से हो हमे एक के उद्देश्य का पता चलता है- हमने अन्तर की प्रेरणा द्वारा को निष्धुरता को भी यह इस पृथ्यों को स्वर्ग बनाने के लिये।

इसका स्कन्दपुर के अन्तिम दृश्य को लेकर को उसे दुखात नाटक मानते है या नहीं है। क्योंकि उद्देश्य की दृष्टि से ही एक के अन्त पर विचार किया जाता

निष्कर्ष इस प्रकार सभी दृष्टियों से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते है अनेक समीक्षकों ने उसे उनका सर्वश्रेष्ठ नाटक भी कार्य व्यापार चरित्र-चित्रण कथानक, गति, वातावरण, बहर है। गएको शैली आदि सभी दृष्टियों से यह सभी नारकों से अच्छा है। प्रसाद जो स्वयं उससे मनुष्य थे। इसका अभिनय समिष्ट रूप में बहुत हो प्रभावशाली, रसपूर्ण और रंजनकारी हो है।

प्रसादजी ने अपने कवि रूप पर अधिक ध्यान दिया है।

सा-काव्यात्वप्रसाद जी मूलतः स्वच्छन्दतावादी कवि है अतः नाटकों में भी उनका कवि रूप सकण हो उठा है और उनका कविता प्रेम उनकी अन्य नाट्यकृतियों की भांति स्कन्दगुप्त में भी दो रूपों में प्रकट हुआ है एक ओर तो उन्होंने जहाँ जहाँ काव्यात्मक मधुर कथन प्रस्तुत किये है और दूसरी ओर गीतों को भी योजना की है।

कोयल स्कन्दगुद्ध में भी काव्यमय भाषा का प्रयोग हुआ है और कहाँ-कहाँ पात्र मधुर व भाषा से होला भी करते हैं तथा शब्दावली में संगीत को अधिकता-सी दोख पड़ती है। ऐसे प्रसंगों में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम गद्यकाव्य का अनुशीलन कर रहे है। हार्थ "अमूर के सरोबर में स्वर्णकमल खिल रहा था, भ्रमर बंशो बजा रहा था, सौरभ की पार को बहल-पहल थो। सवेरे सूर्य की किरणे उस घूमने को लौटती थीं, संध्या में सोल चाँदनी उसे अपनी चादर में वक देती थी। उस मधुर सौन्दर्य, उस अतीन्द्रिय जगत की सार कल्पना की और भौने हाथ बढ़ाया था यही स्वप्न टूट गया।" साथ ही "उस हिमालय के जगर प्रभात सूर्य की सुनहरी प्रथा से आलोकित प्रभा का पीले पोखराज का सा एक महल ब. को पुतलीकर विश्व को देखती थी। यह हिम की शोतलता से गुर थी। सुनहरी किरणों को जलन हुई। तृप्त होकर महल को गला दिया। पुतली। उसका हो, हमारे को शीतला उसे सुरक्षित रखे। कल्पना की भाषा के पंख गिर जाते हैं, यो मौन नोड़, में निवास करने दो।"

उका सोनी कोकण मातृगुप्त के काव्यमय प्रलय मात्र हैं और उससे काल्य-प्रवृति करे भले ही सणुष्टि हो जाती हो, पर नाटक में उनका कुछ भी महत्व नहीं है क्योंकि नाटक के संवाद स्पष्ट रहस्यवादी गद्य-काव्य खण्ड नहीं होते। यह भी स्मरणीय है कि केवल मातृगुज

देवरोना भी इसी ही बहुधा प्रकार की काव्यमयी भाषा का प्रयोग करती है और यह अपने जीवन को परिजात वृक्ष के समकक्ष मानते हुए लाक्षणिक शब्दावली में अपने उद्‌गार व्यक्त करती है, यह अकेले अपने सौरभ की तान से दक्षिण-पवन में क्रम्य उत्पन्न करता है, कलियी को चहकाकर, ताली बजाकर, घूम-घूमकर नाचता है। अपना नृत्य अपना संगीत वह स्वयं देखता है-सुनता है।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन हैं। अपने को नियामक और कर्त्ता समङ्गनि की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है। उत्सवों में परिचायक और अरबों में डाल से अधिकार लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं?

प्रसंग 'स्कन्दगुप्त' नाटक के आरम्भ में नाटक का नायक स्कन्द इन उद्‌गारों को व्यक्त करता है इनसे एक और तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका स्वभाव किस प्रकार का या तथा दूसरी ओर तो यह आभास भी होता है कि नाटक में प्रारम्भ से ही अर्नाद्वन्द्र की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। स्कन्द युवराज था पर वह यह भी जानता था कि उसकी विमाता अनन्तदेवी अपने पुत्र पुरगुप्त को मगध का सम्राट बनाना चाहती है। अतः उसके इन उद्‌गारों में अधिकार-

सुखों के प्रति निराशा होना स्वाभाविक ही है। व्याख्या-यह कहता है कि मनुष्य को जब कभी भी दूसरों पर शासन करने का सुख प्राप्त हो जाता है तब वह एक शराबी की भाँति बेसुध और मदहोश हो जाता है अर्थात् अधिकार

सुख मनुष्य को मतवाला बना देता है तथा वह ऐसी सृष्टि में पहुँच जाता है जहाँ पहुँचकर स्वयं को सबसे अधिक श्रेष्ठ समझने लगता है। वह स्वयं को प्रत्येक कार्य का नियामक अर्थात् हर प्रकार का कार्य कराने वाला समझता है और नियम बनाने की महत्वाकांक्षा उससे न जाने क्या- क्या कराती है। वह झूठ-संच, भला-बुरा सब कुछ करने को प्रस्तुत हो जाता है।

प्रसाद जी स्कन्द के माध्यम से यहाँ स्पष्ट कर र रहे हैं कि अधिकार सुख प्राप्त होने पर व्यक्ति भले ही गर्भ में आकर अपने को सर्वोपरि समझ बैठे परन्तु उसका महत्व उत्सवों में काम करने वाले नौकरों व युद्ध में काम आने वाली ढाल से किसी भी प्रकार अधिक नहीं है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार उत्सव के प्रसंगों में नौकरों को प्रत्येक कार्य के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है और युद्ध में ढाल पर ही सभी प्रकार के प्रहार किये जाते हैं उसी प्रकार अधिकार के लिये लोभी व्यक्ति को प्रत्येक कार्य में आगे रहकर भला-बुरा सब कुछ सहना पड़ता है।

टिप्पणी (1) स्मरणीय है कि स्कन्दगुप्त के इन विचारों में पलायनवादिता नहीं है अपितु अधिकार-लोलुपता की प्रवृत्ति को ही निंदनीय समझा गया है।

(2) स्कन्द के उक्त विचार एक ओर तो उसके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं और दूसरी और दार्शनिक नाटककार की भौतिकता-विरोधी प्रवृत्ति पर। स्कन्दगुप्त का चरित्र यह स्पष्ट कर देता है कि उसमें अधिकार प्राप्त करने की लालसा नहीं है वह एक वीर सैनिक की भांति केवल अपने कर्तव्य का पालन करता रहता है।

(3) हुन वाक्यों से नाटककार आरम्भ से ही पाठकों के मन में एक उत्सुकता पैदा कर देता है। प्रथम चाक्य पढ़कर ही भौतिकता के रंग में रंगा हुआ पाठक गम्भीर हो जाता है।

2. संकेत आपकी वीरता की लेखमाला शिप्रा और सिन्धु की लोल-लहरियों से लिखी जाती है।

व्याख्या-स्कन्दगुप्त मगध के महानायक पर्णदत्त की प्रशंसा करते हुए कहता कि आपकी वीरता स्वयं सिद्ध है और आपकी शूरवीरता के कारण ही मगध साम्राज्य की सीमा शिप्रा व सिन्धु नादियों तक पहुँच सकी है तथा उन नदियों की लहरें अभी भी आपकी पर्णदत्त की-वीरता का वर्णन करती-सी प्रतीत होती है।

3. संकेत राष्ट्रनीति, दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है। इस कठोर प्रत्यक्षवाद की समस्या कठिन नहीं होती है। गुप्त साम्राज्य की उत्तरोक्तर वृद्धि के साथ उसका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है, पर उस बोझ को उठाने के लिए गुप्तकुल के शासक प्रस्तुत नहीं, क्योंकि साम्राज्य लक्ष्मी को वे अब अनायास और अवश्य अपनी शरण आने वाली वस्तु समझने लगे हैं।

व्याख्या-मगध के महानायक पर्णदत्त को युवराज स्कन्द की उदासीनता रुचिकर नहीं लगती और वह चाहते हैं कि स्कन्द अपने उत्तरदायित्व को समझे। उनसे काफी तर्क-वितर्क करने पर जब स्कन्द उनसे यह कहता है कि आप जैसे महावीर के होते हुए मुझे चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं है तब पर्णदत्त ने जो विचार व्यक्ति किये वही इन पंक्तियों में अंकित है। पर्णदत्त का कहना है कि राष्ट्रनीति दार्शनिक नहीं है और न यह काल्पनिक जगत ही है। बल्कि उसमें तो प्रत्येक विषय पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाता है। इसका अर्थ यह है केवल भाषण या तर्क-वितर्क से राष्ट्रनीति की समस्याएँ नहीं सुलझतीं और उसमें वास्तविक कार्यों का ही महत्व होता है।

पर्णदत्त स्कन्द से कह रहे हैं कि गुप्त साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ जाने पर गुप्तवंश के शासकों के कर्तव्य व उत्तरादायित्व भी बढ़ गये है पर ऐसा प्रतीत होता है कि अब गुप्तवंश के शासक अपने उत्तरादायित्वों को ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं है। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि एक ओर तो सम्राट कुमारगुप्त भोग-विलास में लीन हो शासन से उदासीन हो गये हैं और दूसरी ओर युवराज स्कन्द अपने अधिकारों के प्रति उदासीनता व्यक्त कर अपने उत्तरदायित्व को विस्मृत कर रहे हैं।

पर्णदत्त कहते हैं कि गुप्तवंश के शासक शायद समझ रहे हैं कि यह राज्य व वैभव उन्हें अनायास ही प्राप्त हो गया है, और इसीलिये उन्हें यह ध्यान नहीं रहा कि इस विशाल साम्राज्य की स्थापना के लिए कितना कठोर परिश्रम किया गया था।

4. संकेत- अमृत के सरोवर में स्वर्ण-कमल खिल रहा था, भ्रमर बंशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल-पहल थी। सबेरे सूर्य की किरणें उसे चूमने को लौटती थीं, सन्ध्या में शीतल चाँदनी उसे अपनी चादर से ढंक देती थी। उस मधुर सौन्दर्य, उस

अतीन्द्रिय जगत की साकार कल्पना की और मैनें हाथ बढ़ाया था, वहीं स्वप्न टूट गया। प्रसंग-मातृगुप्त अपने सुखों के काल्पनिक महल के नष्ट हो जाने पर भावामग्न हो कहता है।

व्याख्या-जन्मभूमि का स्मरण करते ही मातृगुप्त को अपने घर की, अपनी स्त्री की याद आयी। स्त्री की स्मृति ने उन सुखद दिवसों का चित्र सामने नचा दिया जब वह अपने घर में अपने जीवन का सुख लूटता था। अपनी स्त्री के साथ निवास करना ही अमृत का सरोवर था जिसमें उसका सुखरूपी कमल पर मुग्ध मेरा मन-रूपी भौरा भांति-भांति की सुखद कल्पनाएँ करता जैसे गूंजता फिरता था। साधारण कमल के फूल में पराग और सुगन्ध होती है। मेरे इस मुखरूपी कमल में भी प्रसन्नता और आनन्द की मात्रा इतनी अधिक थी कि उसने गृह-सरोवर

के आस-पास सभी को प्रसन्न कर रखा था। प्रातःकाल को सूर्य की सुनहरी किरणें हमारे मुख कमल को और विकसित कर दिया करती थीं। रात में चन्द्रिका का आवरण ओढ़कर में निन्द्रा में सुख स्वप्न से देखने लगता था। अपनी मीठी नींद में मैंने मधुर सौन्दर्य के दर्शन किये, इन्द्रियातीत जगत को जीती-जागती मूर्तिमान कल्पना के सुख मैं विभोर सा हो रहा था। इस प्रकार चारों ओर आनन्द ही आनन्द था और मैने भी उसी अलौकिक आनन्द को प्राप्त करना चाहा था परन्तु प्राप्त न कर सका क्योंकि संसार मेरे लिए एक प्रकार से स्वप्नवत् ही था, अतएव मेरी निद्रा भंग होते ही मेरे सब सुख-स्वप्न नष्ट हो गये।

5. संकेत- उस हिमालय के ऊपर प्रभात-सूर्य की सुनहरी प्रभा से आलोकित हिम की पीले पोखराज का सा एक महल था। उसी से नवनीत की पुतली झाँककर विश्व को देखती थी। वह हिम की शीतलता से सुसंगठित थी। सुनहरी किरणों को जलन हुई। तृप्त होकर, महल को गला दिया। पुतली! उसका मंगल हो, हमारे अञ्जु की शीतलता उसे सुरक्षित रखें। कल्पना की भाषा के पंख गिर जाते हैं, मौन-नीड़ में निवास करने दो।

व्याख्या-मातृगुप्त कह रहा है कि हिमालय पर्वत पर प्रातः कालीन सूर्य की सुनहरी किरणों से आलोकित पीले पोखराज का एक महल था और जिसमें से मेरी प्रिया नीचे की ओर समस्त संसार को देखा करती थीं। वह मक्खन की भाँति स्निग्ध व कोमल और बर्फ की भाँति श्वेत व शीतल थी। मातृगुप्त कहता है कि सुनहरी किरणों ने द्वेषवश उस बर्फ के महल को गला दिया अर्थात् लालचवश मेरी प्रियतमा अपना आदर्श भुला बैठी पर मैं अभी भी यही चाहता हूँ कि उसका मंगल हो और मेरे अनुओं की शीतलता उसे विचलित होने से बचा

ले। वह कह रहा है कि अब उसकी प्रिया की चर्चा व्यर्थ ही है और मेरी कल्पना में जो उसका सुन्दर रूप विद्यमान है उसे वैसा ही रहने दिया जाये।

6. संकेत- यदि यह विश्व इन्द्रजाल ही है, तो उस इन्द्रजाली की अनन्त इच्छा को पूर्ण करने का साधन-यह मधुर मोह चिरजीवी हो और अभिलाषा से मचलने वाले भूखे हृदय को आहार मिले।

व्याख्या-जब कुमारदास मातृगुप्त से कहता है कि तुम विद्वान हो, अतः तुम्हें इतना मोह नहीं होना चाहिए। तब मातृगुप्त उससे कहता है कि यदि यह संसार केवल छल-मात्र ही है तब मैं समझता हूँ कि शायद वह परमपिता परमात्मा यही चाहता है कि हमेशा मोहग्रस्त हो रहे। मातृगुप्त का कहना है कि मोह के कारण ही मनुष्य के हृदय में अनेक अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं, अतः मोह हमेशा बना रहना चाहिये।

भाव यह है कि माया और मोह परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा बिना मोह के माया हो ही नहीं सकती और माया ईश्वर की लीला का अंग है। अतः यदि मोह ही न होगा तो फिर ईश्वर की लीला ही समाप्त हो जायेगी। वस्तुतः ईश्वर की यह सृष्टि हो मायामय है। इसके बन्धनों में मनुष्य उसी समय तक फंसा रहता है जब तक उसके मन में मोह होता है। मोह पर विजयी होने के बाद मनुष्य संसार से मुक्त और निर्लिप्त हो जाता है। मातृगुप्त का कहना है कि इस सृष्टि का कार्यक्रम तभी तक चल सकता है-जिस ईश्वर ने इस संसार की सृष्टि की है, उसकी अभिलाषा तभी पूरी हो सकती है-जब मनुष्य में मोह बना रहे। सांसारिक कार्यों में वह तभी प्रयत्नशील होता है और इस तरह सृष्टि की इच्छा पूरी होती है, सृष्टि के काम होने लगते हैं। वस्तुतः माया-मोह के चक्कर में पड़कर ही मनुष्य संसार के सभी काम करता है अतः मोह की समाप्ति भी उचित नहीं है।

7. संकेत उसकी चिन्ता नहीं। दैच्य जीवन के प्रचण्ड आतप में सुन्दर स्नेह मेरी छाया बने। झुलसा हुआ जीवन धन्य हो जायेगा।

व्याख्या-कुमारगुप्त ने मातृगुप्त से कहा है कि तुम्हारा भविष्य उज्वल जान पड़ता है. परन्तु मातृगुप्त ने भविष्य के प्रति उदासीनता व्यक्त करते कहा कि मुझे भविष्य को तनिक भी चिन्ता नहीं है और मैं तो केवल प्रेम से हो सम्बन्ध रखता हूँ। उसका कहना है कि निर्धनत के कारण मेरा जीवन विषमताओं की ज्वाला में दग्ध हो रहा है और प्रेम हो मेरा अब एक मात्र अवलम्ब है अर्थात् स्नेह रूपी वृक्ष की शील छाया हो निर्धन रूपी घोषण गमों से मेरी रक्षा कर सकती है, अतः यदि मुझे प्रेम प्राप्त हो जायगा तो मैं अपने जीवन को सुखों समहूँगा।

संकेत इस गतिशील जगत् में परिवर्तन पर आश्चर्य? परिवर्तन रुका कि महा- परिवर्तन-प्रलय-हुआ। परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है, स्थिर होना मृत्यु है निश्चेष्ट शान्ति धरण है। प्रकृति क्रियाशील है, समय पुरुष और स्त्री की गेंद लेकर दोनों हाथ से खखोल्लाला है। पुल्लिग और स्त्रीलिंग की समष्टि अभिव्यक्ति की कुथ्वी है। पुरुष उछाल दिया जाता है. अक्षेषण होता है। स्त्री आकर्षण करती है। यही जड़ प्रकृति का चेतन रहस्य है।

व्याख्या-गुप्त-साम्राज्य बहुत सुदृछ समझा जाता था। उसकी स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन होने की मातृगुप्त को आशा न थी। अब उसने कुमारदास के मुखये यह सुना कि पुष्क साम्राज्य का यह युग भी शीघ्र ही परिवर्तित हो जायगा, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। इस आश्चर्य का समाधान करते हुए धातुसेन कहता है- गुष्ठ साम्राज्य में परिवर्तन की बात सुनकर तुम्हें जो आश्चर्य हुआ उससे जान पड़ता है कि तुम सीधे-सादे युवक हो, तुम्हें संसार का कुछ पता नहीं है। तुम्हें जात होना चाहिए कि यह जगत सदैव परिवर्तित होता रहा है। परिवर्तन हो इस जगत् का स्वभाव है। अतः संसार के छोटे और बड़े सभी वर्गों में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। यदि यह क्रम कुछ समय के लिये रुक जाता है अथवा किसी वर्ग का कार्य कुछ समय के लिए स्थिर हो जाता है तो ध्यान रखना चाहिए कि शीघ्र ही कई गुने अधिक वेग से परिवर्तन होगा, जिसे हम्म परिवर्तन अथवा प्रलय के नाम से पुकारते हैं। इसीलिए जब तक परिवर्तन का क्रम बना रहता है तभी तक यह संसार बना है। यदि परिवर्तन होना बन्द हो गया अथवा कार्य में किसी कारण से स्थिरता आ गयी, तब समझना चाहिये कि अब मृत्यु अथवा नाश निश्चित है।

संसार का समय एक चतुर खिलाड़ी के समान है। स्त्रों और पुरुष उसकों गेदें हैं, जिन्हें दोनों हाथ में लेकर वह खेलता है। आशय यह कि पुरुष और स्त्री के संयोग से हो इस सृष्टि की रचना होती है और आगे भी अन्य व्यापार चलते हैं। यही इसके रूप हैं। संसार में आकर पुरुष-रूपी गेंद को इधर-उधर उछाला जाता है, अनेक प्रकार की आपत्तियों को ठोकरों और कठिनाइयों की चपेटे उसे सहनी पड़ती है। स्त्री इसके विपरीत सुन्दर, आकर्षक और कोमल होती है। पुरुष मुग्ध होकर उसकी और आकर्षित होता है तत्पश्चात् दोनों का संयोग होता है। 9. संकेत "युद्ध क्या ज्ञान नहीं है? रूड़ का अंग्रीनाथ, भैरवी का तांडव नृत्य और शास्त्रों का वाद्य मिलकर भैरव संगीत की सृष्टि होती है। जीवन के अन्तिम दृश्य को जानते हुए, अपनी आँखों से देखना, जीवन रहस्य के चरण सौन्दर्य की नग्न और भयानक वास्तविकता का अनुभव केवल सच्चे वीर बीर हृदय को होला है। ध्वंसमयी महामाया प्रकृति का वह निरन्तर संगीत हैं। उसे सुनने के लिए हृदय में साहस और बल्ल एकत्र करो। अत्याचार के श्मसान से ही मंगल का, शिव का सत्य सुन्दर संगीत का शुभारम्भ होता है।

व्याख्या-शक और हूणों की सम्मिलित सेना मालव राज्य पर आक्रमण करती है उसके सुरक्षा के लिए मालव-नरेश बंधुवर्मा की पत्नी जयमाला बहिन देवसेना और माल के पन्कुमेर

की कन्या विजया अवन्ती दुर्ग में शरण ग्रहण करती है। इसी प्रसंग में वार्तालाप के समय देवसेना गाना चाहती है। तब विजया युद्ध के प्रसंग में गाना अनुचित समझती है। अतः जयमाला उसकी शंका का समाधान करते हुए कहती है कि क्या युद्ध गीत नहीं है? यह युद्ध के प्रसंग में भी गीद की उपयोगिता स्पष्ट करते हुए कहती है कि युद्ध और संहार भी गीत के प्रेरक हो सकते हैं, तथा यह इन अवस्थाओं में ही उत्कट भंयकर संगीत उत्पन्न होता है।

यह कह रही है कि भगवान शंकर की श्रृङ्गी-नाद अर्थात् तुरही की यही ध्वनि है जो प्रलय के समय बज उठती है, भैरवी का भंयकर नृत्य और युद्धों के शस्त्रों की झंकार में भी एक प्रकार का संगीत विद्यमान रहता है और इस प्रकार युद्ध के प्रसंग में गायक, नृत्य व वाद्य के संयोग द्वारा प्रलयकालीन संगीत समारोह का पूर्ण दृश्य उपस्थित हो जाता है। जयमाला का कहना है कि मृत्यु अनिवार्य सत्य है, जो पैदा होता है वह मरता भी है अर्थात् जीवन की अन्तिम स्थिति मृत्यु हो है।

स्पष्ट है कि सच्चे वीर ही मृत्यु की भयानकता को जानते हुए भी युद्ध के समय प्रसन्न रहते हैं और मौत को गले लगाने को तैयार हो जाते हैं। उनका कहना कि मृत्यु का यह भीषण दृश्य ध्वसमयी महामाया प्रकृति के निरन्तर संगीत का परिणाम ही है और इस संगीत का रसास्वादन वहीं कर सकता है जिसके हृदय में अपूर्व साहस होगा। अतः अत्याचारों का अन्त करने के लिए किये जाने वाले युद्ध में जीवन का सच्चा संगीत सुनने को हमें तत्पर रहना चाहिये। 10. संकेत- सम्पूर्ण संसार कर्मण्य वीरों की चित्रशाला है। वीरत्व एक स्वावलम्बी गुण है। प्राणियों का विकास सम्भवतः इसी विचार को अर्जित होने से हुआ है। जीवन में वही तो

विजयी होता है जो दिन-रात "युद्धस्व विगतज्जर" का शंखवाद सुना करता है। व्याख्या-स्कन्दगुप्त और चक्रपालित परस्पर बातचीत करते हुए रंगमंच पर प्रवेश करते

हैं और इस वार्तालाप में स्कन्द युद्ध-वीरता की उन्मत्त भावना मानता है तथा त्याग का महत्व देते हुए प्राणों का मोह त्याग करना ही वीरता का रहस्य समझता है, पर चक्रपालित अपने विचारों को प्रस्तुत कर वीर पुरुष को संसार की शोभा कहता है। चक्रपालित का कहना है कि कर्त्तव्य- परायणता का ही दूसरा नाम वीरता है और वह मनुष्य को स्वावलम्बी बनाती है तथा प्राणि-मात्र का विकास इसी विचारधारा के उत्पन्न होने पर हुआ है।

इसका अर्थ यह है कर्त्तव्य परायण वीर पुरुष ही प्राणि-मात्र के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। चक्रपालित कह रहा है कि ज्यों-ज्यों व्यक्ति में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति बलवती होती जाती है त्यों-त्यों वह स्वयं अपने बल पर जीवन संग्राम में अग्रसर होता जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं कि जीवन-संग्राम में वही विजयी होता है जो दिन-रात संघर्ष करता रहता है।

11. संकेत- यदि राजशक्ति के केन्द्र में ही अन्याय होगा, तब तो समग्र राष्ट्र अन्यायों का क्रीड़ा स्थल हो जायेगा। आपको सबके अधिकारों की रक्षा के लिए अपना अधिकार सुरक्षित करना ही पड़ेगा।

व्याख्या-चक्रपालित स्कन्दगुप्त से कह रहा है कि यदि आप स्वयं ही विरक्त होकर दुर्बलतापूर्ण बातें करेंगे तो सम्पूर्ण राज्य में फिर अत्याचारियों का प्रभुत्व स्थापित हो जायगा. अतः प्रजा के अधिकारों की रक्षा के लिए आपको अपने राज्याधिकार की ओर ध्यान देना चाहिए आपके उदास रहने से काम न चलेगा।

12. संकेत कहीं तुम्हारा सोचा हुआ क्यों विजया। वैभव युवराज के महत्व का परदा तो नहीं हट रहा है? का अभाव तुम्हें खटकने तो नहीं लगा।

व्याख्या-विजया ने प्रारम्भ में स्कन्दगुप्त के प्रति अपना आकर्षण प्रकट करते समय देवसेना के समक्ष यह स्वीकार किया था कि हो सकता है उसका यह प्रेम उनके युवराज पद

सूर्या स्कन्द्रगुप्त ।

के साथ संलग्न वैभव के कारण हो पर वह अब युवराज को उदास देखकर यह सोचने लगती है कि कहाँ दुर्बलता उन्हें राज्य से भी उदासीन न कर दे। इसीलिए यहाँ देवसेना उनसे कहती है कि शुमने कहीं यह तो अनुमान नहीं कर लिया कि राज्य के प्रति उदास रहने के कारण युवराज स्कन्दगुप्त को राज्य लक्ष्मी भी प्राप्त न हो सके अतः हो सकता है, ऐश्वर्य की भावी कमी की आशंका के फलस्वरूप तुम्हें वह-स्कन्दगुप्त-अब कम महत्वपूर्ण व अपेक्षाकृत कम आकर्षक प्रतीत होते हों तथा ऐश्वर्य की चमक से उत्पन्न तुम्हारे प्रेम का वेग भी मंद पड़ गया हो।

13. संकेत- प्रत्येक परमाणु के मिलने में सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लब है। मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रक्खा है, इसी से उसका स्वर विश्व-वीणा में शीघ्र नहीं मिलता। पांडित्य के मारे जब देखें, जहाँ देखो, बेताल वेसुरा बोलेगा। पक्षियों को देखो, उनकी चहचह, कल-कल, हल-हल, में काकली में रागिनी है।

व्याख्या-देवसेना की दृष्टि में संसार का कोई भी कार्य बिना गाने के नहीं हो सकता और वह विश्व के प्रत्येक कैम्प में एक ताल की अनुभूति करती है। । परन्तु विजया इससे सहमत नहीं होती क्योंकि वह तो गाने को एक प्रकार का रोग-स रोग-सा समझती है। देवसेना अपने विचार को स्पष्ट करते हुए यहाँ कहती है कि विश्व के प्रत्येक पदार्थ के छोटे-से-छोटे भाग में एक विशेष प्रकार का क्रम है और उसकी गति में एक विशेष प्रकार का संगीत है।

गति के इसे उदाहरण देते हुए यों स्पष्ट किया जा सकता है कि वृक्ष का प्रत्येक पत्ता एक विशेष साथ झूमता है और प्राकृतिक पदार्थ प्रत्येक अवसर पर एक विशेष कोटि का संगीत उत्पन्न करते रहते हैं, लेकिन मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रखा है, अतः वह स्वयं को प्रकृति से पृथक् कर अपने निराले स्वर अलापना चाहता है। इसलिए प्रकृति भी उससे दूर हटती जा रही है और मनुष्य अपने आपको एकांकी व अभागा समझते हुए अपनी विद्या-बुद्धि के नशे में मदान्ध हो प्राकृतिक क्रिया-कलापों की त्रुटियों खोजता फिरता है।

यही कारण है कि वह प्रकृति के संगीत को समझ नहीं पाता, अन्यथा समस्त प्रकृति हो संगीतमय है और पक्षियों का चहचहाना, नदी का कलकल करना, जलधरा की छलछल ध्वनि आदि में एक प्रकार का मधुर संगीत ही है।

14. संकेत- उदार-वीर हृदय, देवोपम-सौन्दर्य, इस आर्यावर्त्त का एकमात्र आशास्थल इस युवराज का विशाल मस्तक जैसी वक्र लिपियों से अंकित है।

अन्तकरण में तीव्र अभियान के साथ विराग है। आँखों में एक जीवन-पूर्ण ज्योति है। व्याख्या-इन पंक्तियों में मालव-नरेश बन्धुवर्मा स्कन्दगुप्त के प्रति अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि स्कन्द उदार हृदयवाला वीर पुरुष है और वह देवताओं की भांति सुन्दर है तथा समस्त आर्यावर्त्त की आशाओं का वही एकमात्र केन्द्र है पर उसके विशाल मस्तक की वक्र रेखाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उसे अभी अनेक विपत्तियों सहनी होगी। बन्धुवर्मा कहते है कि स्कन्दगुप्त हृदय आत्म गौरव रखते हुए भी विरागपूर्ण भावनाएँ रखता है अर्थात् अधिकार सुख के प्रति उदासीन है और उसे प्राप्त करने की चाह नहीं है। साथ ही स्कन्द के नेत्रों में एक अद्भुत चमक है और उनमें सर्वदा एक प्रकार की सजीव आमा निकलती रहती है।

15. संकेत- मनुष्य अपूर्ण है। इसीलिए सत्य का विकास जो उनके द्वारा होता है. अपूर्ण होता है। यहीं विकास का रहस्य है। यदि ऐसा न हो तो ज्ञान की वृद्धि असम्भव हो जाय। प्रत्येक प्रचारक को कुछ न कुछ प्राचीन असत्य परम्पाओं का आभय इसी से ग्रहण करना पड़ता है। सभी धर्म, समय और देश की स्थिति के अनुसार, निवृत्त होते रहे हैं और होगें। हम लोगों को दृढ़ धर्मित से उन आगन्तुक ऋषिक पूर्णता प्राप्त करनेवाले ज्ञानों से मुँह न फेरना चाहिए। हम लोग एक मूल धर्म की दो शाखायें हैं। आओ हम दोनों के विचार के फूलों से दुःख दुग्ध मानवों का कठोर पथ कोमल करें।

व्याख्या-प्ररूपातकीर्ति कह रहा है कि मनुष्य में बहुत-सी न्यूनताएँ होती है अतः यह पूर्ण नहीं कहला सकता और इस प्रकार उसके द्वारा होने वाले सत्य का विकास भी अपूर्ण ही कहलाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कर्ता ही अपूर्ण होता है तब उसके द्वारा किये जाने वाला कार्य स्वाभाविक ही अपूर्ण होगा और इस प्रकार मनुष्य द्वारा सत्य का अभिव्यक्तिकरण भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि मनुष्य अपूर्ण ही है।

प्रख्यातकीर्ति कहता है कि प्रत्येक वस्तु की क्रमिक उन्नति का यही रहस्य है कि अपूर्ण होने पर उसे पूर्ण बनाने का प्रयत्न हमेशा किया जाय और यही कारण है मनुष्य कि मेरा ज्ञान यह समझकर अपूर्ण है अपने ज्ञान को बढ़ाना चाहता है क्योकि वह यदि ऐसा न करे तो उसके ज्ञान की वृद्धि ही न हो। वह कह रहा है कि धर्म प्रचारक स्वयं को अपूर्णता के कारण कुछ- न-कुछ प्राचीन परम्पराओं का आश्रय ग्रहण करते हैं पर समय व देश, विदेश की स्थिति के अनुसार सभी धर्मों में परिवर्तन हुए हैं और भविष्य में भी होते रहेगे अतः हमें चाहिए कि अपनी हठवादिता को त्याग कर प्रत्येक नवीन बात को ग्रहण करें और इस प्रकार अपने ज्ञान भंडार की वृद्धि में ध्यान दें।

प्रख्यातकीर्ति ब्राह्मणों को सम्बोधित कर कहता है कि ब्राह्मण और बौद्ध विरोधी नहीं है बल्कि एक ही मूल धर्म की दो शाखाएँ हैं, अतः हमें चाहिए कि हम सब संयुक्त होकर अपने उदार विचारों से मनुष्य के दुःखों को दूर क का दुःख दूर करना होना चाहिए। को दूर करें। इस प्रकार धर्म का लक्ष्य उदार और प्राणि-मात्र 16. संकेत- सुकवि शिरोमणि । गा चुके मिलन संगीत, गा चुके कोमल कल्पनाओं के लबीले गान, रो चुके प्रेम के पचड़े एक बार वह उद्बोधन गीत गा दो कि भारतीय अपनी नश्वरता पर विश्वास करके अमर भारत की सेवा के लिए सन्नद्ध हो जायें।

व्याख्या-विजया मातृगुप्त को सम्बोधित कर कहती है, हे। कवियों के श्रेष्ठ कवि तुम अब तक प्रेम-रस-पूर्ण अनेक कविताएँ लिख चुके हो पर यह समय नायक-नायिका के संयोग- रत-पूर्ण कोमल काल्पनिक गीतों के गाने का नहीं है, अतः तुम इन गीतों का गाना त्यागकार ऐसे गीतों का सूजन करो जो भारत में एक प्रकार का नवजीवन सा जाग्रत करें।

उसका कहना है कि देववासी यह सोचकर कि एक-न-एक दिन तो मरना ही होगा अब देश-सेवा के लिए, अपने प्राणों को न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाएँ और उन्हें यह प्रेरणा कविताओं द्वारा ही मिल सकती है। अतः तुम्हारा मातृगुप्त का कर्त्तव्य है कि तुम श्रंगारिक कविताएँ लिखना छोड़कर देश-प्रेमपूर्ण उद्बोधन गीतों की रचना करो। 17. संकेत कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है, सम्राट। यदि इतना भी न कर

सकें तो क्या। सत्र क्षणिक सुखों का अन्त है। जिसमें सुखों का अन्त न हो, इसलिए सुगा करना ही न चाहिए।

व्याख्या-देवसेना स्कन्दगुप्त को समझाते हुए कह रही है कि मनुष्य को हमेशा कष्टमय साधना के लिए तत्पर रहना चाहिए और यदि स्कन्द जैसा वीर पुरुष कष्टों से विचलित हो उठेगा तो फिर कौन उसे वीर पुरुष मानेगा।

देवसेना स्कन्द से कह रही है कि संसार के समस्त सुख क्षण मात्र में नष्ट हो जाते हैं और सुख तो अल्पकालिक ही होते हैं, अतः मनुष्य को चाहिए कि सुख की अभिलाषा ही न करें। उनके कहने का अभिप्राय यह है कि सुख की कामना से ही मन पीड़ित होता है और यदि हम सुख की इच्छा ही न करें तो हमें किसी प्रकार की पीड़ा न होगी।

1.13 आधे-अधूरे (मोहन राकेश)

समीक्षात्मक प्रश्न

'आधे-अधूरे' नाटक की 'कथा बस्तु'

'आधे-अधूरे' मोहन राकेश द्वारा विचरित एक पूर्णत्या यथार्थवादी सामाजिक नाटक है। इस नाटक में एक मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति को लेकर कथावस्तु की सृष्टि की गयी है। पति-पत्नि के गृह-कलह को आधार बना कर नाटककार चलता है और पत्नी की काम-कुण्ठाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बताता है कि किस प्रकार वे कुण्ठाएँ, पारिवारिक जीवन को क्लेशपूर्ण एवं असहनीय बना देती हैं। परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार से ऊब चुका होता है और घर में रहते हुए घुटन का अनुभव करता है।

नाटक की कथावस्तु-नाकट का प्रारम्भ पुरुष एक जिसका नाम आगे चल कर खुलता है-महेन्द्रनाथ-के स्वगत कथन द्वारा होता है। सिरगेट पीता हुआ अपने अन्तर्द्वन्द्र को प्रकट करता है। वह अपने आपको जानता नहीं है, जानना चाहता है कि वह कौन है, परन्तु उसको कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल पाता है। वह तो वस्तुतः अपने आप में ही उलझा हुआ है। उसका मन्तव्य है कि "यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित है।"

अब स्त्री आती है, जो पुरुष एक महेन्द्रनाथ की पत्नी है। उसका नाम आगे चलकर सावित्री प्रकट होता है। कमरे को खाली देखकर वह अपने पति के प्रति झल्लाती है। तिपाई पर बैठा देखकर अपनी छोटी लड़की किन्नी को भला बुरा कहने लगती है।

पुरुष एक बाहर से आता है और घर र की की दुर्व्यवस्था को लेकर दोनों में कहा सुनी होने लगती है। पत्नी कहती है कि आज सिंघानिया खाने पर आने वाले हैं। सिंघानिया का आना पुरुष को रुचिकर प्रतीत नहीं होता है। इस पर पत्नी कहती है कि वह मेरा अफसर है, मुझे उसके मातहम काम करना पड़ता है। अच्छा हो कि उसके आने के समय आप घर पर ही रहें। पहले हो बार जब वह आया था तब तुम घर पर नहीं थे। पुरुष कहता है कि जुनेजा छह महीने बाद बाहर से आया है। वह कारोबार की बात करने के लिए उसकी के पास जाना चाहता है। पुरुष की राय में जुनेजा ने उसकी मदद की है। पत्नी की राय में उसने उनके घर को बर्बाद कराया है। अब बर्बादी की बात को लेकर दोनों में कहा-सुनी होने लगती है। पति कहता है कि पत्नी की फरमायशों में सब धन व्यय हो गया। पत्नी के मत में पति ने दोस्तों को शराब पिलाकर सब धन बहा दिया।

अब लड़के अशोक की चर्चा छिड़ जाती है। पत्नी कहती है कि वह भी अपने पिता की भांति बिगड़ गया है और घर के बाहर रहने लगा है।

पत्नी कहती है कि वह सिंघानिया (पुरुष दो) से लड़के की नौकरी के बारे में बात करना चाहती है।इसी स्थल पर पुरुष एक, जगमोहन (पुरुष तीन) की चर्चा करने लगता है। स्त्री को उसका नाम सुनकर अजीब-सा लगता है। वह यहाँ तक कह बैठती है कि उसका मन होता है कि वह आज ही इस घर से चली जाए।अब बड़ी लड़की (बीन) बीना जिसको बिन्नी कह कर पुकारा जाता है, आती है। वह यहाँ काफी समय पर आई है। आते ही स्कूटर-रिक्शा के किराये के पैसे देने के लिए छूटे पचास पैसे मांगती है। वे दोनों जानना चाहते हैं कि वह कहाँ से और कितने दिनों के लिए आई है। किन्तु बीना से पूछने के बजाय वे आपस में लड़ने लगते हैं।तोपों परस्पर बाते करने लगते हैं। एक दूसरे से प्रति कटाक्ष करते हैं। अन्नतः लड़को आँखो ये आंसू था कर कहती है कि जिन्दगी किसी तरह कटती ही चलती है? वह मनोज की प्रेयसी है- शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। पर अब आकर लगाने लगता है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।" बीना कह देती है कि हम दोनों कहा-सुनी करने के लिए बहाना ढूंढते रहते हैं?

छोटी लड़की आती है, इसको भी यही शिकायत है कि पहले तो घर पर कोई मिलता ही नहीं और यदि कोई मिलता भी है, तो कोई सीधे मुहँ बात नहीं करता है। घर के वातावरण में यह छोटी लड़की बिन्नी भी सन्तुष्ट नहीं रहती है। बिन्नी लड़की आती है, इसको भी यही शिकायत है कि पहले तो घर पर कोई मिलता नहीं है और यदि कोई मिलता भी है, तो कोई सीधे मुँह बात नहीं करता है। घर के वातावरण में यह छोटी लड़की बिन्नी भी सन्तुष्ट नहीं रहती है। बिन्नी स्कूल के लिए आवश्यक रोल की माँग करती है। उसकी माँ आक्रोश व्यक्त करती है। लड़की कहती है कि अशोक की तरह क्या वह भी पढ़ना छोड़ दे ? छोटी लड़की अशोक के प्रति अवज्ञापूर्ण भाषा का प्रयोग करती है। बड़ी लड़की इस पर आपत्ति करती है। इस पर दोनों बहने आपस में कीचड़ उछालने लगती है। सिधानिया

(पुरुष दो) के आने की बात शुरु होती है। पुरुष उसके आने के प्रति व्यंग्य करता है। स्त्री फिर पति को कह देती है कि अब मुझसे नहीं होता, बिन्नी। अब मुझसे नहीं संभलता। इतने में छोटी लड़की बिन्नी और अशोक लड़ने लगते हैं। बड़ी लड़की छोटी से कहती है कि वह अशोक के आदरपूर्वक बोलना सीखे। माता भी अशोक से कहती है कि वह इतनी बड़ी-12 वर्ष की लड़की के बाल न खींचा करें। इस पर पुरुष भी पूछ बैठता है कि मेरी उम्र कितने वर्ष की है, जिससे अधिक अवस्था के नाते घर के लोग उसका आदर करना सीखें। अपने प्रति घर के सदस्यों के दुर्व्यवहार के प्रति उसको भी शिकायत है- "हर वक्त की दुतकार, हर वक्त की कोंच, बस मेरी इतने सालों की?" यही कमाई है. यहाँ फिर पति-पत्नी में कहा सुनी होने लगती है। पुरुष को लगता है कि सब लोग उसे निखडु हरामखोर समझते है। पुरुष एक (महेन्द्रनाथ) कहीं चला जाता है। स्त्री कहती है कि ऐसा प्राय होता रहता है। यह कहीं नहीं जायगा, शीघ्र ही वापस आ जायगा। स्त्री (सवित्री) और लड़के अशोक की बातें होती हैं। स्त्री कहती है कि सिंघानिया को पाँच हजार रु. मासिक वेतन मिलता है। उसको इस कारण घर बुलाया है कि अशोक की नौकरी लगा दे। लड़का सिधानंया का मखौल उड़ाता है और कहता है कि उसे नौकरी नहीं करनी है। इस पर सावित्री फिर उसके पिता (पुरुष एक) का उदाहरण देकर कहती है कि उनकी तरह अशोक भी कदाचित् कुछ नहीं करना चाहता है। बातचीत में स्त्री लड़के से भी यह कह देती है कि चाहे तो वह भी घर से चला जाय। द्रष्टव्य-हमारे विचार से यहाँ कथानक का एक भाग पूर्ण हो जाता है। इसे अनौपचारिक रूप से नाटक के प्रथम अंक का पटाक्षेप कह सकते है। यहाँ तक होता यह है कि हमें नाटक के समस्त पात्रों का परिचय प्राप्त हो जाता है। यह भी विदित हो जाता है कि परिवार के किन्हों दो व्यक्तियों में सुलह नहीं है तथा स्त्री के मन में कोई ऐसा काँटा है जिसकी चुभन के कारण उसकी प्रत्येक व्यक्ति की बात अरुचिकर प्रतीत होती है।

पुरुष दो (सिपानिया) के आगमन के साथ मानो अनौपचारिक रूप से इस नाटक का द्वितीय अंक आरम्भ होता है। पुरुष दो, अपनी शेखी बघारत है। स्त्री अशोक की पौकरी की बात करती है यह विदेशी की बात करके उसकी बात उड़ा देता है। लड़का पैड पर उसका कार्टून बनाता है। पुरुष हो बोड़ी ही देर बाद चला जाता है।

लड़के के व्यवहार से खीझकर स्त्री फिर कह देती है कि "आज कत आ गया है जब खुद ही मुझे अपने लिए कोई-न-कोई फैसला...।" लड़का भी कह देता है कि जो कुछ करती हो, अपने लिए। अपने लिए चाहे जो प्रबन्ध कर लो।लड़का बताता है कि इसके पिता (पुरुष एक) जुनेजा के घर है और वह स्त्री (सावित्री) से बाते करने के लिए आने वाले है। यह भी विदित होता है कि स्त्री चली गई है। बड़ी लड़की का कहना है कि मग्भी कोई गम्भीर निर्णय करके घर से गई है ऐसा उनके चहरे से प्रतीत होता था। लड़के की राय में यह ठीक ही हुआ। लड़का छोटी लड़की को बुरी तरह डाँटता है क्योंकि उसने किन्नी को पड़ौसी की लड़की सुरेखा के साथ कुछ अश्लील बातें करते सुना था। अपना बचाव करती हुई छोटी लड़की भी लड़के की प्रेम लीला की ओर संकेत कर देती है। लड़का किसी लड़की को चाहे जब घर की चीजे ले जाकर देता रहता है। स्त्री वापस आती है और फिर तुरन्त ही बाहर जाने की तैयारी करने लगती है। कहती है कि जगमोहन के साथ उसे जाना है। बड़ी लड़की कहती है कि जुनेजा जी आने वाले हैं। स्त्री कहती है कि वह जुनेजा से बात नहीं करना चाहती। लड़की यह भी कह देती है कि उसके पिता (पुरुष एक) जगमोहन को पसन्द नहीं करते हैं, परन्तु फिर भी स्त्री नहीं मानती है। अशोक यह कह कर कहीं चला जाता है- आ जाऊँगा थोड़ी देर में। जुनेजा अंकल के आने तक। स्त्री बड़ी लड़की से कह देती है कि उसने अंतिम निर्णय कर लिया है। अब वहु जगमोहन के साथ कहीं जा रही है। स्त्री ड्रैसिंग टेबल के सामने खड़ी अपना श्रृगांर करती है साथ ही मन को उलझनों में झुलती हैं। इतने में ही पुरुष तीन (जगमोहन) आ जाता है। जगमोहन और स्त्री थोड़ी देर तक प्रेमालाप जैसी वार्ता करते हैं और चले जाते हैं।

इस स्थल पर एक प्रकार के नाटक का दूसरा अंक समाप्त होता है। इस अंक में हमको यह पता चलता है कि इस परिवार का जीवन कैसा है। सबके सब प्रेम लीला में मस्त है। बड़ी लड़की मनोज के साथ भाग चुकी है, छोटी लड़की सुरेखा के साथ गुंदी बातों में रस लेती है, लड़का अशोक उद्योग सेण्टर वाली किसी लड़की के पीछे दीवाना है और गृह-लक्ष्मी सावित्री जगमोहन के साथ नया ब्याह रचाने की तैयारी कर चुकी है।

अब समझिए कि नाटक का तीसरा अंक प्रारम्भ होता है। बिन्नी किन्नी आपस में झगड़ती है। पुरुष चार (जुनेजा) छोटी लड़की के साथ अन्दर आता है। वह सावित्री से महेन्द्रनाथ के बारे में बात करने आया है। सावित्री को न पाकर कुछ उदास और निराश हो जाता है। जुनेजा लड़कियों से इधर-उधर की बातें करता है। बातचीत के मध्य वह बड़ी लड़की बिन्नी को बताता है कि महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री को बहुत प्यार करता है। महेन्द्रनाथ ने यही इच्छा प्रकट की थी कि मैं किसी प्रकार उसके और सावित्री के मध्य समझौता करा दूँ।

पुरुष चार जाने लगता है। तभी सावित्री चापस आ जाती है। छोटी लड़की उसकी बाँह पकड़े हुए है। स्त्री लड़की को पीटना चाहती है। जुनेजा निषेध करता है। सावित्री इसके लिए जुनेजा से यहाँ तक कह देती है "कि वह उसके घर के मामलों में न पड़े। थोड़ी देर बाद पुरुष चार (जुनेजा) और सावित्री का वार्तालाप प्रारम्भ होता है। प्रसंग वही है-महेन्द्रनाथ के प्रति सावित्री का अर्वांछनीय व्यवहार तथा सावित्री के प्रति महेन्द्रनाथ की पूर्ण निष्ठा। स्त्री कहती है कि तुम्हारे जैसे दोस्तों ने ही महेन्द्रनाथ को बिगाड़ा है, निकम्मा बनाया है, बर्बाद किया है और मुझसे भी अलग कर दिया है। पुरुष कहता है कि सावित्री ने महेन्द्रनाथ में हीन भावना भर दी है। इससे वह अपने आपको असमर्थ अनुभव करने लगा है। बातचीत बढ़ती है। धीरे-धीरे वह व्यक्तिगत स्तर पर आ जाती है। सावित्री जुनेजा को बताती है कि वह सदैव काम-पीड़ित एवं भोग की भूखी रही है। इसी कारण विभिन्न पुरुषों के प्रति आकर्षित होती रही है। एक समय था जब वह स्वयं पुरुष चार के प्रति आकर्षित हुई थी। इसके बाद तुम क्रमशः शिवजीत और जगमोहन के प्रति आकर्षित हुई थी। इतना ही नहीं, समय ऐसा भी आया जब तुम मनोज को चाहने लगी थीं-वही मनोज जिसके साथ तुम्हारी बड़ी लड़की बिन्नी भाग गयी। जुनेजा के कथन ऐसे हैं जो फ्रायड, युग तथा एडलर के सिद्धान्तों से प्रभावित है और सावित्री के कामुक व्यक्तित्व की बखिया उधेड़ कर रख देते हैं।

पुरुष चार यह भी कह देता है कि मैं बता सकता हूँ कि अभी तुम जगमोहन के पास के अतिरिक्त और कहीं नहीं गई होगी। साथ ही यह भी निश्चित है कि जगमोहन ने तुम्हें स्वीकार नहीं किया होगा और वह तुम्हें टालकर यहाँ पहुंचा गया होगा। जुनेजा कहता है कि सावित्री के मन में घुटन रहती है, वह चुनाव करना चाहती है, परन्तु कर नहीं पाती है। इसी कारण घर के प्रत्येक व्यक्ति से उसकी अनबन रहती है। पुरुष चार बार-बार स्त्री से कहता है कि वह महेन्द्रनाथ (पुरुष एक) को अपने बन्धन से मुक्त कर दे यानी तलाक दे दे। इतने में ही पुरुष एक (महेन्द्रनाथ) वापस आ जाता है। वह अस्वस्थ है, परन्तु फिर भी टेकते-टिकाते आ जाता है। सब बात जहाँ की तहाँ रह जाती है और नाटक का अन्त हो जाता है।

इस अंक का निष्कर्ष यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे को छोड़ना चाहते है परन्तु छोड़ नहीं पाते हैं।

1.14 सारांश

इन देशी भाषाओं का पय माहित्य प्रवाहमान रहा, परंतु इनके गव्य माहित्य के स्वरूप विकास की गति अत्यंत मंद रही। ब्रजभाषा और ब्रजभाषा मित्रित खड़ीबोली हिंदी में काव्य ग्रंथों एवं संस्कृत ग्रंथों की उपलब्ध टीकाओं की भाषा भी महज ग्राह्य नहीं थीं। इन 'अनगढ़ और असंबद्ध भाषाओं की दुरुहता गद्य में अरुचि उत्पन्न करने वाली थी। मूल साहित्य इन टीकाओं से कहीं अधिक सहज, ग्राहा और रुचिकर लगती थी। इस प्रकार ब्रजभाषा में पद्य का भंडार द्रुत गति में बह रहा था पर उसके समक्ष उस भाषा का गद्य साहित्य बहुत न्यून था। गद्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली हिंदी के निर्विरोध चयन में, गद्य के क्षेत्र में इस पूर्ववर्ती भाषिक शैविल्य का बड़ा योगदान रहा। इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं, गद्य का भी विकास यदि होता आता तो विक्रम की इस शताब्दी के आरंभ में भाषा-संबंधी बड़ी विषम समस्या उपस्थित होती। जिम धड़ाके के साथ गद्य के लिये वही बोली ले ली गई उस धड़ाके के साथ न ली जा सकती। कुच्छ समय मोच-विचार और वाद-विवाद में जाता और कुछ समय तक दो प्रकार के गद्य की धाराएँ गाव-माथ दौड़ लगती। भाषा विप्लव नाहीं संघटित हुआ और खड़ीबोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा के गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीर-धीरे व्यवहार की निष्ट भाषा होकर गथ के नए मैदान में दौड़ पड़ी। अकबर और जहाँगीर के समय से ही बडीबोली हिंदी का प्रयोग निष्ट भाषा के रूप में

हो रहा था। अकबर के समय में ही कवि गंग ने चंद द बरनन की महिमा नामत्र गद्य-ग्रंथ लिखा। यह आधुनिक हिंदी गद्य लेखन का प्रथम प्रयास माना जाता है।

1.15 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- आदिकाल की प्रमुख प्रतियों पर प्रकाश डालते हुए किसी एक तत्कालीन रचनाकार की विशेषताएँ रेखांकित कीजिए।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रवृतियों का विषेचन करते हुए इस काल की परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए।
- भक्तिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए उसकी विशेषताएँ बताइये ।
- भक्तिकालीन काव्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए इस काल की सामान्य विशेषताएँ बताइये ।
- निर्गुण भक्तिकाव्य का परिचय देते हुए इस काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।
- निर्गुण काव्यधारा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निरूपण कीजिए।
- प्रसादजी के नाटकों में उनका कवि रूप अधिक सजग और सचेत है। 'स्कन्दगुप्त' को दृष्टि में रखते हुए इस कथन की समीक्षा कीजिए।
- "नायिका की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' विषादान्त है और उद्देश्य की दृष्टि से सुखान्तं" इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।
- 'स्कन्दगुप्त' नाटक सुखान्त है अथवा दुखान्त ? सप्रमाण उत्तर दीजिए ।'स्कन्दगुप्त' नाटक के उद्देश्य पक्ष पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
- 'स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य कलाओं का सामंजस्य स्थापित किया है। इस मत से आप कहाँ तक सहमत है? समीक्षात्मक उत्तर दीजिए।
- नाटक के तत्वों के आधार पर 'स्कन्दगुप्त' नाटक की समीक्षा कीजिए।
- सिद्ध कीजिए कि "रानी अनन्तदेवी स्कन्दगुप्त नाटक का विषय है।"
- स्कन्दगुप्त नाटक के आधार पर अनन्तदेवी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
- "देवसेना के चरित्र में संगीत प्रियता का विशेष रूप से गुण विद्यमान है।"प्रकाश डालिए।
- देवसेना का चरित्र प्रसादजी की एक अलौकिक भेंट है। स्यष्ट कीजिए।स्कन्दगुप्त राष्ट्रीय चेतना का सम सामयिक शंखवाद किस प्रकार सिद्ध होता है?
- राष्ट्रीय भावना राष्ट्रीय आदर्श के परिप्रेक्ष्य में स्कन्दगुप्त नाटक की समीक्षा कीजिए।
- स्पष्ट कीजिए कि 'स्कन्दगुप्त' में आधुनिकता भी है।
- " 'स्कन्दगुप्त' प्रसाद का सर्वोत्तम ऐतिहासिक नाटक है।" उपर्युक्त कचन का सप्रमाण आकलन कीजिए।
- "प्रसाद का 'स्कन्दगुप्त' सफल ऐतिहासिक नाटक है।" इस कथन पर प्रकाश डालिए।
- स्कन्दगुप्त की मूल प्रेरणा पर प्रकाश डालिए।
- प्रसादजी ने स्कन्दगुप्त नाटक की कथावस्तु में इतिहास और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है। समझाइये।

- 'प्रेमचन्द की उपन्यास कला विकासशील है।' इस कथन का तर्कसंगत विवेचन कीजिए। अथवा
- प्रेमचन्द के उपन्यासों के आधार पर उनकी उपन्यास कला के विकासक्रम का विवेचन कीजिए।
- "प्रेमचन्द हिन्दी के अकेले ऐसे उपन्यासकार हैं, जिनका उपन्यास साहित्य अपने रचना क्रम में युग की परिस्थितियों और मान्यताओं के परिवर्तन का सजीव इतिहास प्रस्तुत करते हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
- प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में युगीन स्थिति को ही अपने उपन्यासों का कथा का आधार बनाया है। इस कथन का विवेचन कीजिए।
- हिन्दी उपन्यास के उद्भव व विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

1.16 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास: आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास: सं. नगेंद्र
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास: आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

इकाई – 2

स्कंदगुप्त, आधे-अधूरे एवं गोदान से समीक्षात्मक प्रश्न।

रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 शब्द संपदा

2.3 उद्देश्य

2.4 आधे-अधूरे नाटक के कथानक की विशेषताएँ

2.5 आधे-अधूरे नाटक के नायक का चरित्र-चित्रण

2.6 'आधे-अधूरे' के सन्दर्भ में इस कथन की मीमांसा

2.7 'आधे-अधूरे' शीर्षक की सार्थकता

2.8 सारांश

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

2.10 पठनीय पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी गद्य की विधाओं को मामान्यतः 'कथा साहित्य' और 'कथेतर माहित्य' में विभाजित किया जाता है। कथा माहित्य के अंतर्गत नाटक, उपन्यास और कहानी एवं उनमे निःमृत विधाएँ आती हैं। शेष कथेतर गद्य विधाएँ हैं। जब इनको मुख्य और गौण विधाओं में वर्गीकृत किया जाता है तब कथा माहित्य, निबंध और आलोचना को मुख्य विधाओं के अंतर्गत रखा जाता है तथा अन्य विधाओं की पहचान गौण विधा के रूप में की जाती है। इन गौण विधाओं को 'अकाल्पनिक गद्य' भी कहा जाता है। रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, रिपोर्ताज आदि में कुछ विधाएँ पुरानी हैं, कुछ नई, किंतु उनके बीच की विभाजक रेखाएँ बहुत श्रीण होने के कारण वे एक-दूसरे में प्रभाव ग्रहण करती हैं।" (महादेवी वर्मा)। कथा साहित्य के माच निबंध हिंदी साहित्य की आरंभिक गद्य विधा है। आलोचना भी साहित्य के ममानातर विवमित हुई है। इन अकाल्पनिक गद्य विधाओं का आधार निबंध साहित्य है।

2.2 शब्द संपदा

1. निज = अपना
2. निजता = गोपनीयता
3. सरोष = रोय के साथ, आक्रोश

2.3 उद्देश्य

आधुनिक गद्य विधाओं के विभिन्न प्रकारों में परिचित हो सकेंगे।

आधुनिक गद्य विधाओं के स्वरूप में परिचित हो सकेंगे।

आधुनिक गद्य विधाओं की उत्पत्ति और विकाम को समझ सकेंगे।

आधुनिक गद्य विधाओं की विशिष्टता एवं मीमात्रओं में परिचित हो सकेंगे।

2.4 आधे-अधूरे नाटक के कथानक की विशेषताएँ

'आधे-अधूरे' नाटक की कथा-वस्तु या कथानक "आधे अधूरे" नामक नाटक यद्यपि अंकों में विभाजित नहीं है तथापि कथावस्तु का विन्यास इस प्रकार किय गया है कि अंकों की स्थिति स्वंयमेय स्पष्ट हो जाती है। पहले समस्त पात्रों का परिचय प्राप्त हो जाता है। परिवार का कलह क्रमशः विकसित होता है। उससे ऊब कर पुरुष एक यानी महेन्द्रनाथ घर छोड़कर चला जाता है। इस स्थल पर एक प्रकार के कथावस्तु की प्रथम अवस्था दिखाई देती है। इसके पश्चात् गृह कलह एक अन्य रूप धारण करता है। स्त्री (सावित्री) और उसके बच्चों (बिन्नी, किन्नी, और अशोक) के मध्य कलह होता है और वे सबके सब एक दूसरे से उबे हुए दिखाई देते हैं। अन्ततः स्त्री जगमोहन के साथ घर छोड़कर चली जाती है। इस स्थल पर मानो नाटक के द्वितीय अंक का पटाक्षेप होता है। यह स्पष्टतः चरम सीमा अवस्था की स्थिति कही जा सकती है। यहाँ पर घटना-क्रम पूर्णतः उलझ जाता है। पाठक या प्रेक्षक यह सोचने लगता है कि अब क्या होगा ? इन बच्चों का क्या होगा ? लड़का अशोक एक प्रकार से निकम्मा है। बड़ी लड़की बीना या बिन्नी अपने प्रेमी से निराश होकर गई है और उसका भविष्य अंधकारमय है। छोटी लड़की फिल्नी अभी बहुत छोटी है-वह केवल स्कूल की छात्रा है इतने में ही जुनेजा आ जाता है और वह बालकों को आश्वस्त करता है तथा उनकी सहायता का संदेश लेकर आता है।

वह यह भी बारा देता है कि पुरुष एक महेन्द्रनाथ यानी उन बच्चों के हैडी उसके घर सुरक्षित है तथा अपने बाल-बच्चों के पास आने के लिए उत्सुक है यह नाटक की 'प्राल्याशा' कार्यावरणा है।

जुनेजा के आगमन के साथ ही घटतायक्र क्रमशः सुलझने लगता है। थोड़ी ही देर बाद स्त्री (सावित्री) आ जाती है। जुनेजा और सावित्री की बातचीत के साथ कयानक अपने अन्त की ओर अग्रसर होने लगता है। जुनेजा सावित्री के व्यवहार का मनीविश्लेषणात्मक काव्य प्रस्तुत करता है और स्याह कर देता है कि जगमोहन के द्वारा व्यक्त होने के पश्चात् सावित्री के लिए अब अन्यत्र स्थान नहीं रह गया है। इतना ही नहीं, वह यह भी बता देता है कि महेन्द्रनाथ घर आने के लिए उत्सुक है और सावित्री के प्रेम पाश में इतनी बुरी तरह जकड़ा हुआ है कि वह सावित्री के बिना रह ही नहीं सकता है।

जुनेजा की बाते जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे सावित्री अपनी त्रुटियों का अनुभव करती जाती है-वह यथार्थ के स्पर्श द्वारा मानों सोते से जाग जाती है और चाहती है कि जुनेजा कहाँ से चला जाय और उसको अपनी स्थिति का सामना करने के लिए अकेला छोड़ दे।

जैसे ही जुनेजा जाने होता है वैसे ही पुरुष एक महेन्द्रनाथ अपने लड़के का सहारा लिये हुए प्रवेश करता है। बस यहीं नाटक का अन्त हो जाता है। इस प्रकार कथावस्तु अंक और कार्यावस्था दोनों ही दृष्टियोंयों से सुविभाजित एवं सुविन्यस्त है।

नाटक के कथानक में पाठक एवं प्रक्षेक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। स्त्री सावित्री के घर से चले जाने के पश्चात् तो वह मानो अपनी सीमा का उल्लंघन ही कर जाती है। आगे चलकर पुरुष और स्त्री दोनों ही लौट आते हैं, परन्तु फिर भी उनके भविष्यत् व्यवहार की स्थिति का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है। लेखक सब कुछ पाठक अथवा प्रेक्षक की कल्पना शक्ति पर छोड़ देता है। वे दोनों मिलकर रहें अथवा पूर्ववत् बात पीछे लड़ने का बहाना ढूँढते रहें और "तुमको और, न हमको ठौर" वाली लोकोक्ति चरितार्थ करते रहें।

बड़ी लड़की बिन्नी अपने पति के पास वापिस गई या नहीं, यह भी कल्पना का विषय बना रहता है। अशोक का क्या होता है? सिंघानिया जी उसकी नौकरी लगाते हैं या नहीं? वह यो हो जूते चटकाता फिरता है, अथवा कुछ करता-घरता है ? ये समस्त प्रश्न अनुतरित बने रहकर पाठक की उत्सुकता को बनाये रखते हैं।

कथावस्तु वस्तुतः किसी निष्कर्ष पर ले जाकर पाठक को नहीं छोड़ती है, बल्कि उसको झकझोर कर रख देती है। नाटक में 'फलागम' जैसी कार्यावस्था नहीं है, परन्तु फिर भी नाटक का अन्त तो होता ही है और वह समस्त समस्या को अघर में ही लटका हुआ छोड़ देता है।

नाटक की कथावस्तु सामान्य मध्य-परिवार की एक सामान्य समस्या को लेकर चलती है। इस प्रकार वह हमें आद्यान्त परिचित सी प्रतीत होती है और उसके प्रति हम एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव करते हैं। आत्मीयता की यह स्थिति नाटक की रस-सिद्धि में सहायक होती है।

नाटककार काफी समय तक अपने प्रमुख पात्रों के कामों को छिपाए रखता है और उन्हे आनुसंगिक रूप से ही प्रकट करता है। यह तत्व भी नाटक की कथावस्तु की 'उत्सुकता' में वृद्धि करता है। कथावस्तु जिस क्रम में उलझती है, उस क्रम में सुलझती नहीं है। उलझने की अपेक्षा यह सुलझाती बहुत ही शीघ्र है। साथ ही वह एक समस्या को चित्रित तो करती है, परन्तु उसका समाधान प्रस्तुत नहीं करती है। इन दोनों कमियों का कथावस्तु का दोष कहा जा सकता है।

निष्कर्ष-समग्र रूप में नाटक की कथावस्तु में कार्यावस्थाओं एवं उत्सुकता के तत्वो का सफल निर्वाह हुआ है। वह पाठक को कोतूहल प्रदान करने के साथ रसमग्न बनाये रखने में समर्थ है। किसी भी काव्य-कृति की यह सबसे बड़ी सफलता है।

आधे-अधूरे नाटक समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक है। नाटक आधुनिक मध्य वर्ग को केन्द्र में रखकर रचा गया है। जिसमें पात्र वास्तविकता में जीन चाहते हैं। मध्यम वर्ग की मानसिकता और सुविधाओं की खोज में उसकी भटकन को राकेश ने भली-भांति समझा है। "परिवार कैसे टूट रहे हैं" यह टिप्पणी गजानन बोध ने आधुनिक युग में पारिवारिक विधटन को देखते हुए लिखा है। आज परिवार की विशिष्टता) इतनी तो है ही तनी दृढ़ तो है वह परम्परा (शील और नहीं। केवल उसके अवशेष है। वे भी खत्म होते जा रहे है इसलिए मौजूदा औद्योगिक सभ्यता का प्रभाव गहरे से गहरा होता जा रहा है। यह एक तरह के स्त्री-पुरुष के बीच लगाव व तनाव का दस्तावेज है। स्त्री और पुरुष जीवन के घर परिवार के और समाज के भी दो अटल ध्रुव हैं, पर वे एक-दूसरे से दूर ही दूर हटते जा रहे हैं। उनकी पारस्परिक चेतना मूलतः सम्बन्धों की चेतना इस सीमा तक संशयग्रस्त हो चुकी है कि उसके कारण चारों और विसंगतियाँ ही विसंगतियाँ उभर कर आ रही हैं। वे विसंगतियाँ अपने सम्पर्क में ने वालों को भी नितान्त विसंगत तर्कहीन हृदयहीन और वितृष्ण बनाती जा रही है। इन दो ध्रुवों के बीच में आने वाले अशोक, बिन्नियों-किन्नियाँ अस्वाभाविक होकर, कोई न कोई तात्कालिक सुविधाजनक बहाना खोज कर, घुट-घुट कर पलायन कर जाना चाहते हैं। यही आज के सम्बन्धे की नियति है। यही है आधुनिक युग का समग्र बोध और उसका सार तत्व। नित्य-प्रति बदल रही मानव-चेतना का सार तत्व भी यही है, जिसका राकेशजी ने आधे-अधूरे नाटक में मूर्त एवं स्पष्ट रूपायन किया है। वैयक्तिक यथार्थ-यान्त्रिकता, बौद्धिकता, आर्थिक विषमता और उस पर अनेकानेक महत्वाकांक्षाओं के दबाव, इन सबने मिलकर निश्चय ही आज के व्यक्ति को भीतर ही भीतर एकदम वितृष्ण एवं खोखला करके रख दिया है। पर व्यक्ति ऐसी मनःस्थिति बना पाने में समर्थ नहीं हो पा रहा है कि वह अपने ही इस यथार्थ को स्वीकार कर ले। तभी तो वह अपना आधा- अधूरापन अन्यों पर थोप करके एक प्रकार की कल्पित सान्त्वना ओढ़ कर सो जाना चाहता है। इस भावना ने उसे उग्र एवं अहंवादी भी बना दिया है। यह अहंवाद यदि उसे अपने अधूरेपन का कभी अहसास करवाता भी है, तो भी वह उसे नकार कर, दूसरों के अधूरेपन को सहन कर पाने में भी अपने-आप को असमर्थ पाता है। अपने अधूरेपन को डाँपने के लिए वह कहीं अन्यत्र 'पूरे' की तलाश में भटक रहा है। इस

कल्पित पूरेपन की तलाश में ही वास्तव में वह अपनों या अपने परिवार से कट जाना चाहता है। मोहन राकेश के प्रस्तुत नाटक 'आधे-अधूरे' में व्यक्ति | के स्तर पर इसी यथार्थ का सजीव बल्कि जीवन अंकन हुआ है।

अपने अधूरेपन को जानकर भी दूसरों के अधूरेपन के प्रति उग्र असहनशीलता ने व्यक्ति / को अपने-आ में ही एक व्यंग्य बना दिया है। । यह व्यंग्य जीवन को भी सहज जीने की प्रक्रिया कोरकर की जितकी ओर भागती है और तथा कभी जगमोहन अपने निभाना का बेशर्म बनकर जाते रहना पेण्ट के बटन खुले आदि सब-कुछ सहन कर लेती है। पर कहाँ मिल पाता है उसे कोई एक पूर्ण पुरुष? अपनी दृष्टि में लिलिने व्यक्ति महेन्द्रनायके साथ ही जीवन व्यतीत करने के लिए उसे होना पड़ता है। उसकी इस अजीबो-गरीब स्थिति में जीने का एकमात्र कारण है 'कितना एकसाथ होकर कितन कुछ एक साथ पाकर जीता। उसकी इसी यथार्थता की ओर इंगित करते हुए नाटक में पुरुष चार अर्थात् जुनेजा ठीक ही करता है-

"बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी ३. हे साल-दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर है क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक-साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक-साथ ओढ़कर जीता। वह उतना कुछ कभी तुम्हें एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरु करती, तुम हमेशा इतनी ही बेचैन बनी रहती...."

जुनेजा का यह कथन स्त्री अर्थात् सावित्री के व्यक्तिगत जीवन का यथार्थ है जिसे आज के विटित हो रहे मूल्यों वाले महानगरीय जीवन में यदि सर्वत्र नहीं तो अनेकशः अवश्य देखा- सुद्धा जा सकता है। स्त्री के समान व्यक्ति के स्तर पर महेन्द्रनाथ के रूप में नाटककार ने पुरुष के भी अधूरेपन का यथार्थ चित्रण किया है। महेन्द्रनाथ के बारे में सावित्री जो कुछ कहती है, का अक्षरशः सत्य ही प्रतीत होता है-

"हूँ तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता-फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है-पर असल में आदमी होने लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शांति हो ?.... मैंने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी-न-किसी का सहारा ढूंढते पाया है। खात तौर से आप (जुनेजा) का। यह करना चाहिये या नहीं-जुनेजा से पूछ लूँ....।" और- फिर वह कहती है- "कि अपने-आप पर उसे कभी किसी चीज के लिए भरोसा नहीं रहा। जिन्दगी में हर बीज की कसौटी-जुनेजा।"

इस प्रकार नाटककार ने यह स्पष्ट किया है कि व्यक्ति के स्तर पर भी आज का व्यक्ति किन-किन्हीं भी कारणों से भीतर खोखला होता जा रहा है। तभी तो वह अपना खोखलापन और अपूराषन दूसरों पर थोपकर स्वयं या तो उससे अलग हो जाना चाहता है या फिर तटस्थ अथवा भौचरुका। विशेष करके वैवाहिक जीवन में आज का यांत्रिक व्यक्ति इस तथ्य को भुला बैठता है कि वास्तव में नारी-पुरुष दो आधी-अधूरी सजीव इकाइयों ही हैं। उनका पारस्परिक सहयोग- संमिलन और सद्भाव ही उन दोनों को भी और उन दोनों के परिवार या परिवेश को भी पूर्णता उदार कर सकता है। पर अपने अधूरेपन के अहं का शिकार व्यक्ति उसे किसी जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन या सिंघानिया में खोजने का प्रयत्न करता है। इसी कारण यथार्थतः वह व्यक्ति के स्तर रथी असफलताओं की अविरल कहानी बनता जा रहा है। उस व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्ति भी उससे प्रभावित होकर, कम-से-कम उसके आश्रित तो निश्चय हो, अत्यधिक समग्रतः प्रभावित होकर अधूरेपन की कहानी बनते जा रहे हैं। बिन्नी, अशोक, किन्नी बादि सभी उसी से प्रभावित व्यक्ति के यथार्थ के प्रतीक हैं। सभी किसी-न-किसी पूरे व्यक्ति की तलाश में घुट-पिट कर जीते हैं, उससे भी वंचित होते जा रहे हैं। उनका जीवन एक अनवरत धरकर एक अधारण पीड़ा से भरे नरक की लेका रहे है-इसमें कोई भी सन्देह नहीं। अटकपुरुष महेन्द्रनाथ अपने के लिए जुनेजा के आस-पास मण्डराता है, जबकि स्त्री सावित्री महेन्द्रनाथ की ओर को अपकर कभी शिवजीत भागती है, कभी जुनेजा की और तथा कभी जगमोहन कोऔर यह अपने बति मिथानिया का बेशभर कर जांचे खुजाते रहना, पेण्ट के बटन खुले रखत आदि सब कुछ सहन कर लेती है। पर कहाँ मिल पाता है उसे कोई एक पूर्ण पुरुष ? अभी से अपनी दृष्टि में लिजलिजे व्यक्ति महेन्द्रनाथ के साथ ही जीवन

व्यतीत करने के लिए उसे विवश हो पड़ता है। उसको इस अजीबो-गरी स्थिति में जीने का एक मात्र कारण है 'कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर जीना। उसकी इसी यथार्थता की और इंगित करते हुए चाटक में पुरुष चार अर्थात् जुने जुनेजा ठीक ही करता है-

"असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी थे. तो साल-दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर लो है क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीता। वह उतना कुछ कभी तुम्हें एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरु करती, तुम हमेशा इतनी ही बेचैन बनी रहती...." जुनेजा का यह कथन स्त्री अर्थात् सावित्री के व्यक्तिगत जीवन का यथार्थ है जिसे आज के विचरित हो रहे मूल्यों वाले महानगरीय जीवन में यदि सर्वत्र नहीं तो अनेकशः अवश्य देखा- सुण जा सकता है। स्त्री के समान व्यक्ति के स्तर पर महेन्द्रनाथ के रूप में नाटककार ने पुरुष के भी अधूरेपन का यथार्थ चित्रण किया है। महेन्द्रनाथ के बारे में सावित्री जो कुछ कहती है. या अक्षरशः सत्य ही प्रतीत होता है-

"यूं तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता-फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है-पर असल में आदमी होने लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शरियत हो ?... मैंने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी-न-किसी का सहारा हूँढते पाया है। खात तौर से आप (जुनेजा) का। यह करना चाहिये या नहीं-जुनेजा से पूछ लूँ...।" और- फिर यह कहती है- "कि अपने-आप पर उसे कभी किसी चीज के लिए भरोसा नहीं रहा। जिन्दगी में हर चीज की कसौटी-जुनेजा।"

इस प्रकार नाटककार ने यह स्पष्ट किया है कि व्यक्ति के स्तर पर भी आज का व्यक्ति किन-किन्ही भी कारणों से भीतर खोखला होता जा रहा है। तभी तो वह अपना खोखलापन और अधूराषन दूसरों पर थोपकर स्वयं या तो उससे अलग हो जाना चाहता है या फिर तटस्थ अथवा भौचक्का। विशेष करके वैवाहिक जीवन में आज का यांत्रिक व्यक्ति इस तथ्य को भुला बैठता है कि वास्तव में नारी-पुरुष दो आधी-अधूरी सजीव इकाइयों ही हैं। उनका पारस्परिक सहयोग- सम्मिलन और सद्भाव ही उन दोनों को भी और उन दोनों के परिवार या परिवेश को भी पूर्णता प्रदान कर सकता है। पर अपने अधूरेपन के अहं का शिकार व्यक्ति उसे किसी जुनेजा, शिवजीत, अपबोहन या सिधानिया में खोजने का प्रयत्न करता है। इसी कारण यथार्थतः वह व्यक्ति के स्तर या भी असफलताओं की अविरल कहानी बनता जा रहा है। उस व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले मान्य व्यक्ति भी उससे प्रभावित होकर, कम-से-कम उसके आश्रित तो निश्चय ही, अत्यधिक बल्कि समग्रतः प्रभावित होकर अधूरेपन की कहानी बनते जा रहे हैं। बिन्नी, अशोक, किन्नी आदि सभी उसी से प्रभावित व्यक्ति के यथार्थ के प्रतीक है। सभी किसी-न-किसी पूरे व्यक्ति की तलाश में घुट-पिट कर जीते हैं, उससे भी बंचित होते जा रहे हैं। उनका जीवन एक अनवरत वितृष्णा, एक खीझ, एक विधाड़ और एक विद्रुप व्यंग्य बनता जा रहा है। व्यक्ति के स्तर पर राकेश ने इसी यथार्थ का उद्घाटन 'आधे-अधूरे' नाटक में किया है। बड़े सजीव एवं साहसिक रूप में सामाजिक यथार्थ-समग्र रूप में यह नाटक एक व्यापक सामाजिक यथार्थ का कुशल चितरा बनकर हमारे सामने आता है। आर्थिक वैषान्यों के इस युग में व्यक्ति और परिवार ही नही, पूरा मध्य और निम्न मध्य-वित्तीय व्यवस्थाओं वाला समाज भीतर ही भीतर खोखला होकर टूट जाना चाहता है, यह आज का एक चहुंमुखी कटु सत्य है। इस या इन परिस्थतियों वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन, बल्कि प्रति पग अपने इस खोखलेपन एवं टूटन का निश्चय ही अनुभव करता है। अनवरत बदलते मूल्यों के परिणामस्वरूप मध्य-स्थितियों वाला परिवार यदि रिश्वत आदि पा लेता है। (नैतिक विघटन यह भी है) तब तो वह उच्च वर्गों का अनुकरण करके टूटने लगता है। यदि उसे इस प्रकार के नैतिक विघटन पर भी आर्थिक संगठन करने वाले साधन नहीं मिल पाते, तब वह मध्य से निम्न मध्य-वित्तीय स्थितियों की ओर अग्रसर होता हुआ अपने-आप को अशक्त एवं अशान्त अनुभव करने लगता है। यह अशान्त अशक्तता अनेक प्रकार की हीनता- गुन्धियों को जन्म देती है और तब अपने ही भीतर का आक्रोश, अपने ही भीतर का का अधूरापन दूसरों पर फूटकर उन्हें आधे-अधूरे समझने के लिए विवश कर देता है। इन स्थितियों वाले पूरे

संमाज में ही आज यही कुछ हो रहा है-इसमें कोई संदेह नहीं। इन स्थितियों वाले प्रत्येक घर- परिवार में एक स्पष्ट तनाव है जो बाह्य विद्रोहात्मक विस्फोटों के रूप में अक्सर निर्जीव-सजीव सभी प्रकार की वस्तुओं-व्यक्तियों पर फूटता रहता है। महेन्द्रनाथ और उसका परिवार व्यापक समाज का अंश है, एक व्यापक पिण्ड का एक खण्ड है। 'महेन्द्रनाथ का काम जब तक अच्छा चालता रहा, पैसा आता रहा तो जोर-शोर से उड़ाया भी जाता रहा। अब घाटा पड़ गया तो वितृष्ण, विलोम और अधूरापन-न जाने क्या-क्या उभर कर सामने आकर जीवन को विद्रूप बनाने लगा। जैसा कि हम पहले भी कह आए हैं, मध्य वर्ग की यह गलत नियति ही बन चुकी है कि धन पास आ जाने पर वह ऊपर अर्थात् उच्च वर्गों की ओर उड़ना चाहता है। महेन्द्रनाथ ने भी सपरिवार कुछ ऐसा ही किया। पर उड़ान का परिणाम? उच्च वर्ग में पहुँचने के स्थान पर मध्यवर्गीय स्थितियों से भी हाथ धोना पड़ा। मध्य से निम्न मध्य वित्तीय स्थतियों में आक्रोश और विक्षोम का सपरिवार पिटारा बनकर रहना पड़ा। यह विक्षोम केवल पति-पत्नी को ही नहीं, बल्कि सारे परिवार को ही अन्दर-बाहर से विक्षुब्ध एवं विद्रोही बना देता है। इस ओढ़े हुए विद्रोह का यह रूप आज समाज में सर्वत्र देखा जा सकता है।

पूरे मध्य और निम्न मध्यवर्गीय विवाहित-अविवाहित नारियों का नौकरी करने के लिए विवश होना, घर और दफ्तर में तनावपूर्ण वातावरण में बस रूटीन बनकर जिये जाना, अपने बॉस या अन्य उच्च वर्गीय लोगों को अपने स्वार्थों के कारण साधने का प्रयत्न करना, अयाचित लोगों को भी अनेक प्रकार के आमन्त्रण और निमंत्रण, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की चिन्ता और दबाव, उनके लिए पौष्टिक खुराक की असफल खोज, उनकी रोटी-रोजगार की चिन्ता, जवान बेटे-बेटियों के विवाह की चिन्ता, आर्थिक सुविधाओं के अभाव में जवान लड़कियों का पर के मिलने-जुलने बालों के साथ ही पलायन, मां के प्रेमी का लड़की में भी प्रेम और विवाह, फिर इन परिस्थतियों की दॉपिने के असफल प्रयत्न, वास्तविकताओं का सामना न कर पाना आदि ऐसी बाते हैं जो पूर्णतया तो नहीं, हाँ अधिकांशतः मध्य और निम्न मध्य वर्गीय समाज में घर कर रही हैं। इन सबको नाटककार ने निश्चय की बड़ी कुशल एवं राजीव तुलिका से अपने समग्र यथार्य रूप में रूपाकार प्रदान किया है। इस समाज को आर्थिक वैषम्यों के कारण होने वाली दुर्दशा छोटी लड़की किन्नी के इन शब्दों में कितने मार्मिक रूप में व्यक्त हो जाती है- स्कूल में भूख लगे, तो कोई और में आने पर पटापटा इही नहीं होता गरम और फिर जाकर कवान करती है, तो यह कहती है तो मुड़ा महरा फिरता है सारा दिन, मैं भी फिरती रहा की।" भाई रोक)

इन कयों से छोटी लड़की किनीकी दिई प्रकट होती है, पर यह एक ऐसा है, जिसे हम लोग आँखें मून्द कर निगाले जा रहे है, इससे इनकार नहीं कर सकते। कारण सामाजिक असमर्थता ही है जो कि छोटे-बड़े सभी की माया बनाये जा रही। है। इस ओर इंगित करते हुए ही तो यही छोटी लड़की नाटक में एक स्थल पर बड़े ही व्यंग्यात्षक विवृष्णि हमें कहती है-"सबके सब मिट्टी के लीदे है, केवल मिट्टी के लीदें।" निश्चय अफ्नी हॉ विशेषताओं ने आज समाज के एक वर्ग को मिट्टी का लौदा बनाकर रख दिया है, नाटक में इवगीय या सामाजिक यथार्थ का बड़ा सजीव एवं मार्मिक उद्घाटन हुआ है। अनोवैज्ञानिक यथार्थ आज मनोविज्ञान ने मानव स्वभाव की अन्तरतम प्रकृतियों का उद्घाटन-विवेचन किया है। मनोविज्ञान यह मानता है कि परिस्थतियाँ और परिवेश मानव-स्वभाव की चहुंमुखी रूप से प्रभावित करते हैं। अतृप्तियाँ एवं असन्तोष अनेक प्रकार की कुण्ठाओं को कम देते हैं। वही असन्तोष आज अनेक विद्रूपों के रूप में चारों ओर स्पष्टतः दिखाई दे रहा है। आज का विकृत मन-मस्तिष्क वाला मानव समाज अपने लिए तो एक अभिशाप बनता ही जा रहा है, अन्यों के जीवन को भी निरन्तर अभिशप्त करने की ताक में है। यह स्वयं अतृप्त है और इसलिए वह अबूरा भी है, लेकिन वह अपनी ही अतृप्तियों एवं अधूरेपन को अन्यों पर आरोपित करके देखना चाहता है। अपनी ही परछाइयों वह दूसरों के व्यक्तित्व दर्पण में हॉक कर नाडक उकल उठता है। दूसरों से कटने या दूसरों को काटने के नाम पर वास्तव में वह अपने-आपको काट डालना चाहता है। यह वह यथार्थ है, है, जिसको मनोवैज्ञानिक स्तर पर मोहन राकेश ने एक परिवार के माध्यम से प्रस्तुत नाटक 'आधे-अधूरे' में अभिव्यक्त किया है।

मनोविज्ञान इस यथार्थ या वस्तु-सत्य को लेकर चलता है कि प्रत्यक्ष जगत का कार्य- णापार वास्तव में अन्तर्जगत के कार्य-व्यापारों का ही परिणाम है। अन्तर्मन बाह्य जगत के सभी कार्य-व्यापारों, उनके प्रभावों और परिणामों को अपने भीतर संजोता-सहेजता जाता है। उसका विपीट बाह्य उग्र किस्म के आचरणों के रूप में होता है। पारिवारिक स्तर पर मनोविज्ञान यह स्वीकार करता है कि असन्तुलित पति-पत्नी वाले परिवार में जन्म लेने एवं पलने वाले बच्चे पी उनके सीधे प्रभाव से अनेक प्रकार की विकृतियों से अनजाने ही आक्रान्त होकर असन्तुलित एवं असधारण हो जाया करते हैं। तब उनका अन्त बादा उस विषाक्त वातावरण से छुटकारा कने के लिए छटपटाता रहता है और यह छटपटाहत उसे और भी अधिक अस्वाभाविक बना देती हैं। सहने की भी एक सीमा होती है और उसके पार ?- विद्रोह। वह भी विदूष विद्रोह । फिर सावित्री हो या उसकी बड़ी बेटी बिन्नी, अशीक हो या छोटी किन्नी सभी उसी विद्रूप में अंति, विदुप परे कदम उठाते दिखाई देते हैं। लक्ष्य होता है किसी भी प्रकार के छुटकारा, तनावों ही थी और अन्य बन्धनों से भी। तब कोई बिन्नी अपनी ही माँ के किसी प्रेमी मनोज के साथ चल सकती है। तभी तो जुनेजा से वह (बिन्नी) कहती है-

"इतने साधारण ढंग से उड़ा देने की बात नहीं है, अंकल। मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार आता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ, जहाँआप शायद सत्र से नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। हैडी का चीखते हुए मया के कपड़े त एका देउनके पर पट्टी बाँध कर उन्हें बन्द कमरे में पीटना खोचते हुए मुसला कड पर ले जाकर (सिहर कर) में बानीहर दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने। कोई भी बाहर का आदमी उस सबको देखता जानता, तो यही करत कि क्यों नहीं बहुत पहले ही ये लोग?" ऐभी रिमारियों में परिवार के युवक और छोटे सदस्यों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से क्या प्रभा पड़ सकता है, महज ही अनुमान किया जा सकता है। 'आधे-अधूरे' नाटक में इसी सबके यशा मनोविज्ञान का अंकन एवं उसके प्रभाव का सजीव चित्रण हुआ है। बिन्नी अपनी मर्मों के प्रेश मनोज के गाथ भाग कर, उसकी पत्नी की तरह रहकर भी तो अपने आपको सन्तुलित नहीं का पाती। वह अपने घर का जो प्रभाव साथ ले जाती है, वह उसे वहाँ भी 'पूरा' नहीं रहने देता माँ-बाप के प्रभाव के कारण उसकी मनोवृतियाँ जिस रूप में असाधारण एवं असन्तुलित बन चुकी है, वे उसे वहाँ से भी पलायन की ही विवशता प्रदान करती है। साथ-साथ रहते हुए भा अजनबी बने रहना एक विषम, गहन तथा अत्यधिक कटुतापूर्ण मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। जिस पर-पीड़न के वातावरण में पाल-पुसकर बिन्नी मनोज के साथ जाती है, स्यात् उसी का शिकार उसे भी बनाकर वह अज्ञात तुष्टि प्राप्त करना चाहती है। ऐसा चाहना निश्चय ही एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। तभी तो वह कहती भी है-

"वह इस घर में ही अपने अन्दर कुछ ऐसी चीज लेकर गई है जो किसी भी स्थिति में उसे स्वाभाविक नहीं रहने देती।"

बिन्नी का अपना अधूरापन तो भर नहीं पाता, उस पर चेष्टा वह करती है अपनी माँ सावित्री, भाई अशोक और छोटी बहन किन्नी के सुधार का! कितनी विषम एवं अस्वाभाविक स्थिति है यह । मनोविज्ञान इसे दिग्भ्रम की स्थिति भी कहता है। इसके बाद लीजिए नवयुवक अशोक के मनोवैज्ञानिक यथार्थ को। वह घर में रहते हुए भी अपने-आप को अलग और उपेक्षित समझता है, हालांकि उसकी माँ सावित्री उसके भविष्य के लिए चिन्तित ही नहीं बल्कि सचेष्ट भी है। वह घर के भीतर 'एक खास चीज' का अनुभव करके भी वेगानगी के अहसास से भरा, बल्कि दुबा रहता है। इसी कारण जीवन आरम्भ करने से पहले ही वह एक विचित्र प्रकार की विरक्ति से- बल्कि विरक्ति के विद्रूप से आक्रान्त दिखाई देता है। सभी को अपनी खिल्लियों में उड़ा देना चाहता है। जो स्वयं करता है, सहन नहीं कर पाता कि घर के न्य लोग कुछ वैसा ही करें। उसके लिए मानव सम्बन्धों का मूल्य तस्वीरों से अधिक कुछ नहीं रह गया। उन्हें कहीं से भी काटकर कही भी सहेजा या चिपकाया जा सकता है। उसके लिए अभिनेत्रियों के चित्र, यौन सम्बन्धी अश्शील पुस्तकें और अटपटा रोमांस ही सब-कुछ बनकर रह गया है। मुंहफट, उद्दण्ड और अनेक प्रकार की आत्महीनताओं से संत्रस्त अशोक पुस्तक को पिता के एक प्रकार से फटकारते हुए कहता है- देखने योग्य नहीं मानता और माँ को

"आज तक जिस किसी को तुमने बुलाया है, उसकी किसी बड़ी चीज की वजह से।.....जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं, उसकी तनख्वाह को नाम को .....को बुलाया है।" इतना ही नहीं, वह अपनी माँ द्वारा किए गए हित को भी नहीं समझना चाहता। उसे भी

कार्टून बनाकर नकलें उतार कर उड़ा देना चाहता है। सिंघानिया के प्रति उसका व्यवहार प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसकी हँसी में भी एक विषाक्त कड़वाहट घुल गई है, जो दूसरों के मन-मस्तिष्क में की यह विष घोल देना चाहती है। इस प्रकार किन्नी का जीवन-चरित्र भी एक घोर मनोवैज्ञानिक गायार्य है। केवल तेरह वर्ष की आयु में ही उसकी प्रत्येक बात एवं व्यवहार में वितृष्ण-विद्रोह की झलक दिखाई देने लगी है। यह विद्रोह परिवार के प्रति तो है ही, अपने अस्तित्व के प्रति भी स्पष्ट है। स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्धों की चर्चा उनकी नकल को चेष्टा, जो सो उत्तर देना, मार खाकर और भी जिद्द करना और आत्म-केन्द्रित होकर रह जाना सभी कुछ एक ऐसे यथार्थ गराईने में दला हुआ है कि जिरस्का मनोविज्ञान पूर्ण समर्थन एवं वर्णन करता है। इस प्रकार नाटककार के अपनी पैनी दृष्टि से आज के मध्य एवं निम्न मध्य वित्तीय स्थितियों माले परिवार के माध्यम से इस प्रकार के समूचे समाज के अन्तर्मन को बड़ी गहराइयों के साथ हुने का, उसे उभार कर रख देने का सुधड़ एवं सफल प्रयास किया है। माँ का एक साथ सब पाने का प्रयत्न पिता का अन्यों पर आश्रित होना और इन्हीं कारणों से पारस्परिक चिख-चिख सारे परिवार के लिए, उसमे बाकर सारे जीवन और समाज के लिए एक अभिशाप बन जाती है या बन सकती है। 'आधे- अधूरे' में इस मनोवैज्ञानिक यथार्थ को पूर्ण वेग के साथ उभारा गया है।

इस प्रकार, उपरोक्त विवेच्चन से स्पष्ट है कि 'आधे-अधूरे' अपने समग्र परिवेश में एक यथार्थवादी नाटक है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक आदि सभी दृष्टियों से जब हम नाटक का अध्ययन मनन करते हैं, तो निश्चय ही इसमें उपरोक्त संदभों में आज के जीवन के बहुमुखी यथार्थ के दर्शन होते हैं। जिस परिवार को आज के समय यथार्थ को उभारने के लिए माध्यम बनाया गया है, उसका प्रत्येक सदस्य जब अपने आप में टूटा हुआ, बिखरा हुआ एवं अधूरा है, तो फिर एक पूरे परिवार को कल्पना ही कैसे की जा सकती है। यह एक कितना बड़ा युगीन सत्य है कि एक ही घर-परिवार में साथ-साथ रहने वाले व्यक्तियों ने तात्कालिक सुविधाओं को सापेक्षता में ही एक-दूसरे के साथ अपना रिश्ता-नाता जोड़ रखा है। फिर यह रिश्ता-नाता भी किस मूल्य पर ? स्पष्ट है कि अनेक प्रकार की वास्तविक एवं ओढ़ी हुई असुविधाओं के मूल्य पर। कोई भी तो किसी के सामने आने में, किसी से ठीक प्रकार से बातचीत करने में सुविधा नहीं मानतः। फिर भी वह एक (अ) परिवार है, उनमें पति-पत्नी, पिता, माता, बेटी, पुत्र, बहन, भाई के परम्परागत (तचाकथित!) रिश्ते-नाते भी हैं। इस कटु यथार्थ को, विषाक्त परिवेश को पीता हुआ आज का अव्यवस्थित एवं असाधारण बना मानव समाज जिए जा रहा है-निश्चय ही यह भी एक-व्यंग्यात्मक और विद्रूप ही सही-आज का एक भोगा जा रहा यथार्थ है।

2.5 आधे-अधूरे नाटक के नायक का चरित्र-चित्रण

"जुनेजा 'आधे-अधूरे' नाटक का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पात्र है। "इस कथन की समीक्षा कीजिए।

जुनेजा की चारित्रिक विशेषताओं

परम्परागत नायक का प्रभाव 'आधे-अधूरे' नाटक में किसी 'फल' की प्राप्ति नहीं होती है। केबल सावित्री एवं महेन्द्रनाथ की हृदस्यस्थ कुण्ठाओं का उद्घाटन होता है। अतएव भारतीय परम्परा के अनुसार इस नाटक में उपर्युक्त नायक का अभाव है, क्योंकि भारतीय

नाट्यशास्त्र के अनुसार जो अधिकार या फल को प्राप्त करे, वह नायक है। चारित्रिक मनोविश्लेषण की यह पद्धति पाश्चात्य नाटक परम्परा की देन है। इस दृष्टि से हम सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र का ही निर्णय कर सकते हैं, भारतीय परम्परा के नायक का निर्णय करना कठिन है।

जुनेजा ही वह पात्र है, जो महेन्द्रनाथ की कुंठा के परिप्रेक्ष्य में उसके वास्तविक स्वरूप की हमारे सामने रखता है। यही हमें यह बताता है कि महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी के प्रेम-पाश में ऐसा बंध गया है कि वह प्रेक्षक को असहाय एवं असमर्थ दिखाई देता है। परन्तु, बस्तुतः वह इतना बे-आसारा और असमर्थ नहीं है जितना की वह बाहर से दिखाई देता है। जुनेजा के शब्दो

ये, "वह कमजोर है, मगर इतना कमजोर नहीं है। तुमसे जुड़ा हुआ है, मगर इतना जुड़ा हुआ नहीं है, इतना थे-सहारा भी नहीं है जितना मह अपने को समझता है। यह ठीक से देख सके तो एक पूरी दुनिया है उसके आस-पास।"

जुनेजा सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र जुनेजा ही सावित्री के चरित्र की कलई खोलता है। ऊपर से ऐसा लगता था कि साबित्री अपने परिवार की समस्याओं से परेशान है। परिवार का कार्य भी सदस्य उनकी समस्याओं को न तो समझता है और न ही उसकी सहायता हो करता है। परन्तु जब वह जगमोहन के साथ चली जाती है, तब उसकी अनुस्थिति में जुनेजा आता है और उसके विषय में बातें शुरु कर देता है। इतने में ही साबित्री आती है, और वह उसकी कुण्ठाओं का ऐसा पर्दाफाश करता है कि पाठक एवं प्रेक्षक चकित रह जाता है। जुनेजा के कचन के साथ हम सनिले को एक भोगवादी नारी के रूप में देखने लगते हैं। वह केवल मांसल वासनी की भुखी है, परिजन का प्रेम उससे कोसों दूर है। सारांश यह है कि नाटक की गुत्थी को सुलझाने का काम जुनेजा करता है और इस दृष्टि से वह आधे-अधूरे नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र ठहरता है। यह भारतीय नाटक की शास्त्रीय परम्परा के अनुसार नाटक का नायक भले ही न हो, परन्तु नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र होने के नाते तो नाटक का नायक है ही और चूंकि नायक के अभाव में नाटक अधूरा ही है, इस कारण भी हम जुनेजा को ही नाटक का नायक मानते हैं।

जुनेजा का सामान्य परिचय-नाटककार ने जुनेजा को पुरुष चार के रूप में प्रस्तुत किया है और उसके व्यक्तित्व का निरूपण इन शब्दों में किया है- "पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट। चहरे पर बुजुर्ग होने का खासा एहसास ? साथ ही काइयाँपन।"

महेन्द्रनाथ का मित्र-जुनेजा महेन्द्रनाथ (पुरुष एक) का अन्तरंग मित्र है। इस बात का परिचय हमें नाटक की आरम्भिक अवस्था में ही मिल जाता है। साथ ही हमें यह भी विदित हो जाता है कि उसने महेन्द्रनाथ के प्रति उपकार भी किया है।

सावित्री सिंहानिया के स्वागत की तैयारी में व्यस्त है। उसी समय पुरुष एक थप-चप करके धूल उड़ाता है। पूछने पर वह कहता है कि "जुनेजा की फायल ढूँढ रहा था।" इसके विपरीत स्त्री समझती है कि जुनेजा ने ही उसके पति महेन्द्रनाथ को बर्बाद किया है, वही उसके साथ व्यापार में साझेदारी करके उसका सब कुछ खा गया है, यथा- "वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वहीं तुमने लगाया। एक ही फैक्टरी लगी, एक ही जगह जमा-खर्चा हुआ। फिर भी तकदीर ने उसका साथ दे दिया, तुम्हारा नहीं दिया।

जुनेजा नाटक के उत्तरार्द्ध में सावित्री अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहती है कि महेन्द्रनाथ के लिए मित्र, परामर्शदाता, सहायक आदि सभी कुछ है। यथा- "जब से मैंने उसे जाना, मैंने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है। खास तौर से आपका।.... यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फैसला भी कैसे किया उसने ? जुनेजा के हामी भरने से।"

और जुनेजा भी यह स्वीकार करता है कि वह महेन्द्रनाथ का जिगरी दोस्त है- "क्योंकि और कोई जानता भी तो नहीं उतना, जितना मैं जानता हूँ। मैं दोस्त हूँ उसका। उसे भरोसा रहा है मुझ पर।"

व्यवहार-कुशल-जुनेजा हमारे सामने रंगमंच पर उस समय प्रकट होता है, जब स्त्री सावित्री घर छोड़कर जगमोहन के साथ गई होती है।

वह घर में घुमने के साथ ही बाल-बच्चों को पुचकारना शुरू कर देता है। छोटी लड़की को देखते ही वह पूछता है, 'इसे क्या हुआ है? इस तरह क्यों बैठी है वहाँ ? इसके बाद वह उसके सिर पर हाथ फेर कर उसके प्रति वात्सल्य प्रकट करते हुए उसको चुमकारता है-उठो बेटे इस तरह अच्छा नहीं लगता। अब आप बड़े हो गये है।"

या धीरे-धीरे करके बच्चों के राथ हिल-मिल जाता है। उसको महेन्द्रनायका कुराल समाचार बताता है और उनसे सावित्री के बारे में यह प्रकट करा लेता है कि यह जगमोहन के साथ कहीं चली गई है।

महेन्द्रचाय के बारे में यह यह बताता है कि वह अपनी पत्नी सावित्री को अत्यधिक प्रेम करता है। इस कार से बड़ी लड़की चौकशी जाती है और अपने परिवार की सब बातें कर है।

इस प्रकार यह महेन्द्रनाथ के परिवार के एकदम निकट आ जाता है और वह यह कह देह है कि महेन्द्रनाथ और उसकी पत्नी सावित्री के मध्य एक समझौता एक दुष्कर कार्य है।

"म्यवित्री से उसके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में बाते करने के पूर्व वह बड़ी लड़की को बाहों से हटा देना चाहता है। वह बड़ी लड़की से कहता है, "तू बेटे, जरा उधर चली जा, बेड़ी दी।"

काइयाँ-जुनेजा एक तेज व्यक्ति है। यह मानो उड़ती चिड़िया को पहचानता है। वह लिफाफा देखकर ही खत का मजमून पड़ लेता है। बाहर न्यू इण्डिया की गाड़ी को देख कर ही या समक्ष जाता है कि कुछ दाल में काला है। सावित्री अपने पुराने प्रेमी जगमोहन के साथ गई होगी। फिर भी यह साबित्री से मिलने के बहाने उसके घर आता है। आखिर क्यों? केवल इसीलिए कि अपने अनुमान की पुष्टि कर ले। वह बड़ी लड़की से कहता है कि, "मेरे मन में कहीं थोड़ा-सा भरोसा बाकी था कि शायद अब भी कुछ हो सके मेरे बात करने से ही कुछ बात बन सके। पर आकर बाहर न्यू इण्डिया की गाड़ी खड़ी देखी तो मुझे लगा कि नहीं, कुछ नहीं हो सकता.....।'

जुनेजा सावित्री से अपने साथ उसकी प्रेम लीला के बारे में बात करना चाहता है। वह चाहता है कि बड़ी लड़की वहाँ से हट जाये। परन्तु सावित्री उसके मन्तव्य की तह तक नहीं पहुँच पाती है और लड़की को रोक लेती है।

बात-चीत के बढ़ने पर जुनेजा कहता है कि विवाद के पूर्व तुम मेरे प्रति आसक्त थीं। इस अवसर पर सावित्री चाहती है कि बड़ी लड़की यहाँ से हट जाये। अब, लोहे को गर्म देख का जुनेजा कह देता है कि, "जब आधी बात इसके सामने हुई है, तो बाकी आधी भी इसके सामने ही हो जानी चाहिए।"

अपनी धुन का पक्का-सावित्री एक से अधिक बार उससे कहती हैं कि आपको कहा है मत पड़िये बीच में। मुझे अपने घर में किससे किस तरह बरतना चाहिए, यह मैं औरों से बेहतर जानती हूँ।

परन्तु जुनेजा अपनी बात के लिए अवसर निकाल ही लेता है? उसका यह कथन तो पुराने बीमा एजेण्टों के धैर्य को भी मात करता हुआ दिखाई देता है, "ज्यादा बात अब नहीं करना चाहता। सिर्फ एक ही बात करना चाहता। सिर्फ एक ही बात करना चाहता हूँ तुमसे, और बस, सावित्री के 'कहिये ही वह उसके मर्म पर चोट करता है, यह कह कर कि "तुम किसी तरह छुटकारा नहीं दे सकती उस आदमी की।" बस इतना सुनते ही सावित्री की मशीन चालू हो जाती है और बातचीत का सिलसिला चल पड़ता है। जुनेजा अपनी बात पूरी तरह कह डालता है। वह जिस व्देश्य को लेकर आता है, उसको पूरा कर लेता है।

मनोवैज्ञानिक जुनेजा पहले स्त्री को अपनी पूरी बात कहने का अवसर प्रदान करता है। वह स्त्री को इतनी डील दे देता है कि वह अपने मन में दबे हुए सब गुबार निकाल देती है। जुनेजा को महेन्द्रनाथ की चर्बादी का कारण बताती है, परन्तु जुनेजा शांतिपूर्वक यही कहता है कि, "कहती रहो तुम, मैं बुरा नहीं मान रहा।"

सावित्री महेन्द्रनाथ और जुनेजा की दोस्ती को लक्ष्य करके खूब जली-कटी कहती है और कारती है कि बाईस साल पहले, यानी विवाह के समय महेन्द्रनाथ जैसा अपरिपक्व था जैस और काजी है किराया ही वह महेन्द्रनाथ की इस विवशता एवं असमार्थ्य के लिये जुनेजा को दोई उहराती है। बस इसी समय जुनेजा लुहार जैसी करारी चोट सावित्री पर करता है। विवाह पूर्व तो तुम महेन्द्रनाथ की इतनी ही बुराई करने आई थी, मेरे पासः क्योंकि तुम मुझसे शादी करन चाहती थी: यथा- "तुम बात करने के लिए ही खास आई थीं वहाँ, और मेरे कथे पर सिर देर तक होती रही थी तब तुमने कहा था कि...। उस दिन भी बिल्कुल इसी तरह तुमने महेन् को मेरे सामने उपेड़ा था ... पर उसे वैसा बनाने वालों में नाम तब दूसरों के थे। एक नाम व उसकी माँ का और दूसरा उसके पिता का....। पर जुनेजा का नाम कहीं नहीं था तब ऐसे लोग में। क्यो नहीं था कह दूँ।" इत्यादि !

स्पष्टवादी- दी-जुनेजा सावित्री के मुहँ पर और उसकी बड़ी लड़की बिन्नी के सामने हो उसकी दुष्चरित्रता का भण्डाफोड़ कर देता है। वह कह देता है कि सावित्री क्रमशः जुनेजा, शिवजर्जर जगमोहन तथा मनोज के प्रति आकर्षित हुई है। कारण स्पष्ट है, "यह हर दूसरे चौथे साल अपने को उससे झटक लेने की कोशिश करती हुई, इधर-उधर नजर दौड़ाती हुई कि अब कोई जरिय मिल जाय जिससे तुम अपने को उससे अलग कर सको। तुमने कहा है तब तुम उसकी जुनेज की, इज्जत करती थी। पर आज उसके बारे में जो सोचती हो, वह भी अभी बता चुकी हो।" मनोविश्लेषण का पंडित-इस नाटक में मुख्य पात्रों- महेन्द्र और सावित्री की चारित्रित्र

विशेषताओं का उद्घाटन करने के लिए मनोविश्लेषण की पद्धति अपनाई गई हैं। यह काम जुनेज ही करता है। सावित्री के व्यक्तित्व में फ्रायड की दमित काम-वासनाएँ तथा डालर की प्रतिष्ठा की भावना की गुत्थी है। महेन्द्र का व्यक्तित्व युग की हीनभावना द्वारा ग्रस्त है। जुनेजा फ्रायड के काम सिद्धान्त की कसौटी पर सावित्री के चरित्र को कसता है और बीच-बीच में आडला के सिद्धान्त का पुट देकर उसकी गुत्थियों को एकदम सुलझा देता है। जुनेजा प्रायड के काम- सिद्धान्त के आधार पर सावित्री की दमित काम-वासना को उभार कर इस प्रकार रखता है, 'तुम्हों लिए जीने का मतलब रहा है कि कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना ....तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया। जिसके मारे कभी तुम घर का दामन यामती रही हो, कभी बाहर का।... मनोज का बड़ा नाम था। "पर तुम -एकदम बौरा गई ई जब तुमने पाया कि वह इतने नाम वाला आदमी तुम्हारी लड़क को साथ लेकर राते-रात इस घर से...." आडलर के सिद्धान्त से परिचित जुनेजा कहता है कि इसलिए जिस किसी के साथ भी जिंदगी शुरू करतीं तुम, हमेशा इतनी ही खाली, इक्लं ही बेचैन रहती," क्योंकि तुम्हारे लिए जिंदगी का मतलब है एक साथ सब कुछ पार लेना। इसका परिणाम यह हुआ है कि "जिस मुट्ठी में तुम कितना कुछ एक साल में भर लेना चाहती थी, उस्ले जो था, वह भी धीरे-धीरे बाहर फिसलता गया है।"

अन्त में यह सावित्री का मासल स्वार्थी स्वरूप एकदम उघाड़ कर रख देता है- "ऐस किया, इसलिए नहीं किया तुमने कि जिंदगी में और कुछ हासिल न हो तो कम-से-कम यह नामुण मोहरा तो हाथ में बना ही रहे।"

पुरुष एक महेन्द्रनाथ के अस्वाभाविक व्यवहार एवं पाँच व्यवहार को के हीनभाव को पाता है। वह स्पष्ट कह देता है कि सावित्रि ने महेन्द्र के मन में हीनता की ऐस भूल में जुनेजा पशु गहरी कलम लगा दी है कि वह अपने आपको एकदम बे सहारा व्यक्ति समझने लगता है, यभा आज महेन्द्र एक कुड़ने वाला आदमी है। पर एक वक्त था जब वह सचमुच हँसता था। यह तभी था जब कोई उस पर साबित करने वाला नहीं था कि जओ-जो नहीं है, बही-बहीं उ होना चाहिए और जो वह है....."

अपने ही मनीविश्लेषण परम तान के आधार पर यह सहज ही अनुमान लग क्या करेगा। जुनेजा स्पट कर देता है कि उसकी जगह हो। तुम मन में एक घुटन लिये घर में दाखिल हुई कर दिया। जाते हुए सामने थी एक पूरी जिंदगी पर लौटने तक का और सावित्री को लेकर होता, तो मैंने भी तुमसे पही और आते ही तुमने बच्चों को कुल हासिल? उलझे हाथों निश्कर्ष जुनेजा महेन्द्र और सावित्री दोनों का उपकारक बन जाता है। महेन्द्र कहता है कि जुनेशा सावित्री के साथ उसका समझौता करा दे और साबित्री कहती है कि वह उसको देना बना दे कि वह आँख खोल कर देख सके।

उपर्युक्त विवेचन के फलस्वरूप हम सहज हो कह सकते हैं कि जुनेजा इस नाटक का धिक महत्वपूर्ण पात्र है। उसे नाटक का नायक कहने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

स्त्री (साबित्री) का चरित्र चित्रण

- सामान्य परिचय-सावित्री को नाटकाकर 'स्त्री' लिखता है। उसकी अवस्था चालीस को छूती हुई है। चेहरे पर यौवन की चमक और "यह फिर भी शेष।"

बा महेन्द्रनाथ की पत्नी है तथा वह दो पुत्रियों एवं एक पुत्र की माँ है। बड़ी लड़की का नाम वीणा या बिन्नी है, जिसकी अवस्था लगभग 20 वर्ष है। छोटी लड़की की अवस्था 12-13 वर्ष है। नाम है किन्नी। लड़के का नाम अशोक है। वह उसकी सबसे बड़ी सन्तान है। अवस्था है 21 वर्ष के सावित्री कहीं नौकरी करती है। वह एक प्रकार से भोगवादी कामिनी नारी है। नाटककार ने उसके विषय में अपने मन्तव्य को अत्यन्त संक्षेप में किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत कर दिया है, 'उम्र चालीस की' के साथ यह लिखना- 'चाहे फिर भी शेष' बहुत कुछ अर्थ रखता है। जिस अवस्था में, विशेषकर तीन-तीन बच्चों की मां बन जाने के बाद नारी की प्रायः समस्त भोगेच्छाएं शान्त हो जानी चाहिए, इस अवस्था में सावित्री नये-नये प्रेमियों की और देखती है। फिर भी शब्द का प्रयोग करके नाटककार ने इसी अस्वाभाविक की ओर संकेत किया है। नाटककार के मन्तव्य का विश्लेषण का नाटक के अन्त में जुनेजा प्रस्तुत करता है। यथा- 'असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिदगी में, तो साल-दो साल बद तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और विलन कुछ एक साथ ओढ़ कर जीना। वह उतना ही कभी तुम्हें किसी जगह न मिल पाता। सावित्री या. में आतंक का वातावरण बनाये रखती है। उदाहरण के लिए वह छोटी लड़की के चपत जड़ती है और उससे कहती है कि, "इस वक्त चुपचाप चली जा उस कमरे में। मुहं में एक लफ्ज भी श्रऔर कहा, तो खैर नहीं तेरी।" नारीविहीर होती है। यह कह नहीं है। जैसे ही उसके पति महेन्द्र घर में पुर है. यह उन्हें हार लगाती है, "कहाँ चले गये तुम?" और इसके बाद पर की चीनी के बेरी रखरखाव की करने वह महेन्द्रनाथकोटती है।" जरी यहाँ वहाँ बिखरी मिलती है।

इसी सन्दर्भ में वह अपने पति से यह भी कह देती है कि "तुम रहते हो? और न कोई और फिर अत्यन्त अशिष्टतापूर्वक कहती है कि यहाँ से जान मुझे झाड़ लेने दो जरा। लड़के की लक्ष्य करके वह पति से यहाँ तक कह देती है कि जिस तरह तुमने खराब की है अपनी जिदगी, उसी तरह यह भी।

सावित्री इरी प्रकार आदान्त पति से बोलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह छायादावित पानी न होकर काटी भरी गुलाब की तरह पति को काटने वाली परकीया है। वह बड़े ही सहज भाव से जुनेजा से कह देती है कि "आप जाई व कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रख रखिये। और मुझे भी.. मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिल्कुल-बिल्कुल जरूरत नहीं है।"

अशिष्ट-सावित्री जरूरत से ज्यादा जवान की तेज है। उसको क्रोष भी बहुत आता है। "कामातु सजायते क्रोधः" वाली बात है। उसकी भोगेच्छा की पूर्ति होती नहीं है और वह सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से लड़ती-झगड़ती दिखाई देती है। इस आवेश और क्रोध में उसकी अपने विवेक पर नियंत्रण नहीं रहता है और उसका व्यवहार अशिष्ट हो जाता है। जुनेजा से बात करते हुये वह यह बार-बार जताती है कि वह अपने घर वालों के बारे में सब कुछ जानती है और इस कारण इनके बारे में कुछ भी नहीं सुनना बाहती है। वह बारबार यही कहती है कि "उसे अपने घर में किससे किस तरह बरतना चाहिये यह मैं औरों से बहेतर जानती हूँ।"

इतना ही नहीं वह एक से अधिक बार जुनेजा के प्रति निःसंकोच भाव से इस प्रकार की पदावली कहती है कि वह उसके घर से चला जाये, यया "बेहतर यही है कि अब आप यहाँ से चले जाएँ, क्योंकि...!" तथा "आप जाइये और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रखिए।"

कुलटा नारी-जैसा कि हम सामान्य परिचय के अन्तर्गत उल्लेख कर चुके है, सावित्री की कामेच्छा अतृप्त है, वह सम्भवतः इन्द्रिय-भोग से कभी भी तृप्त नहीं हो सकती है। काम- कुण्ठा के कारण भी वह इतनी क्रोची, चंचल, कठोर एवं अकेलेपन का अनुभव करने वाली है। जुनेजा उसके चरित्र का विश्लेषण करके उसको सित करने वाली कुण्ठा के स्वरूप को उद्‌घाटित करता है। वह जुनेजा शिवाजीत और जगमोहन की अपना प्रेम दे चुकी है। अपनी बड़ी लड़की के पति भरोज पर भी यह किसी समय नजर डाल चुकी है। उसका कथन स्पष्ट है कि, "जुनेजा के बाद जिससे कुछ दिन चकाची रहीं तुम, वह या शिवजीत। एक बड़ी डिग्री, बड़े-बड़े शब्द और पूरी दुनिया घूमने का अनुभव।"

उसके बाद सामने आया जगमोहन। उस मनोज का भी बड़ा नाम था, "उस नाम की डोरी पकड़ कर ही कहीं पहुंच सकने की कोशिश में तुम एकदम बौरा गई जब तुमने पाया कि वह हटने नाम वाला आदमी ही तुम्हारी लड़की को लेकर रातों-रात इस घर से। "हम तो यही कहेंगे कि 'ऋणकर्ता पिता शत्रुः माता च व्यभिचारिणी," बाली लोकोक्ति के अनुसार सावित्री ने ही अपने लड़के-लड़को को कुपथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान की। बड़ी लड़को मनोज के साथ भाग जाती है तथा अशोक उद्योग सेन्टर वाली लड़की के पीछे चलता है और छोटी बहिन की चीजे चुरा-बुरा कर ले जाता है और उसे दे आता है।

जुनेजा को पाने में निराश होने वाली सावित्री सचमुच एक विचित्र नारी बन जाती है। माता का स्वरूप तो मानो सदा-सर्वधा के लिए लुप्त हो जाता है। उसकी वास्तविक स्थिति यह है कि तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया है जिसके मारे कभी तुम घर का दामन थामती रही हो, कभी बाहर का और वह डर एक दहशत में बदल गया। जिस दिन तुम्हें एक बहुत बड़ा हटका पड़ा।" और यह अन्तिम व्यक्ति है बिन्नी का प्रेमी मनोज।

असफल प्रेमिका-सावित्री सुन्दरी है और उसके मन में काम-भावना की गर्मी है। वह कई पुरुषो से प्रेम करती है, परन्तु अपना सर्वस्व समर्पण करके वह किसी एक ही होकर नहीं रह सकती है। कारण यह कि वह जिसके पास भी जाती है, उससे तत्काल सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहती है। प्रेम की भाषा में देना कुछ भी नहीं चाहती है। इसी को लक्ष्य करके जुनेजा कहता है कि तुम जिससे भी शादी करतीं, उसी के बारे में सोचती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी की है। सावित्री के जीवन में वस्तुतः भोग प्रधान है, प्रेम गौण है। परिणामतः उसको हृदय से कोई नहीं अपना सका है और सावित्री की हालत धोबी के कुत्ते जैसी हो गई है। वह न घर की रहीं है और न घाट पर ही कोई उससे अपने पास बैठाने को तैय्यार नहीं है। जुनेजा के शब्दों ३. बिनी के मनोज के साथ चले जाने के बाद तुमने एक अन्धाधुन्ध कोशिश की-कभी महेन्द्र को हो और झकझोरने की, कभी अशोक को ही चाबुक लगाने की और कभी इन दोनों में धीरज खोकर कोई और ही रास्ता, कोई और हो चारा ढूंढ सकने की। ऐसे में पता चला जगमोहन यहाँ लौट आया है। आगे से रास्ता बन्द पाकर तुमने फिर पीछे की तरफ देखना चाहा। आज अभी बाहर गयी थीं उसके साथ।"

इसके आगे जुनेजा अपने काम विज्ञान के आधार पर जगमोहन और सावित्री के मध्य सम्भाव्य व्यवहार की कल्पना करता है और स्पष्ट कह देता है कि जगमोहन ने सावित्री को ठुकरा दिया है-तुमने कहा तुम बहुत बहुत दुःखी हो आज.....तुमने कहा तुम जैसे भी हो सब इस घर से छुटकारा पा लेना चाहती हो। उसने कहा कितना अच्छा होता अगर इस नतीजे पर तुम कुछ साल पहले पहुँच सैकी होती..... आखिर उसने कहा कि तुम्हें देर हो रही है, अब लौट चलना चाहिये। हुम चुपचाप उठकर उसके साथ गाड़ी में आ बैठी। ...तुम मन में घुटन लिये घर में दाखिल हुई और आते ही तुमने बच्ची को पीट दिया। जाते हुए सामने थी एक पूरी जिंदगी। पर लौटने तक का कुल हासिल ? और फिर जुनेजा का यह अन्तिम कथन तो स्पष्ट कर देता है कि सावित्री जीवन में जो चाहती थी, वह उसे प्राप्त नहीं हो सका है किसी का भाव प्राप्त नहीं हो सका है, फिर भी तुझे लगता रहा कि तुम चुनाव कर सकती हो।....क्या सचमुच कहीं कोई तुम्हें ? चुनाव नजर आया

इसका कुल नतीजा यह निकलता है कि वह अपने पति के प्रति भी अनुरक्त नहीं रह पाती है। वह जुनेजा से कहती है कि "इस घर में आना और रहना सचमुच हित में नहीं है उसके और मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिल्कुल जरूरत नहीं है।" और ऐसा क्यों न हो? सावित्री गौद्र को केवल अन्तिम उपाय के रूप में ही। पास रखना चाहती थी, और कुछ हासिल नहो ती कम से कम यह नामुराद मौहरा तो हाथ में बना रहे ? असफल गृहणी-सावित्री के जीवन में भीग एवं वासना का प्रधान्य है। अतएव उसमें एक गृहिणी के त्याग एवं सेवा भाव का सर्वगा, भाव होना स्वाभाविक ही है। उसको न घर अच्छा लगता है और न घर का कोई व्यक्ति । वह केवल प्रयोजन-सिद्धि जानती है। इस कारण वर परिजनों के बारे में भी यही सोचती है कि वे सबके सब उसको केवल प्रयोजन-सिद्धि का सामन बनाए। हुए है। । वह घर का काम-काज करना मुसीबत समझती है। अपने परिवार की सेवा कर में, अपने घर का काम करने में उसको किसी प्रकार के सुख संतोष का अनुभव नहीं होता है। यह बात पीछे इस प्रकार का कथन करती है कि, "ये लोग हैं जिसके लिए मैं जानकारी करती हूँ रात-दिन।' तथा, "यहाँ पर सब लोग समझते क्या है मुझे ? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस-पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।"

वह अपने लड़के और अपनी लड़की से हर घड़ी किच-किच करती है, उन्हें इस बात का ताना देती है कि उनके लिए करते-करते वह मरी जा रही है। परिणाम यह होता है कि लड़का उसको जवाब दे देता है। कोई और निभाने वाला नहीं है। यह बात बहुत बार कहीं जा चुकी है और घर में-- "मैं पूछता हूँ क्यों करती हैं? किसके लिए करती है?

इसके बाद सावित्री के सामने सिवाय घर छोड़कर चले जाने के और कोई चारा ही शेष नहीं रह जाता है।

"आज से मैं सिर्फ अपनी जिन्दगी को देखूँगी-तुम लोग अपनी-अपनी जिन्दगी को खुःदेख लेना।"

विडम्बना यह है कि लड़का-लड़की कोई भी सावित्री के इस कथन के प्रति कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते हैं।

वह निहायत बेशर्मी के साथ अपनी लड़की से ही कह देती है कि वह जगमोहन के साथ चली जाएगी। 'जगमोहन को मैंने आज इसीलिए फोन किया था।' वह बच्चों की उपस्थिति की परवाह किए बिना जगमोहन से स्पष्ट कह देती है कि मैं वहाँ पहुँच गई हूँ जहाँ पहुँचने से डरती

हूँ जिदगी पर।"....मैं सच कह रही हूँ। आज अगर तुम मुझसे कहो कि....।" निष्कर्ष-सावित्री हमारे सामने एक ऐसी नारी के रूप में आती है जो जीवन का लक्ष्य

शरीर सुख मानती है, मातृत्व के निर्वाह को जो उपेक्षा की दृष्टि से देखती है। वह एक ऐसी आधुनिक नारी है जो सदैव युवती बनी रहने का स्वप्न देखती है और बिना कुछ किए दिए सब कुछ पा 'लेना चाहती है। ऐसी नारी कुण्ठाग्रस्त होकर क्रोध और क्लेष का जीवन व्यतीत करती है। वह अपने आपको पतित करती है और अपने परिवार के भविष्य को नष्ट कर देती है।

महेन्द्रनाथ जैसे पति को भी वह अस्वीकार करके 'जिमि स्वतंत्र भये बिगरे नारी' लोकोक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

'आधे-अधूरे' नाटक के स्त्री-पुरुष पात्रों के चरित्र का विश्लेषण

पात्र मध्यवर्ग के प्रतीक 'आधे-अधूरे' नाटक का कथानक भारतीय मध्यवगोंय परिवार से सम्बन्धित है। इसके समस्त पात्र भी इसी वर्ग के हैं। अधिकांश सामान्य प्रकार के है इसने एक उच्च पदाधिकारी है और एक शक्ति है। इस प्रकार इस नाटक वाहमा देश के मध्यवर्ग का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस नाटक में कुल पात्रों की संख्या 12 है-7 पुरुष है तथा 5 नारी पात्र है। इनमें दो पुरुष पात्र शिवजीत और मनोज दो नारी पात्र रेखा तथा उद्योग सेन्टर वाली लड़की की केवल होश के सम्मुख रंगमंच पर आते है। रेखा नाम की लड़की की 12 वर्ष के आस-पास होगी यह छोटी लड़की किन्नी की सहेली है। उसके साथ गन्दी बो करने के कारण किन्नी अपने भाई अशोक को कोपभाजन बनाती है और मार खाती है। कम. रेखा का नाम केबार इतनी ही देर के लिये केवल एक बार आता है।

इसी सन्दर्भ में उद्योग-सेन्टर वाली लड़की की चर्चा सुनाई देती है। उसका नाम नहीं केवल उद्योग सेण्टर वाली लड़की कह कर छोटी लड़की उसका नाम लेती है। इस लड़की के पोते अशोक (लड़का) दीवाना है और अशोक उसे कभी चुड़ियों, कभी कुछ दे आता है। इस बेद को छोटी लड़की जानती है यह जब इस भेद को खोलती है, तो अशोक चिढ़ जाता है और किन्नी को मारने के लिए दौड़ता है।

पुरुष पात्र शिवजीत तथा मनोज ऐसे पात्र है जो रंगमंच पर प्रकट नहीं होते हैं। केवल इनके नाम यहाँ सुनाई देते हैं। शिवजीत की चर्चा जुनेजा करता है। यह स्त्री सावित्री के चरित्र को बाँधया उड़ते हुए कहता है कि सावित्र की कामपिपासा-सावित्री को कई पुरुषों के निकट हो गई है। इन्हीं में शिवजीत भी एक पुरुष है। जुनेजा कहता है कि जरा सा भी, किसी प्रकार का वैभव देखते ही सावित्री की लार टपकने लगती है। शिवजीत एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है। इसके पास बड़ी लम्बी-चौड़ी डिग्रियों है और वह अनेक विदेशों की सैर कर आया है। विद्या और विदेश के अनुभव की चकाचौंध से भरा शिवजीत केवल नाममात्र को इस नाटक का एक मुल्य पात्र है, परन्तु वह मध्यवर्ग की एक श्रेणी विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।

मनोज एक युवक है। वह बड़ी लड़की बिन्नी का पति है। नाटक में उसकी चर्चा दो का होती है। एक तो उस समय जब बड़ी लड़की बिन्नी प्रथम बार रंगमंच पर आती है। उस समय इसको यह विदित होता है कि वह बिन्नी का पति है। दूसरी बार उसका नाम नाटक के असा की और आता है। जुनेजा बताता है कि एक समय स्त्री सावित्री भी इस युवक मनोज के जी भी आकर्षित हुई थी।

रंगमंच पर आने वाले पुरुष पात्रों की संख्या 5 है। इनमें चोर तो हैं-पुरुष एक, पुरुष दो पुरुष तीन तथा चार। एक है लड़का अशोक।

पुरुष एक का नाम है महेन्द्रनाथ-वह अपनी पत्नी के सहारे जीवित रहने वाला व्यक्ति है। वा एक प्रकार से अपने जीवन में असफल व्यक्ति है। उसका परिचय देते हुए नाटककार में लिखा है कि जिंदगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहत लिए है, अवस्था 50 वर्ष के ऊपर होगी। पुरुष दो हैं सिंघानिया-यह एक बड़े अफसर हैं। इन्हें 5 हजार रुपये प्रति मास वेतन मिलता है। यह किसी बात पर टिकते नहीं हैं। अपने व्यापक परिचय और विदेश-अनुभव की

माते हैं। इनके विषय में नाटककार ने लिखा है कि "अपने आपसे सन्तुष्ट, फिर भी आशंकित।" पुरुष तीन हैं जगमोहन-यह किसी समय में स्त्री सावित्री के प्रेमी रहे थे। अब वह उसको, मिलने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका परिचय नाटककार ने इस प्रकार दिया है, "अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव-भाव में।"

पुरुष बार का नाम है जुनेजा वह पुरुष एक महेन्द्रनाथ के मित्र है। नाटककार के शब्दों इस शब्द चित्र यह है, "चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा ऐहसास। साथ काइयाँपन।"है।वही है।

ही वह एक नारी है। नाटककार जो हुती। पेड़ों पर चौवन की चमक और वह फिर भी राष देते हुए लिखा है बड़ी लड़की का नाम बीणा या बिन्नी है वह महेन्द्रनाथ और सावित्री को पूरा यह मज की प्रेमिका पानी है। वह उसी के साथ भाग गई थी। शीघ्र ही उससे असन्तुष्ट बाधा पर लौटाई है। नाटककार के शब्दों में उसका सामान्य परिचय इस प्रकार है बीस के ऊपर नहीं। भाव में पफर्षिका अवसाद और उतावलापन कभ उम्र से बढ़कर बड़प्पन। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।

छोटी लड़की का नाम किन्नी है-उसकी उम्र बारह और तेरह वर्ष के बीच है। नाटककार शब्दों में, "भाव, स्वर, चालहर चीज में विद्र के इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटक में हमारे समाज के मध्य वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व किया गया है। इसमें शापः प्रत्येक अवस्था और अन्य श्रेणी के पात्रों के दर्शन हो जाते हैं।

चरित्र-बित्रण के मूल स्बर-कुष्ठा और बिद्रोह इस नाटक के बयरक पात्र कृष्टा अस्त है और युवा पीढ़ी के पात्र विद्रपूरित है।पुर एक महेन्द्रनाथ हीनत्य भावना द्वारा प्रांग है। वह अपने आपको एक असफल, पराजित एवं बेसहा व्यक्ति अनुभव करता है। उसक पत्नी समझती है कि वह मित्री का मुखापेक्षी है और जुनेजा का कहना है कि महेन्द्रनाथ अपन पत्नी को अपना प्राण समझता है।

स्त्री सावित्री नाटक की प्रमुख पात्र है। यह काम कुण्ठा द्वारा ग्रस्त है। वह जीवन में मब कुछ चाहती है। इसके लिए वह जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन तथा मनोज तक की ओर देख है। वह अपने पति से बात पीछे झगड़ती है और अपने बच्चों को झिड़कती रहती है।

वह जगमोहन के साथ भाग जाने का उपक्रम भी कर डालती है, परन्तु उसकी सफलता नहीं प्राप्त होती है। जुनेजा इसकी कुण्ठा का विश्लेषण करता है और अन्त में कह देता है कि तुम मन में एक घुटन लिए घर में दाखिल हुई और आते ही तुमने बच्चों को पीट दिया। घर लौटने तक क्या कुछ हारिससन?"

लड़का अशोक विद्रोही है। वह भी उद्योग सेण्टर वाली लड़की के पीछे दीवाना है। परन्तु इसके मन में अभी किसी प्रकार की कुण्ठा नहीं बन पाई है। वह तो अपने माता-पिता को रोज- रोज की विखचिख से तंग आ गया है और चाहता है कि किसी तरह झंझट समाप्त हो-माँ को यदि कहीं जाना है, तो वह चली जाय।

बड़ी लड़की किन्नी मनोज के साथ प्रेम करती है और उसके साथ भाग भी जाता है। परन सापिस आ जाती है, क्योंकि "वजह सिर्फ वह हवा है, जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

इस पर उसको जुनेजा के द्वारा यह भी विदित होता है कि उसकी माँ मनोज के ऊपर डाल चुकी है। बस, वह हाथों में चेहरा छिपाकर दड़ पड़ती है। वह नहीं जानती कि उसका भविष्ण क्या होगा।

छोड़ी लड़की किरते पब्लिक स्कूल में पढ़ती है, परन्तु उसके पास उपयुक्त कपड़े यां है और न उसके लिए मन चाहे ढंग में लेखन सामग्री की ही व्यवस्था होती है। इस पर वह विद्राह करती है। घर में आने को उसका धन नहीं करता है और जब जाती हैती मां, वही लकड़ी

तथा कहानी में कोई न कोई उसे डांटता मारता है। उसको घर की कोई बात नहीं सुहाती है। इको अपने माता पिता से अपेक्षित प्यार भी नहीं मिलता है। यही कारण है कि हमें उसकी हा थात में और हर चीज में विद्रोह की झलक दिखाई देती है।

पुरुष दो सिधानिया यद्यपि पाँच हजार रुपए मासिक वेतन पाता है और उच्च पद पर है, शन्तु फिर भी कुछ बहका-बहका सा रहता है। वह बात पीछे आशंकित दिखाई देता है तथा आशा सा मौका पाकर अपनी शेखी बघारने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह कर्मचारियों की हडतालों से परेशान है। इस पर सावित्री जैसे मातहत उससे प्रत्येक क्षण अपने स्वार्थ की ही बात करना चाहते हैं।

चरित्र-चित्रण का आधार मनोवैज्ञानिक नाटक का प्रत्येक पात्र किसी न किसी उलझन थे दिखाई देता है। प्रत्येक पात्र अपने अन्तर्द्वन्द्र को व्यक्त करता है तथा अपनी गतिविधि को एक सुनिश्चित रूप प्रदान करने में असमर्थ रहता है।

पुरुष एक महेन्द्रनाथ तथा स्त्री सावित्री नाटक के प्रमुख पात्र है। इन दोनों के व्यक्तित्व कुण्ठाग्रस्त हैं और उसी के कारण इनके आचरण एवं व्यवहार अस्वाभाविक हो जाते हैं। जुनेजा आकर उनके चरित्र का भाष्य प्रस्तुत करता है और हमें विदित होता है कि इनके ये अस्वाभाविक व्यवहार इनके जीवन के आवश्यक अंग हैं। जुनेजा के इस एक कथन में महेन्द्रनाथ और सावित्री होनों के चरित्र का विश्लेषण ग्पष्ट कर दिया गया है। इसलिए कि आज वह अपने को बिल्कुल बेसहारा समझता है। इसके मन मे यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी तुमन उसके लिए जिदगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाच नहीं है और ऐसा क्या इसीलिए नहीं किया। तुमने कि जिदगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम से कम यह नामुराद मोहरा तो हाच में बना ही रहे।

और अन्त में बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से जुनेजा स्त्री से यह कहला लेता है कि वह महेन्द्रनाथ और एक भिन्न व्यक्ति के रूप में देखना चाहती थी और इस तरह उसका तो उपकार करेंगे ही आए, मेरा भी इससे बड़ा उपकार जिंदगी में नहीं कर सकेंगे।

इस नाटक के चरित्र-चित्रण की पद्धति की विशेषता यह है कि प्रत्येक पात्र अन्य पात्रों के बारे में बात करके उसके चरित्र का उद्घाटन करता है अपने स्वगत कथनों द्वारा अपने चरित्र का उद्घाटन करता है तथा अपने व्यवहार को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक या प्रेक्षक उसके चरित्र के विषय में सहज ही निष्कर्ष निकाल सकें।

उपसंहार-नाटक के पात्रों की संख्या सीमित है। प्रत्येक पात्र अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। वह मध्य वर्ग के एक अंग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण सर्वथा मनोवैज्ञानिक शैली पर किया गया है। इससे दो लाभ हैं- पठक अथवा प्रेक्षक पात्र के साथ रहते हुए न तो अजनबीपन का अनुभव करता है और न कभी द्रव की स्थिति में ही पड़ने पाता है।

समग्र रूप से नाटक के पात्र यह उद्घाटित करने में समर्थ है कि हमारे यह मध्यमवर्गीय परिवार किस प्रकार कृत्रिम, कुण्ठाग्रस्त एवं अशांतिमय जीवन व्यतीत करते हैं। हमारे बच्चे इसलिए विद्रोही हो गये हैं क्योंकि उन्हें माता-पिता में न तो अपने आदशों की शर्ते मिलती है और न ही के उनमें अपेक्षित प्यार ही प्राप्त कर पाते हैं।

सारांश, यह है कि चरित्र-चित्रण की दृष्टि से आधे-अधूरे नाटक एक सफल नाटक है।

आधे-अधूरे में पुरुष पात्र की परिकल्पना

उत्तर- सामान्य परिचय पुरुष एक का नाम महेन्द्र नाथ है। उसकी पत्नी का नाम सावित्रं है। उनके तीन संतान है-एक लड़का जिसका नाम अशोक है और जिसको अवस्था 21 वर्ष के आस-पास है। दो पुत्रियों है। बड़ी लड़की का नाम वीणा या बिन्नी है और उसकी अवस्था 19- 20 वर्ष के लगभग है। दूसरी पुत्री का नाम किन्नी है और उसकी अवस्था 12-13 वर्ष है।

महेन्द्रनाथ के परिवार की स्थिति को लेकर इस नाटक आधे-अधूरे की रचना की गई है। यह परिवार एक सामान्य मध्यवर्गीय परिवार है। परिवार की समस्त सदस्य किसी न किसी प्रकार की कुण्ठा द्वारा प्रस्त है। परिवार अबाध क्लेश से व्याप्त रहता है। प्रत्येक सदस्य की अन्य सदस्यों से सदैव कोई न कोई शिकायत बनी ही रहती है।

महेन्द्रनाथ की अवस्था 50 वर्ष के आस-पास होनी चाहिए। वह पतलून और कमीज धारण किए हुए एक सामान्य पुरुष के रूप में हमारे सामने आता है। वह हमारे सामने रंगमंच पर प्रायः आद्यान्त उपस्थित रहता है। बीच में थोड़ी देर के लिए अपने मित्र जुनेजा के यहाँ चला जाता है। उसकी अनुपस्थिति में जुनेजा रंगमंच पर रहता है और उसकी चर्चा करता रहता है। इस प्रकार ऐसा कभी नहीं हो पाता है कि पाठक नाटक में महेन्द्रनाथ को न देखे और वह महेन्द्रनाथ बस्तुतः इस नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र है। उसके जीवन का लक्ष्य करके ही नाटककार ने अपना मन्तब्य प्रकट किया है और अपना संदेश प्रस्तुत किया है। नाटक वस्तुतः महेन्द्रनाथ की प्रतिच्छाया ही है; यथा, "क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित है। मैंने कहा था कि यह नाटक भी मेरी तरह अनिश्चित है।"

मन में एक प्रकार का द्वन्द्व लिए। द्वन्द्व लिए हुए हैं- नाटककार ने पात्र परिचय के अन्तर्गत लिखा है कि "यह पुरुष जिंदगी में अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिए है।" इसका यह स्वरूप प्रथम-परिचय में ही प्रकट हो जाता है। नाटक का आरम्भ ही महेन्द्रनाथ के स्वगत कथन से होता है जिसमें वह अपने आपको एक विश्रृङ्खलित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के रूप में प्रकट करता है। यह जानता ही नहीं है कि वह कौन है और उसे क्या कहना है। मानो वह जीवन की नदी में किसी प्रकार बहते हुए जीवित मर है-शायद अपने बारे में इतना ही कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह आदमी मैं हूँ। 'आप सिर्फ पूरकर मुझे देख लेते हैं-इसके अलावा मुझसे कोई मतलब नहीं रखते हैं कि मैं कहाँ रहता हूँ, क्या काम करता हूँ, किस-किस से मिलता हूँ और किन-किन परिस्थितियों में जीता हूँ।"

इस अनिश्चित पात्र से हमारी भेंट कई बार होती है। तब भी उससे हमारा परिचय अधूरा ही बना रहता है।

बेरोजगार व्यक्ति-जीविकोपार्जन की दृष्टि से महेन्द्रनाथ एक बेकार आदमी है। वह किसी समय में धनोपार्जन करता था, परन्तु कतिपय कारणवश वह अपनी गांड को पूँजी भी गंवा बा। पानी की धारणा यह है कि दोस्तों के चक्कर में, पारबाजी के कारण उसने अपने आपको बांद किया। जो भी हो, हर समय वह किसी प्रकार भी कमाई नहीं करता है। यह निखडू पति को उसकी पत्नी उपेक्षा एवं अनादर की दृष्टि से देखती है और प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में इसके निखट्टूपन को लक्ष्य करके उसको ताना मारती है। स्त्री अपने लड़के से नाराज होती है और इस नाराजी को प्रकट करती है अपने पति को लक्ष्य बनाकर, जिदगी में तू भी कुछ करना चाहता है या बाप ही की तरह...?

जुनेजा से बात करते हुए भी वह अपने पति की बेकारी के प्रति क्षोभ जन्य अवज्ञा प्रकट करती है। स्त्री का कथन स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ ने घर का धन बर्बाद कर दिया है-" "प्रेस खुला. हो थी। फैक्ट्री शुरू हुई. तो भी। खाली खाने भरने की जगह यह महेन्द्रनाथ और खाने भर चुकने या । महेन्द्रनाथ कहीं नहीं। महेन्द्रनाथ अपना हिस्सा पहले ही ले चुका है, पहले ही खा चुका है और उसका हिस्सा । ये ये ये ये ये दूसरे तीसरे-चौथे दरजे की घटिया चीजें जिनसे वह सोचता है भाट्स का घर बन रहा है।"

जुनेजा का गहरा मित्र-जुनेजा महेन्द्रनाथ का गहरा दोस्त है। वह प्रायः काम करते समय जुनेजा से राय लेता है। पत्नी का ख्याल है कि जुनेजा ने ही उसके पति महेन्द्रनाथ को बर्बाद कर दिया है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि "छोटी से छोटी वस्तु खरीदनी है तो भी जुनेजा की पसंद से। कोई बड़े से बड़ा खतरा उठाना है, तो भी जुनेजा की सलाह से इत्यादि।"

आत्म-विश्वास रहित व्यक्ति-महेन्द्रनाथ आरम्भ से आत्म-विश्वास रहित व्यक्ति रहा है। यह प्रत्येक काम करते समय किसी का सहारा चाहता रहा है। पत्नी का कहना है कि मुझसे विवाह करने का फैसला भी जुनेजा के हामी भरने से किया था। आज तो इसकी स्थिति ऐसी हो गई है कि वह स्वयं कुछ करने की सोच नहीं सकता है। पत्नी कहती है कि वह प्रत्येक बात जुनेजा से पूछ कर कहता है और जुनेजा कहता है कि वह प्रत्येक बात के लिए पत्नी के मुँह की ओर देखता है, तथा उसके मन में यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी उसके लिए जिन्दगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाय नहीं है।

मित्र जुनेजा की राय यह है कि "आज वह अपने आपको बिल्कुल बेसहारा समझता है।" और पत्नी का कहना है कि अपने-आप पर उसे कभी किसी चीज के लिए भरोसा नहीं रहा।'

यह खुद एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।"

पत्नी-प्रेमी-आरम्भ से महेन्द्रनाथ हमें पत्नी के प्रति विनम्र दिखाई देता है। उसकी पत्नी उसे बात पीछे झिड़कती है और वह चुपचाप सब कुछ सुनता रहता है। ऐसा लगता है कि वह अपनी पत्नी के सम्मुख भीगी बिल्ली बन जाता है। स्त्री घर में आने पर महेन्द्रनाथ को घर में न पाकर डाटती हुई कहती है कि "कहाँ चले गये थे तुम?" उत्तर में केवल इतना सा निवेदन काता है-"मार्केट में।"

इसके बाद वह घर की चीजों को देखकर बौखला जाती है- "पता नहीं क्या तरीका है इस घर का ? रोज आने पर पचास चीजें यहाँ-वहाँ बिखरी मिलती है।" बेचारा महेन्द्रनाथ किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करने की अपेक्षा केवल यही कहता है, कि "लाओ, मुझे दे दो?"

स्त्री बात पीछे उसको डांटती है। महेन्द्रनाथ केवल यह कहकर अपनी विवशता प्रकट करता है कि, "तो अच्छा यही है कि मैं कुछ न कह कर चुप रहा करूँ। अगर चुप रहता हूँ तो पुरुष की बातचीत से यह तो प्रकट हो रहा है कि वह अपनी पत्नी की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने के लिए तत्पर रहा है-यहाँ तक कि औकात से अधिक खर्च करके भी उसने उसका मार रखने की कोशिश की है है कि खर्थ उन दिनों इस पर का ? चार सी रूपए महीन का एकार था। दैरियों में आना-जाना होता था। किश्तों पर फ्रीज खरीदा गया था आगे चलकर जुनेजा और उसको पानी सावित्री के वार्तालाप में यह बात एकदम स्पर हो जाते है कि महेन्द्रनाथ ने अपनी पत्नी को खुश रखने की हरचन्द कोशिश की थी। पत्नी झत्पना कर कहती है कि "बजह इसकी में थी, यही कहना चाहते हो न ? वह मुझे खुश रखने के लिए ही यह लोहा लकड़ी जल्दी घर में भरकर हर बार अपनी बरचादी की नीव खोद लेता था।

महेन्द्रनाथ के इस व्यवहार की प्रेरणा वह व्यवहार जिसने उसको एक तरह से बयां ही कर दिया-वस्तुतः पानी के प्रति उसका अत्यधिक प्रेम। बड़ी लड़ी कोणा के सामने प्रकट कर देता है.".. बाहता है अन्दर से कि इस तथ्य को जुनेजा (पुरुष चार वह इस औरत को इतना चाहता है ।" तथा, "फिर भी कहता हूँ कि वह ह इसे बहुत प्यार करता है।"

जुनेजा सावित्री से भी इसी बात को पूरी दृढ़ता के साथ कहता है कि, "और जानकर हूँ कि तुमने इस तरह शिकंजे में कस रखा है उसे कि वह अब अपने दो रंग पर सकने लायक भी नहीं रहा।"

मन में एक छटपटाहत रखने वाला व्यक्ति-महेन्द्रनाथ प्रत्यक्षतः एक विश्वासहीन परमुखापेक्षी व्यक्ति दिखाई देता है। वह आज एक निराश व्यक्ति है क्यों नहजीवन की सांसारिक दृष्टि से असफल रहा है। असफल होने के फलस्वरूप उसकी निन्तात एकदम अस्वाभाविक हो गई है। ऐसा लगता है कि उसने न कभी कुछ किया है और नयये हो वह कुछ कर सकेगा। पुरुष चार (जुनेजा) कहता है कि "आज महेन्द्र एक मानेआदमी है। पर एक वक्त था जब वह हँसता था। सचमुच अंदर से हँसता था।" परन्तु अबसर्वया बदल गई है। इसका कारण है इसके मन की हीनत्व भावना। अन्य व्यक्तियोंकुलना कर-करके सावित्री ने उसको हीन भावना से भर दिया है। "वह हंसने वाला व्यांनया कब कोई उस पर यह साबित करने वाला नहीं था कि कैसे हर लिहाज से वह होन औ Пहै. इससे, उससे, मुझसे, तुमसे, सभी से।"

है कि परन्तु जुनेजा महेन्द्रनाथ के भीतर छिपे हुए पुरुषार्थी पुरुष को देख सकता है। वह ज यदि पत्नी उसको छोड़ दे, तो फिर उसे पत्नी की अप्रसन्नता का भय न रह जाय और अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग कर सके यथा, "वह कमजोर है, मगर इतना कमजोर नहीं है, उतन बेसहारा भी नहीं है, जितना वह अपने को समझता है, वह ठीक से देख सके, तो एक पूरी दुनिया है उसके आस पास।"

जुनेजा जानता है कि महेन्द्रनाथ भले ही अस्वस्थ है और भले ही वह घर वालों से असन्तुष्ट है, परन्तु वह सावित्री के बिना रह नहीं सकता है। जुनेजा का कहना ठीक सिद्ध होता है। मन्द्रनाथ गिरते-पढ़ते आ ही जाते हैं। नाटक के अन्त में लड़का अशोक यह कहता हुआ दिखाई देता है,

"कैडो हो होगे। उतर कर चले आए होंगे ऐसे हो।..... आराम से डैडी, आराम मे। देखकर-डैडी, देखकर।" महेन्द्रनाथ अपनी हीन भावना के कारण झिझक से भर गया है, परन्तु उसके भीतर एक तड़प है, कुछ न कुछ करने की छटपटाहट है और वह कुछ कर भी सकता है. काश उसके गले में पत्थर की तरह लटकी हुई उसकी पत्नी उसकी बाधा न बने।

महेन्द्रनाथ की तड़प और छटपटाहट को झलक हमको नाटक में बहुत पहले मिन्न जातो है। उसके परिवार के सदस्य उससे बार-बार अशिष्टता का व्यवहार करते हैं, तब वह अपना आक्रोश व्यक्त करता है। इस आक्रोश में उसकी क्षोभपूर्ण आत्मग्लानि दिखाई देती है और बह था चालों को छोड़कर जुनेजा के पास चला जाता है। उसके इन शब्दों द्वारा यह भली प्रकार प्रकट पूर्णतः क है तथा उसमे निर्णय लेने की प्रवृत्ति छटपटाती रहती है यथा- आज कितने माल हो चुके है मुझे जिदगी का भार होते? यहाँ जिसे मुझसे बदतमीजी से बात करता है। हर व्यक्त की दुतकार, हर वक्त की कोच, बस यह कमाई है यहाँ मेरी इतने सालों की ? था गया है। और बचा भी क्या है जिसे खाने के पर अब पेट भर गया है र गया है मेरा। हमेशा के लिए लिए और रहूँ यहाँ ?

महेन्द्रनाथ की असली छटपटाहट यह मालूम पड़ती है कि वह कुछ करे और उसकी सावित्री इसके साथ पूर्ण सहयोग करे। जुनेजा बड़ी आज सुबह से हो रिरियाकर मुझसे न कह रहा। लड़कों से कहता है कि "अगर ऐसा न होता जैसे भी हो, मैं इससे होता कि बात करके

निष्कर्ष-महेन्द्रनाथ वस्तुतः अत्यधिक भावुक पति है। वह अपनी पत्नी को हर कीमत खुश करना चाहता है, परन्तु उसकी पत्नी पति प्रेम के स्थान पर वैभव की भूखी है। बस विषमता समस्त कलह-क्लेष का मूल है।

महेन्द्रनाथ दुनियावी तौर पर एक असफल मनुष्य है। उसको पत्नी ने हीनत्व भाक से भरकर एक निरालम्ब व्यक्ति बना दिया है। परन्तु वह अभी सर्वधा निराश नहीं हुआ है। उसके भीतर कुछ-न-कुछ करने की ललक और तड़प है। जैसा जुनेजा का कथन है कि पत्नी की ठोकर उसके पुरुष को उथाड़ कर बाहर ला सकती है। उसकी यह छटपटाहट बड़ी ही दयनीय है कि सब कुछ जानते हुए, करते हुए भी मेरी यह हालत क्यों हो गई?"

'आधे-अधूरे' के कथोपकथनों की विशेषताएँ

उत्तर- कथोपकथन नाटक का महत्वपूर्ण तत्व-कथोपकथन वाला तत्व किसी भी नाटक का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग होता है। कथोपकथन वस्तुतः नाटकरूपी शरीर की मांस-मज्जा है। इनके द्वारा नाटक के अस्थिपंजर में प्राणवत्ता आती है। कथोपकथन के द्वारा पात्रों के चरित्र का निरूपण होता है। उनके द्वारा नाटक की कथावस्तु को गति प्राप्त होती है तथा प्रेक्षक एवं पाठक को उन घटनाओं की सूचना प्राप्त होती है जो रंगमंच पर घटित नहीं होती है। कथोपकथन बलुतः पात्रों को अपनी तथा नाटककार की बात कहने का अवसर प्रदान करते हैं। म्वाभाविक एवं बावतंच जैसे चुन-चुटीले कथोपकथन प्रेक्षक को रसमग्न कर देते है और प्रेक्षक कुछ समय के लिए यह भूल जाता है कि वह यथार्थ जीवन का रस ले रहा है अथवा जीवन को अनकति मात्र का प्रेक्षण कर रहा है। सारांश यह है कि कथोपकथन अथवा गवाद मलतत्वा सटव को रसमयता प्रदान करते हैं।

अच्छे या सफल कथोपकथनों के संवादों के गुण अभिव्यक्ति मह है। कथन की प्रणालियों की क्या गणना है? मानव मन की क्या आपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के अनुरूप अपनी स्वतन्त्र चिन्ता धारा को करता है। परन्तु फिर भी काव्य शास्त्रियों के मतानुसार किसी भा नाटक मानात निम्नलिखित गुण। होने चाहिए- है? कक्त रूप अभिव्यक्त

(क) ने छोटे-छोटे हो तथा उनमे वार्तालाप स्वाभाविकता हो।

(ख) वे भावाभिव्यंजक हो।

(ग) वे चुस्त और चुटीले हो अर्थात् वे वाग्वैदध्यपूर्ण हो।

(घ) वे मनोवैज्ञानिक हों।

(ङ) ने चरित्र-चित्रण में सहायक हो।

(घ) वे कथावस्तु के विकास में सहायक हों।

(छ) वे देश-काल का निरूपण करते हों।

(ज) वे रसमय हो।

कथोपकथन के प्रकार-उपर्युक्त लक्षणों और विशेषताओं के आधार पर कथोपकथन के अनेक भेद या प्रकार किए जा सकते हैं। इनमें मुख्य भेद में होते हैं- पात्रानुकूल कथोपकथन मनोवैज्ञानिक कथोपकथन, चरित्र-विधायक कथोपकथन, कथा को गति प्रदान करने वाले कथोपकथन, देश-काल निरूपक कथोपकथन, व्यंग्य-विनोदपरक कथोपकथन तथा नाटकीय कथोपकथन। चुटीलापन, बातचीत की तरह स्वाभाविकता, विदग्धता एवं संकेतशीलता वे सामान्य गुण है जिनके ऊपर श्रेष्ठ या सफल संवादों अथवा कथोपकथनों की सफलता निर्भर करती है। आधे-अधूरे नाटक के कथोपकथन- 'आधे-अधूरे' नाटक में हमें उपर्युक्त समस्त प्रकार के कथोपकथन उपलब्ध होते हैं और वे अपेक्षित विशेषताओं एवं गुणों से युक्त हैं। जहां कहीं वे कथोपकथन अपेक्षाकृत अधिक लम्बे हो गए हैं, वहाँ वे मनोवैज्ञानिक शैली पर पात्र के व्यक्तित्व का उद्घाटन करते। टन करते हैं। साहित्यिक सरसता से युक्त एवं साभिप्राय होने के कारण वे न तो व्याख्यानवत् बन पाए हैं और न नीरस ही बन पाए हैं। इसी कारण वे पाठक या प्रेक्षक कोडुबाने वाले नहीं बन पाए है, यथा- वस्तु-परिचायक कथोपकथन नाटक का प्रारम्भ पुरुष एक (महेन्द्रनाथ) के स्वगत कथन से होता है। पुरुष एक रंगमंच पर आकर अपने मन के

अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करता है। उसका अन्तर्द्वन्द्व नाटक के स्वरूप को ही प्रकट कर देता है। पुरुष एक का कथन स्पष्ट कर देता है कि यह नाटक मनोबल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है यानि उनका मूल स्वर मनोवैज्ञानिक है, यथा, " . परन्तु मैं अपने सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता। क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित है। उसका कारण भी यही है कि मैं इसमें हूं और मेरे होने से सब कुछ इसमें निर्धारित या अनिर्धारित है।" पुरुष एक का यह आरम्भिक कथन प्रायः वहीं कार्य करता है जो एक नाटक में सूत्राधार का वक्तव्य या नांदी पाठ करता है अथवा किसी काव्यग्रन्थ में मंगलाचरण का उपयोग होता है। इस प्रकार इस कथोपकथन को हम विशेष महत्वपूर्ण मानते हैं। वस्तु परिचायक कथोपकथन नाटकों में बहुत कम पाए जाते हैं। इस दृष्टि से यह कथोपकथन इस नाटक की अपनी निजी विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक कथोपकथन-इस नाटक के प्रायः समस्त पात्र कुण्ठाग्रस्त हैं और उनके मन में भारी द्वन्द्र बना रहता है। प्रायः प्रत्येक पात्र अपने मन के घुटन और आशंकों को व्यक्त करता हुआ दिखाई देता है।

रंगमंच पर आते ही पुरुष तथा एक स्त्री सावित्री अपने मत को उँडेलते हुए दिखाई देते हैं। पुरुष चार अपने मित्र के घर में प्रवेश करते समय बच्चों से बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति से बात करता है और उनका हृदय जीत लेता है। पुरुष दो सिंघानियाँ स्त्री के घर आता है। वह आता तो है यों ही, परन्तु स्त्री उसको घेरना चाहती है अपने लड़के की नौकरी लगाने की बातों में। वह अवसर के उपर के उपयुक्त भोलेपन क का नाटक करने लगता है और लड़के की नौकरी वाली बात बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से उड़ा देता है। देखिए-

पुरुष दो-इसके लिए।

स्त्री-मेरा मतलब है उसके लिए

पुरुष दो-हो-हीं-हाँ-हाँ-हाँ, तुम आओगी ही घर पर।

इफ्तर की भी कुछ बाते करनी है। कहीं जो यूनियन यूनियन का झगड़ा है।

पुरुष एक लड़की से उसके दाम्पत्य जीवन के बारे में जो जानकारी चाहता है, वह बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्राप्त करता है।

नाटक के अन्त की और पुरुष चार जुनेजा और स्त्री सावित्री का जो वार्तालाप है, वह सेमविश्लेषण का एक अध्याय हो है। उसमें मन की गुत्थियों को मनोवैज्ञानिक पद्धति पर किन्तु यिक शैली से सुलझाया गया है। एक उदाहरण पर्याप्त है। गथा- "इसलिए कि आज वह अपने को बिल्कुल बेसहारा समझता है। उसके मन में यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी उसके लिए जिंदगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाय नहीं है और ऐसा क्या इसलिये नहीं किया तुमने, जिंदगी में और कुछ हासिल न हो तो कम से कम यह नामुराद बोहरा तो हाथ में बना ही रहे ? इस कथन के द्वारा पुरुष एक महेन्द्रनाथ और स्त्री सावित्री दोनों की मनोवैज्ञानिक स्थिति एकदम स्पष्ट हो जाती है।

वाग्वैदग्धपूर्ण कथोपकथन-स्त्री सावित्री भी अपनी बड़ी लड़की बिन्नी से उसके धम्माल्य-जीवन की वास्तविक स्थिति निकलवाना चाहती है? बिन्नी भी चतुरतापूर्वक ऐसा उत्तर देती है कि बिना कुछ कहे कि सब कुछ कह डालती है। इन दोनों की बातों में हमें नारियोचित कता एवं वाग्वेदग्ध के दर्शन होते हैं; यथा-बड़ी लड़की वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

स्त्री-मैं तेरा मतलब नहीं समझी ?

बड़ी लड़की-मैं शायद समझा भी नहीं सकती। किसी दूसरे को तो क्या अपने को भी नहीं समझा सकती।

जुनेजा और सावित्री का वार्तालाप, तो घात-प्रतिघात तथा वाग्वैदग्ध्य की आद्यान्त कहानी है। स्त्री अपनी कलई खुलती देख उड़ती है, वह चाहती है कि जुनेजा उसके प्रति सावित्री के पुराने प्रेम की चर्चा न करे। जुनेजा चाहता है कि उसकी बखिया उधेड़ ही दी जाय क्योंकि सावित्री भी अब हद के बाहर होती जा रही है। यथा-

पुरुष चार-व्यक्ति इसलिए कि-

स्त्री-कि इसके पास बहुत पैसा था ? और आपका बहुत दबदबा था इन लोगों के बीच ? पुरुष चार-नहीं, सिर्फ इसलिये कि मैं जैसा भी था, जो भी था, महेन्द्र नहीं था।

चरित्र-विधायक कथोपकथन-इस नाटक के अधिकांश कथोपकथन चरित्र-विधायक हैं-प्रत्येक पात्र के कथन स्वयं के चरित्र अथवा किसी अन्य पात्र के चरित्र का उद्घाटन करते चलते हैं। स्वगत कथन तो स्वयं पात्र के व्यक्तित्व को उभार कर प्रेक्षक या पाठक के सामने ही देते हैं।

नाटक के आरम्भ होते ही पुरुष एक और स्त्री सावित्री के वार्तालाप द्वारा यह स्पष्ट हो जाता हैकि पुरुष एक जीवन की लड़ाई में हार जाने के कारण दब्बू बन गया है और स्त्री सावित्री एक कहंसा पत्नी है, वह किसी दफ्तर में काम करती है तथा अपनी मौजूदा स्थिति से असन्तुष्ट है। यहाँ यी पता लग जाता है कि जुनेजा की दोस्ती के कारण महेन्द्र का बहुत-सा धन नष्ट हुआ है। बड़ी लड़की और स्त्री सावित्री के वार्तालाप द्वारा यह भी विदित हो जाता है कि मनोज एक स्वस्थ, खुशदिल और सम्पन्न युवक है।

गटक के उत्तरार्द्ध म जुनेजा और स्त्री का जो या होती है. वे बड़ी ही सनसनीगंज है। संकार गावित्री के पिनीने रूप को उभार कर सबके गामने रख देते हैं। जुनेजा उस नाम की डार पकड़ कर ही कहीं पहुँच सकने की आखिरी कोशिश में। यह कचन दृष्टव्य है- "मनोज का बड़ा नाम था। पर तुम एकदम बौरा गई जब तुमने पाया कि वह इतने नाम वाला आदमी तुम्हारी लड़की को साथ लेकर रातों-रात इस घर से था को गति प्रदान करने वाले कथोपकथन- इस नाटक के अनेक कथोपकथन ऐस कथा हा जो कथा की विखरी-बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ते चलते हैं। इन्हें सुनकर पढ़कर हम कथा सूत्र को सम्हाले रहते हैं। उदाहरण के लिये जुनेजा के कथन सावित्री के वर्तमान जीवन और विगत जीवन की कड़ियों को पूरी तरह मिला देते हैं। इन संवादों के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि मावित्री को जुनेजा क्यों फूटी आँख नहीं सुहाता है और क्यों महेन्द्र सावित्री के कारण अद्धविक्षिप्त सा हो गया है।

व्यंग्य विनोद-परक कथोपकथन-नाटक के समस्त पात्र अपने मन में एक घुटन और कुढ़न लिये हुए रहते हैं। वे परस्पर न खुलकर बात करते हैं और न उनके हृदय में एक-दूगरे के लिए सद्भाव ही है। ये बात पीछे परस्पर कटाक्ष एवं व्यंग्य करते हुए दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ पुरुष एक द्वारा जुनेजा का नाम निकलते ही स्त्री वह व्यंग्यात्मक कथन करती है- "तुम्हारे न्लिए तो पता नहीं क्या-क्या करेगा वह जिन्दगी में। पहले ही कुछ कम नहीं किया है।" लड़के अशांक के साथ सावित्री का जो संवाद होता है, उसमें स्त्री एक तीर में दो शिकार करती है। लड़के के प्रति व्यग्य और पति (पुरुष एक) के प्रति कटाक्ष के तीर वह एक साथ छोड़ देती है।"

यथा- "जिन्दगी में तुझे भी कुछ भी कुछ करना-धरना है, या बाप की ही तरह .....?" लड़का पुरुष दो सिंघानिया की भाषा को 'सरकारी हिन्दी' कहता है। 'सरकारी हिन्दी' शब्द में हमारे अफसरों के हिन्दी विरोध के प्रति तीखा व्यंग्य है। सरकार ने करोड़ो रुपये खर्च करके जिस हिन्दों का निर्माण किया है वह जनता से दूर सर्वथा एक अस्वाभाविक भाषा है, जिसे यदि हिन्दी कहना ही है, तो सरकारी हिन्दी

कहा जा सकता है। विनोदपूर्ण कथन केवल एक है और वह भी भोंडे विनोद का उदाहरण है। लड़का अशोक सिंघानियाँ के बारे में जब हल्की बातें करता है- "चुकन्दर है? वह आदमी है?" तथा-स्त्री-

यह क्या बना रहा था तू ?

लड़का-एक आदि बन-मानुस देख नहीं रहो यह लपलपाती जीभ ये रिसती गुफाओ

जैसी आँखे .....।

सांकेतिक या भावाभिव्यंजक कथोपकथन- इस नाटक के पात्र अपने मनोभावा को व्यंजना करने के साथ अन्य पात्रों के चरित्र के प्रति संकेत करते चलते हैं।

पुरुष एक अपने आरम्भिक कथन के द्वारा यह संकेत दे देता है कि वह अपने मन म एक प्रकार की छटपटाहट के लिए जीवित है तथा उसका भविष्य सर्वथा अनिश्चित है।

सिधानिया के चले जाने के पश्चात् लड़का अशोक और स्त्री सावित्री के मध्य जो संवाः चलता है, वह बहुत ही भावाभिव्यंजक एवं सांकेतिक है। उनके द्वारा हमारे सामने लड़के का विद्रोही स्वरूप प्रकट हो जाता है, यथा- "तुम्हारा बॉस न होता तो इस दिन मैंने कान पकड़कर घर से निकाल दिया होता।"

फिर वह उसकी नकल उतारता हुआ कहता है कि "पहले पाँच सेकण्ड आदमी की आँखों से देखता रहेगा। फिर होठों के दाहिने कोने से जरा-सा मुसकरायेगा। फिर एक-एक लफ्ज को बाता हुआ पूछेगा-आप क्या सोचते है आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है? ढूंढ- ढूंढ कर सरकारी हिन्दी के लफ्ज लाता ता है।"

पुरुष चार अपनी बातचीत के मध्य संकेत दे देता है कि यह अशोक जैसे कम पड़े लिखे लड़के को नौकरी लगाने में बिल्कुल रुचि नहीं रखता है।

पात्रानुकूल कथोपकथन-इस नाटक के कथोपकथनों की भाषा-शैली सर्वया पात्र की थति के अनुरूप है। इस नाटक के समस्त पात्र मध्य वर्ग के शिक्षित पात्र हैं। वे सबके सब यी अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं। उनकी शैली ऐसी है कि वाणी के कान में पड़ते ही आपके मन की घुटन, झल्लाहट, बेचैनी, कुण्ठा, छटपटाहट आदि एकदम प्रकट हो जाती है।

स्त्री सावित्री घर में घुसते ही कहना शुरू करती है कि "फिर घर में कोई नहीं। किन्नी,होगी कड़ी.... जरा शरम नहीं कि रोज-रोज कहाँ से पैसे आ सकते हैं और अशोक, यह कमाई

करते रहते हैं दिन भर । ऐलिजाबेथ टेलर आहे हेवनं .... शलें मैक्लेन। जिन्दगी काट रहे हैइन तस्वीरों के साथ।" सुनते ही प्रेक्षक समझ जाता है कि यह गृहस्वामिनी है तथा पति, पुत्र, पुत्री सबके कारण पोशानी अनुभव करती है। साथ ही 'शर्म' का उच्चारण 'शरम' करने के कारण वह अपने आपको अर्थ-शिक्षित होने का संकेत भी दे देती है।

पुरुष के इस कथन में उसकी खीझ स्पष्टतः अभिव्यक्त है- "जिसे देखो वहीं मुझसे बदतमीजी से पेश आता है। हर वक्त की दुत्कार, हर वक्त को कोच, बस यही कमाई है, यहाँ मेरी इतने सालों की ?"

इस कथन द्वारा दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि घर में कोई भी पुरुष एक भी इज्जत नहीं -करता है तथा वह अब इस समय कुछ नहीं करता है। छोटे-छोटे स्वाभाविक कथोपकथन- इस नाटक के अधिकांश पात्रों के संवाद छोटे-डोटे एवं स्वाभाविक हैं। वे अब इस प्रकार व्यक्त किये गए है कि उनमें स्वाभाविक वार्तालाप का आनन्द आ जाता है। एक उदाहरण देखिये। इस संवाद में कोई कथा तीन-चार शब्दों से अधिक नहीं है तथा एक पात्र का वाक्य पूरा होने के पूर्व ही दूसरा पात्र अपनी बात शुरू कर देता है; यथा-

स्त्री-तो फिर ?

लड़का-तो फिर क्या ?

स्त्री-तो फिर क्या मर्जी है तेरी ?

लड़का-किस चीज को लेकर ?

स्त्री-अपने आपको।

लड़का-मुझे क्या हुआ है?

इरो प्रकार पुरुष दो के साथ लड़के अशोक का यह स्वाभाविक संवाद देखते ही बनता है- पुरुष-बी.एस.सी. में कौन सा डिवीजन था आपका ? (लड़का उँगली से हवा में सिफर

खीच देता है। देता है) कौन सा?

लड़का-(तीन-चार बार उँगली घुमाकर) अरे।

पुरुष दो-अरे !

स्त्री से अच्छा अच्छा हाँ। ठीक है-देखूँगा मैं (घड़ी देखकर) अब चलना चाहिये! बहुत समय हो गया। तुम घर आओ किसी दिन। बहुत दिनों से नहीं आई।

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष दो, तीन डण्डे वाले डिवीजन पाने वाले व्यक्ति को नहीं रख सकेगा। इसी से वह लड़की की ओर से विमुख होकर एकदम स्त्री के प्रति उन्मुख ही जाता है।

संयत कथोपकथन-रवी प्रायः अपने वार्तालाप में असंगत रहती है। लड़की भी अग दिखाई देता है। परन्तु गम्भीर अवसरों पर वाह संयत हो जाता है। ये संयत कथोपकथन उसके व्यकितात्र के उस पक्ष का परिचय देते हैं जो प्रायः हमारी आँखों से ओझल बना रहता है; यथा या बहिन बिन्नी से कहता है कि, "बुरा क्यों मानती है? मैं खुद अपने को बेगाना महसूस का यहाँ और महसूस करना शुरू किया है मैंने तेरे जाने के दिन से।"

नाटक के समापन के अवसर पर वह अपने पिता महेन्द्रनाथ को जुनेजा के घर के सिए कर लाता है। महेन्द्रपाल फिसल पड़ता है। लड़के का पितृ-स्नेह उभर कर बाहर आ जाता है. वह अध्यन्त संयत स्वर में कहता है कि, "उतर कर चले आये होंगे ऐसे ही। आराम से हैडा, आराम से। देखकर डैडी, देखकर।

लम्बे कथोपकथन-पुरुष एक तथा स्त्री सावित्री के स्वगत-कथन अपेक्षाकृत लम्बे है. परन्तु इनकी संख्या नगण्य है और वे बहुत अधिक बड़े भी नहीं है। लम्बे हैं वस्तुतः वे, जय पुरुष चार जुनेजा और सावित्री वार्तालाप करते हैं। इस अवसर पर पुरुष चार के कथन एक से अधिक पृष्ठों तक चलते हैं। इन कथनों के द्वारा वह सावित्री के चरित्र का उद्घाटन करता है तथा उसके वास्तविक रूप को सामने रखता है। पाठक यह देख कर आश्चर्यचकित रह जाता है कि जो स्त्री एक तरफ से सबको बुरा बताती थी, यह वस्तुतः स्वयं कितनी बुरी है। अतः जुनेजा के वक्तव्य पाठक का रंजन करते हैं, उसको उबाते नहीं हैं। पुरुष चार जगमोहन और सावित्री के मध्य होने वाली वार्ता को अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा कहना आरम्भ करता है, और कहते- कहते इस निष्कर्ष पर आ जाता है कि जुनेजा को अतीत में भले ही सावित्री ने आकर्षित किया हो, परन्तु अब उसे सावित्री की आवश्यकता नहीं है। यथा, "जाते हुए सामने थी एक जिंदगी।

पर लौटने तक का बुत हासिल। उलझे हाथों का गिजगिजा पसीना और ....." प्रेक्षक या पाठक पूरे मनोयोग के साथ जुनेजा का वक्तव्य सुनता है, क्योंकि वह आद्यान्त

प्रेक्षक के कौतूहल की तृप्ति करने वाला है। पाठक पुरुष चार की चतुरता के प्रति आश्वस्त होकर आगे भी सुनना चाहता है। और जुनेजा उन्हें निराश नहीं करता है। वह यह कहकर पाठक को हैरत में डाल देता है कि "ऐसा क्या इसीलिए नहीं किया तुमने कि जिन्दगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम-से-कम यह नामुराद मोहरा तो हाथ में बना ही रहे ?"

उपसंहार-उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधे-अधूरे नाटक में सब प्रकार के संवाद और उनका समायोजन अत्यन्त सफलतापूर्वक किया गया है। ये कथोपकथन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है। इनके द्वारा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है तथा वे प्रत्येक पात्र की स्थिति को नाटक एवं जीवन के परिप्रेक्ष्य में स्थिर कर देते हैं।

समस्त पात्र प्रायः एक ही वर्ग के हैं। इसी से वे सब एक-सी भाषा बोलते हैं। भाषा स्वाभाविक हिन्दुस्तानी है। अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भारतवर्ष के मध्यवर्गीय बाबू परिवारों का सजीव स्वरूप हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है। इनमें देश-काल तथा पात्र का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

जिन्हें हम अपेक्षाकृत लम्बे कथोपकथन कहते हैं, उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। विशेषता यह है कि वे नवीन तथ्यों का इस प्रकार उद्घाटन करते हैं तथा गुत्थियों को ऐसो मनोवैज्ञानिक शैली में सुलझाते है कि वे पाठक की कौतूहल-वृत्ति की तृष्टि का साधन बन जाते है और एक क्षण के लिए भी वे नीरस और उबाने वाले नहीं बन पाते हैं।

निष्कर्ष यह है कि इस नाटक के संवाद ही चुस्त, चुटीले और रसात्मक हैं। वे नाटक को सफल बनाने में पूर्ण सहायक होते हैं। यह कहना सर्वचा समीचीन है कि संवादों की दृष्टि में 'आधे-अधूरे' नाटक एक सफल नाटक है। ⊐

'आधे-अधूरे' नाटक की रंगमंचीय दृष्टि

आधे-अधूरे: रंगमंच और अभिनेय-मोहन राकेश का प्रस्तुत नाटक 'आधे-अधूरे' रंगमंच और अभिनय आदि की दृष्टि से किस सीमा तक सफल और सार्थक है, इसका विवेचन करने से पहले यह देख लेना उचित होगा कि इन सन्दर्भों में कुछ रंग-शिल्पी एवं आलोचक क्या कहते हैं। पहले एक रंग-शिल्पी का मत देखिये। प्रसिद्ध रंग-शिल्पी और नाटक-अभिनेयता औम् शिवपुरी इसकी अभिनेयता के सामर्थ्य का गहराइयों से, आधुनिक रंगमंचीय दृष्टि से विश्लेषण करते हुए 'जीवन्त सार्थक मुहावरा' नामक अपने एक लेख में लिखते हैं-

"एक दूसरे स्तर पर यह नाटक मेरे लिए व्यक्तियों की विभिन्नता के बावजूद मानवीय अनुभव की समानता का दिग्दर्शक है। इसके लिए नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पाँच पृथक् भूमिकाएं निभाये जाने की दिलचस्प रंग-युक्ति का सहारा लिया है। महेन्द्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रख देने से या जगमोहन के स्थान पर जुनेजा को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के ढाँचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बर्ताव करता है। इसी अनुभव पर बल देने के लिए कुछ एक प्रदर्शनों में नाटक की शुरुआत के साथ एक

स्याह कमरे में लगे मुखौटे को आलोकित करता था।" तात्पर्य स्पष्ट है कि पात्र-योजना की दृष्टि से नाटक के आरम्भ में ही एक नव्य प्रयोग किया गया है कि उससे एक ओर तो रंगमंच पर एक सजीव वातावरण उभर आता है, दूसरे एक विशेष

प्रकार की उत्सुकता से संयत प्रभविष्णुता का समावेश भी आरम्भ से ही हो जाता है। रंगमंच की योजना कितनी सरल, सुदृढ़, सीधी-सादी और सजीव है, प्रभावी है, यह बात भी विशेष ध्यातव्य है। नाटककार ने स्वयं ही आरम्भ में कुछ इस प्रकार के रंग-संकेत दिये हैं कि वे मूल कथ्य की आत्मा को साकार करने में विशेष सहायक होते हैं। उन रंग-संकेतों के आधार पर या उन्हें लक्ष्य बनाकर औम् शिवपुरी उपरोक्त सन्दर्भ में ही लिखते हैं- "आधे-अधूरे का कार्य स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफे, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, फाइलें आदि हैं। यह कमरा एक समय साफ-सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पण धूल की तह जम गयी है। क्राकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गई हैं। इस परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है, घर की हवा तक में स्थायी तल्खी की गन्ध है, जो पाँचों व्यक्तियों के मन में भरी हुई है- ऊब, घुटन, आक्रोश विद्रूप.... दम घोटने वाली मनहूसियत जो मर-घट में होती है।" यही वह है सफल, स्वाभाविक, संक्षिप्त और सरल रंग- योजना जो अभिनय को सहज-स्वाभाविक बनाने में विशेष सहायक प्रमाणित होती है। 'आधे- अधूरे' नाटक की रंग-चेतना निश्चय ही अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिसने कि आरम्भ से अन्त एक समूचे कथ्य, कथानक एवं उसके रूपायन को चरित्र आविल कर रखा है। इस सम्बन्ध में मंदेश आनन्द के विचार भी निश्चय ही सार्थक हैं। अपने 'समकालीन जिन्दगी और रंग-मूल्यों की तलाश' नामक लेख में एक स्थल पर वे लिखते है-

"इस नाटक की सफलता का सबसे बड़ा कारण

टाकी रंग-चेतना है जो सह

नाटक में छायी हुई है। राकेश ने इस नाटक में यथार्थवादी रंग-मंच को एक नया और आकांक रूप दिया है लेकिन किसी भी तरह की चका-चौथ को अपना कर रंगमंच के 'अन्तर्हित त को पराजित करने का प्रयास नहीं किया।" स्पष्ट है कि नाटककार 'आधे-अधूरे' नाटक में आधुनि सार्थक और सरल रंग-चेतना के प्रति विशेष रूप से सजग रहा है, इसी कारण मंचित करने सभी सहज-स्वाभाविक तत्व नाटक में स्वतः ही समाविष्ट हो गये हैं। नाटक को दृश्य-मः के बारे में उपरोक्त सन्दर्भ में ही महेश आनन्द आगे लिखते हैं-" ....आधे-अधूरे' की दृश्य सज्जा बहुत ही सादगी भरी किन्तु सार्थकता लिए हुए है। सारे नाटक का कार्य-स्थल केवल एक ही कमरा है 'जिसमें उस घर के व्यतीत स्तर के कई एक टूटते अवशेष-सोफासेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और ड्रेसिंग टेबल' आदि पात्रों की छटपटाहट, बिखराव, आक्रोश और कडूआहर को गहराई से व्यंजित करते हैं। इन वस्तुओं की तरह ही परिवार के सदस्यों का एक-दूसरे मेसे रिश्ता टूट चुका है।" इन टुटे रिश्तों, तनावों एवं आक्रोश बिखराव को मंच पर साकार करने के लिए नाटककार ने कौन-से माध्यम, प्रतीक आदि अपनाये हैं, उनके सम्बन्ध भी महेश आनन्द के शब्दों में ही पढ़िये- "नाटककार ने इस टूटन और बिखराव को व्यक्त करने के लिए प्रकाश, ध्वनि और संगीत के माध्यम से वतावावण में व्याप्त तनाव और घुटन को उभार कर रंग और कौशल का परिचय दिया है। एक खण्डहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत, लड़के का काटी तस्वीर को बड़े-बड़े टुकड़ों में कतरना, प्रकाशं-आकृतियों पर धुंधला कर कमरे के अलग- अलग कोनों में सिमटता विलीन होता हुआ, अंधेरे के साथ-साथ संगीत का रुकना और कैचां की चक्-चक्-चक् सुनाई

देना-ये सब घर की जर्जरता और बिखराव के साथ मानवीय सम्बन्धों की निरर्थकता घोषित करते हैं। अन्त में केवल कैंची की चक्-चक् वातावरण में करुणा का स्वर फैलाकर जीवन-मूल्यों के अन्त की ओर संकेत करती है।"

तात्पर्य यह है कि रंगमंच पर अभिनय की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक में नाटककार द्वारा अपनाये गये प्रतीक माध्यम निश्चय ही जितने सादे, स्वाभाविक और सरल हैं, उतने ही प्रभावी भी। उस पर वैशिष्ट्य यह कि वे एकदम परिवार बल्कि वर्णित वर्ग के रोज़मर्रा के जीवन से सीधे जुड़े हैं-बाह्य जीवन से भी और आन्तरिक जीवन से भी। दृश्य-विधान, प्रभाव उत्पन्न करने के लिए प्रतीक-प्रयोग, प्रकाश एवं रंगों की योजना में राकेश ने 'आधे-अधुरे' में एक विशेष प्रकार की प्रतिभा एवं कौशल का परिचय दिया है। इस सम्बन्ध में अपने 'रंग-कौशल' नामक लेख में डॉ. प्रेमप्रकाश गौतम लिखते हैं- "प्रकाश-व्यवस्था का उन्हें अच्छा बोध है, इसमें सन्देह नहीं। दृश्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, अभीष्ट प्रभाव डालने के लिए दृश्य के किस और किन स्थलों पर कब, किस प्रकार, कितना प्रकाश डालना चाहिए, यह वे समझते हैं। ध्वनि-योजना के महत्व से भी वे परिचित हैं। वातावरण के अनुकूल ध्वनि-विधान करने का बोध उन्हें है।" तात्पर्य यह है कि जो कोई भी आधुनिक हिन्दी नाटक के, रंगमंच के विकास से और मोहन राकेश के नाटकों से तनिक भी परिचित है, वह भली प्रकार से जानता है कि मोहन राकेश के सारे नाटक, विशेषतः 'आधे-अधूरे' रंग-शिल्प की दृष्टि से वास्तव में हिन्दी नाट्य-साहित्य की एक अजोड़ देन है।

समग्न विवेचन-ऊपर दिये गए विभिन्न मतों एवं विवेचन से लगभग यह प्रमाणित हो जाता है कि रंगमंच एवं अभिनेयता की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' एक अत्यन्त सफल कृति है। आज तक इसका अभिनय अनेक बार हो चुका है, यह भी इसी तथ्य का स्पष्ट परिचायक है। नाटककार ने जिस शिल्प, जिस प्रकार के तकनीक को यहाँ अपनाया है, वह एक प्रकार से सर्वथा नवीन है, आधुनिक रंगमंच एवं नाट्य-शिल्प की आवश्यकताओं के सर्वथा अनुरूप है। दृश्य-योजना का * मंचीय या अभिनेय नाटकों में बहुत अधिक महत्व हुआ करता है। 'आधे-अधूरे' नाटक की यह शेष के एक परी क और बड़े से अन्तराल निक तो हो ही गया है, विशेष एवं कीदृष्टि से भी सही से जाने का भी एक सर्वथा नवीन प्रयोग किया है। एक ही पुरुषगड़ी-वेशभू वर्तन के साथ आहार-पाँच पात्रका चुनौतीपूर्ण अभिनय कर जाता है। इससे अनेक खण्डों, एवं भागों में विभाजित व्यक्ति बड़ी सफलता एवं पूर्णता साकार हो उठता है। निश्चय ही राकेश की यह एक व्यतम एवं अदभुत उपलब्ध है। एवं प्रश्न 10. मोहन-राकेश के नाटक में कथावस्तु के अनुरूप भाषा-शैली प्रयुक्त हुई है।"

2.6 'आधे-अधूरे' के सन्दर्भ में इस कथन की मीमांसा

इला- मोहन राकेश की भाषा-शैली शुद्ध खड़ी बोली है। आधे-अधूरे' नाटक की भाषा- हैली नाटककार के व्यक्तित्व से युक्त स्रीची-सादी चलती हुई हिन्दी है जिसमें आरबी-काही के अतिरिक्त अंग्रेजी के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया है।

या नाटक वस्तुतः। वस्तुतः एक शिक्षित मध्यमवर्गीय परिवार से सम्बन्धित है। इसके पात्र के प्रचलित शब्दों का प्रयोग खुलकर करते हैं। अतः इसकी भाषा की हिन्दुस्तानी कहना अधिक प्रतीत होता है।

नाटक की भाषा में कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। वह सर्वत्र व्यावहारिक एवं लोक प्रबलित है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक जी कुछ कहना चाहता है उसके लिए भाषा जाने को संजोए उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है। कहीं भी लेखक की अपनी भाषा होली श्री प्रभावोत्पादक बनाने के लिए व्यर्थ का शाब्दिक व्यायाम नहीं करना पड़ता है।

आधे-अधूरे नाटक की भाषा-शैली' आधे-अधूरे नाटक की भाषा का स्वरूप समाज में प्रचलित भाषा के स्वरूप के अधिक निकट है। उसमे विदेशी शब्द का प्रयोग अधिक किया गया है। उसकी शैली प्रायः संवाद-शैली है। अन्त में जुनेजा के कयत में वह विवेचनात्मक रूप पण करती हुई दिखाई देती है। संक्षेप में उसका विश्लेषण इस प्रकार है-

शब्द-भण्डार-आधे-अधूरे नाटक में शब्दचयन के समय मोहन राकेश ने पूरी उदारता का परिव्यय दिया है। उन्होंने पात्र और अवसर के अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार संक-प्रचलित शब्दों के प्रयोग के कारण 'आधे-अधूरे' नाटक की भाषा स्वाभाविक और

अरबी-फारसी के शब्द-आरबीसी के शब्दों के प्रयोग के फलस्वरूप भाषा में -पिता और स्वाभाविकता आ गई है। कई स्थानों पर वह चटपटी सी हो गई है। पा जा, जरा, शरम, कारगुजारी, दफ्तर, कर्ज, गुजरना दरान या जिदगी, नामुळे, दफन, सेहत, खुशदिल, महराज खनाल अंग्रेजी के शब्द-इस नाटक में एक परिवारका वर्णन किया है। पाकेकऔर बड़ी शान के साथ प्रोग करते है। उरण देखिए- भोटिंग फिज कवडापनिग टेवल, बस, रह, स्टैश्य, एयर फ्रोज, आपरेशन अंकल आंबेबी कजिन, मिसेस, डिवीजन, एक्टिंग, कान इलेक्यूल, मूड आफ है, दिन-कटर, बोईजो बाई गाँड, रेस्तरां इत्यादि।

संस्कृत के शब्द आधे-अधूरे' नाटक में संस्कृत के शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग है। इनके प्रयोग के कारण अभिव्यक्ति को संजीवनी शक्ति प्राप्त हुई है और भाषा का व अपरिनिहित नहीं हो पाया है। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग तत्सम और तद्भव दोनों ही रूप

हुआ है। अभा तत्वाम शब्द अभिवादन, आकृति तटस्थता, औद्योगिक सांख्यिकी, वर्ण्य उद्योग, असम्भव, विश्वास।

तद्भव शब्द-क्रीड़ा, बन-मानुस, ब्याह, न्यौता, सचमुच, सहना, पन्ने, बरतना, धीरज बौराया, सनीचर, मुखीते इत्यादि।

शब्दों की पुनरावृत्ति एवं शब् शब्दों के दोहरे प्रयोग शब्दों की पुनरावृत्ति द्वारा अथवा उनक दोहरे प्रयोग द्वारा भाषा को सजीवता प्रदान की जाती है और वक्ता अपने कथन को बल प्रदान करता है। नाटककार ने इस प्रकार का सफल प्रयास कई स्थलों पर किया है; यथा-

कटक में एक-दो स्थानों पर अंग्रेजी के शब्दों के छायावाद भी दिखाई देते है जंग

"I have not go many years to live now" को इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि "मेरे पास अब बहुत साल नहीं है जीने को।"

आकृति धीरे-धीरे धुंधलाकर में गुम हो जाती है। उसेक बाद कमरे में अलग-अलग काने में एक-एक करके.....

रोज-रोज, यहाँ-वहाँ, पुल-घुल कर मरी जाती है, क्या-क्या होता है। कई-कई दिनों के

लिए अपने को उससे काट लेती हूँ। यह धीरे-धीरे हर चीज फिर उसी तर पर लौट आती है। जिन्दगी में तुझे भी करना-धरना है या।"

इत्यादि। चाय-वाय, हड़ताल-पड़ताल, यूनियन अनियन, मिन्नत खुशामद, सैंडविच ऐंडविच

एक दो स्थलों पर दो भाषाओं के शब्दों के संयोजक द्वारा एक नया शब्द गढ़ लिया गया है, जैसे उद्योग-सेंटर। इसमें उद्योग शब्द है संस्कृत का और सेंटर अंग्रेजी का शब्द है। मुहावरे-नाटक में अनेक लोक प्रचलित एवं नवनिर्मित मुहावरों का प्रयोग पाया जाता

है। इनके कारण भाषा में सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता आ गई है। दृष्टव्य यह है कि अधिकाश मुहावरे उर्दू को शैली के हैं; यथा-

मुँह दिखाना, तकदीर ने साथ नहीं दिया, नाहक कोसना, दावत उड़ाना, जिंदगी ख्वार करना, हवास गुम होने शुरू हुए, तुम्हीं ने हवा बाँध रखी थी... तुम्हारी शह से उसका घर में आना- जाना न होता, निवाल हो जाना, गोकि मारा-मारा फिरता है सारे दिन, रासें इस तरह कस दी जाती थी कि इन्हें मन पर लाती रहोगी, हड्डियों में जंग लग गया है, तथा सिर फिर गया है।

एक स्थान पर अंग्रेजी के मुहावरे बैटरी डाउन का भी प्रयोग किया गया है। नाटक में कतिपय स्थल ऐसे भी हैं जहाँ नाटककार मुहावरों की लड़ी सी पिरो देता है।

दृष्टव्य यह है कि ऐसे स्थलों पर शैली भावात्मक हो जाती है। उदाहरण देखिए- एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा सेको दूर मेरे सिर फोड़ने से भी किरी ठिकाने लगाना अपना अपमान हैं। ऐसे में मुझसे नहीं निभ सकती। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज का, तो क्यों अपने को चीखती रहूँ रात- -दिन ? मैं भी क्यों न सुखंरू होकर बैठ रहूँ अपनी उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा ?

इस नाटक में लोकोक्तियों का प्रभाव है। केवल एक स्थान पर सूक्तिरूप एक कथन किया है। बड़ी लड़की कहती है कि "दो आदमी जितना साथ रहें, एक हवा में साँस लें, उतनी ही ज्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करें।"

घुमा कर बात को कहना-इस नाटक में नारी पात्र भी है। वे स्वभावतः बात को घुमाकर आते है। उदाहरण देखिए-बड़ी लड़की अपने दाम्पत्य जीवन का वर्णन इस वक्र शैली में लाक्षणिक प्रयोग के सहारे करती है कि, "वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।"

स्त्री सावित्री अपने पति के बारे में छुपाकर कहती है कि उन्हें जुनेजा ने किसी काम का है था क्योंकि जुनेजा तो एक पूरा आदमी है अपने में। और वह खुद ? वह खुद एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।"

लाक्षणिक प्रयोग 'आधे-अधूरे' नाटक की भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए साककार ने लक्षण का भी सहारा लिया है। परन्तु ऐसे स्थान विरल ही हैं; यथा-खर्च की दरिया- दिलों पर तोर का असली चेक फिर उसी जगह पर। दूसरे की सख्त से सख्त बात को एक खामोशमुस्कराहट के साथ क्यों पी जाता है ?

तथा- "पर लौटने तक का कुल हासिल ?- उलझे हाथों का गिजगिजा पसीना !

आलंकारिक प्रयोग-नाटक की भाषा सामान्य बोलचाल की, सीधी-सादी भाषा है। इसमें आलंकारिक प्रयोगों का प्रायः अभाव है। केवल दो तीन स्थलों पर विरोधाभास अलंकार का प्रयोग है। यथा- "दो आदमी जितना साथ रहें, उतने ही ज्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी मासूम करें।"

यथा-

"ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती है।"

एक स्थल पर भाषा का स्वरूप ध्वन्यात्मक हो गया है। शब्दों की ध्वनि आन्तरिक भावों को व्यंजक बन गई है, यथा-"इसी तरह तुमने महेन्द्र को उधेड़ा था। कहा था कि वह बहुत

सिलिया और चिपचिपा-सा आदमी है।"

इसी प्रकार 'लपलपाती जीभ' में ही ध्वनिमूलक चमत्कार है।

कतिपय प्रयोगों में हमें विशेषण विपर्यय का चमत्कार भी दिखाई देता है; यथा- "स्त्री बड़ी नजर से उसे देखती है।"

यहाँ नजर का गुण का आरोप है। नजर कड़वी नहीं है, बल्कि देखने वाले के मन में काबाट है।

एक स्थान पर उपमा अलंकार का प्रयोग भी दिखाई देता है- "ये रिसली गुफाओं जैसी

एक-दो स्थानों पर मानवीकरण की व्यंजना भी द्रष्टव्य है, यथा- "सख्त से सख्त बात श्री एक खामोश मुस्कराहट के साथ क्यों पी जाता है।"

खामोश मुस्कराहट में 'मुस्कराहट' को मानवीकरण के द्वारा कथन को मार्मिक बनाया

पात्रानुकूल भाषा' आधे-अधूरे' नाटक के पात्र मध्यवर्ग के शिक्षित व्यक्ति हैं। स्वभावतः सौर्य मोहकृत कम शिक्षित होनी चाहिए। नाटककार ने उनके द्वारा जिस भाषा का प्रयोग कराया

है, वह सर्वथा अर्द्ध-शिक्षित नारियों जैसी है। स्त्री गर्म को गरम तथा शर्म को शरम कहती है। मूड़ी हो जाने के लिए बुढ़ा जाना शब्द का प्रयोग करती है। बड़ी लड़की स्कूटर रिक्शा के लिए पचास टूटे पैसे मांगती है।

स्त्री सावित्री गृहस्वामिनी है, कमाई करती है और साथ ही अपने मन में घुटन लिये राहती है। फलतः वह परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति असंतोष व्यक्त करती है। उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा उसके सर्वथा अनुरूप है। उसकी प्रत्येक बात से उसके मन की झल्लाहट प्रकट होती है यथा- "किन्नी.... होगी ही नहीं, जवाब कहाँ से दे ?..... फिर फाड़ लाई किताब। जरा शरम नहीं कि रोज-रोज कहाँ से पैसे आ सकते हैं?"

लड़का अशोक विद्रोही युवक है। वह किसी के प्रति श्रद्धालु नहीं है। अतः वह पांच

हजार रुपये मासिक पाने वाले माता के बॉस सिंघानिया के लिए चुकंदर शब्द का प्रयोग करता

है। यथा-चुकंदर है? वह आदमी है? जिसे बैठने का शहूर है न बात करने का।" जब सिंघानिया चला जाता है, तब लड़का अशोक अपनी अवस्था के अनुरूप अपने आपको बुद्धिमानी का ठेकेदार समझते हुए कहता है है कि, "उल्लू बना रहा था उसे।"

लड़की बीना की तरफ कटाक्षं करता हुआ अशोक कहता है कि "क्योंकि तू मनोज में प्रेम करती थी!..... खुद तुझे ही वह गुट्टी बहुत कमजोर नहीं लगती ?"

छोटी लड़की किन्नी हर समय की चख-चख से परेशान है। घर पर आने पर उसक उपयुक्त भोजन नहीं मिलता है। उलटे माँ, बड़ी बहिन तथा भाई सब उसको डाँटते-फटकार रहते हैं। यह वाणी एक 12: वर्ष बालिका के सर्वथा अनुरूप ही है कि के "बाहर से आओ, किटपि किटपिट और खाने को कोयला, अब इधर आकर इनके तमाजे और खाने हैं।"

स्त्री सावित्री अपने पति पुरुष एक महेन्द्रनाथ और जुनेजा के साथ उसकी दोनों से असंतुष्ट

है। वह उन पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि "तुम्हारे लिए तो पता नहीं क्या-क्या करेगा वह जिन्दगी में ! पहले ही कुछ कम नहीं किया है।"

इसी प्रकार वह अपने पति के निकम्मेपन को लक्ष्य करती हुई कहती है कि "तुम इनसे बिजी आदमी जो हो, पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाय।"

व्यंग्य कहने में पुरुष भी पीछे नहीं है। वह भी अपनी पत्नी के चरित्र की संदिग्धता को लक्ष्य करके यह दंशयुक्त कथन करता है कि, "जब-जब किसी नये आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहाँ, हमेशा शुक्र मानता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था.....।" तथा "सिंघानिया! इसका बॉस । वह नया आना शुरू हुआ है, आजकल।"

भावानुकूल भाषा-हम देख रहे हैं कि पात्रों की भाषा अपने भावों के अनुसार अपना स्वरूप परिवर्तित करती चलती है। उपर्युक्त उदाहरणों में हमें पात्रों के असंतोष की व्यंजना दिखाई देती है। निम्नलिखित उदाहरण में हमको सावित्री के प्रति जुनेजा की वितृष्णा एवं घृणा की व्यंजना दिखाई देती है; यथा "ऐसा क्या इसीलिए नहीं किया तुमने कि जिन्दगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम से कम नामुराद मोहरा तो हाथ में बना ही रहे।"

पुरुष एक अपने जीवन की लड़ाई प्रायः हार चुका है, परन्तु उसके मन में कुछ कहने

की छटपटाहट है। वह अपने परिवार से परेशान है। उसकी समझ में नहीं आता है कि वह क्या

करे। उसके इन भावों की झाँकी हमें उसके इस वक्तव्य द्वारा प्राप्त हो जाती है- "परन्तु मैं अपने सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता ।..... मैं वास्तव में कौन हूँ ? यह एक ऐसा सवाल है जिसका सामना करना इधर आकर मैंने छोड़ दिया है।"

पुरुष एक अपनी लड़की से उनके दाम्पत्य जीवन के बारे में प्रश्न करता है। लड़की विनों गाहती है कि इस बारे में उससे कोई बात करे क्योकि उसने माता-पिता को इच्छा विरुद्ध विवाह

किया और फिर भी वह अपने प्रेमी के साथ सुखी नहीं है। उसके मन की पुटन, झल्लाहट, विवशता, होयता भरे अनेक भाव में लिपटे दिखाई देते हैं- "तो जवाब क्या तभी होता अगर मैं यह कहती कि मैं खुश नहीं हूँ, बहुत दुःखी हूँ?"

मेरे चेहरे से क्या झलकता है? कि मुझे तपेदिक हो गया है? मैं घुल-घुल कर बी का रही हूँ ?"

इसी प्रकार पुरुष एक के निम्नलिखित वक्तव्य को सुनकर या पढ़कर कोई भी पाठक या प्रेक्षक यह अनुमान लगा सकता है कि वह भारी बौखलाहट का शिकार है तथा वह अपने शोधन से ऊब चुका है, यथा- "इन सबकी जिंदगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर में चिपका हूँ क्योंकि अन्दर दो से मैं आरामतलब हूँ, घुर-घुसरा और हड्डियों में जंग लगा है इस कथन में घर-घुसा और हड्डियों में जंग लगा है-ये दो प्रयोग बड़े ही सार्थक हैं; क्योंकि उसकी पत्नी उसके प्रति सम्भवतः इन्हीं शब्दों का प्रयोग करती होगी।

शब्द चित्र-नाटक में कई ऐसे स्थल हैं जहाँ नाटककार ने शब्द-विधान के द्वारा सुजीव चित्र उपस्थित कर दिये हैं। इन्हें हम चित्रात्मक वर्णन भी कह सकते हैं; लड़के अशोक का यह कथन द्रष्टव्य है, "जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और भी छोटे हो जाते हैं, अपनी

पुरुष तीन बड़ी लड़की बिन्नी के विषय में जब कहता है कि, "कितनी गदराई हुई लड़की बी। गाल इस तरह फूले-फले थे कि ....." तब हमारे सामने किशोरी बिन्नी की तस्वीर खींच जाती है।

पुरुष चार जुनेजा जब सावित्री के चरित्र का विश्लेषण करता है तो हमारी आँखों के सामने एक कर्कशा नारी की जीती-जागती प्रतिमा खड़ी हो जाती है, यथा- "वह इतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी एक के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती। वह आदमी भी इस तरह तुम्हें अपने आसपास

सिर पटकता और कपड़े फाड़ता नजर आता और तुम ....."

शैली-'आधे-अधूरे' नाटक की शैली संवाद-शैली है। छोटे-छोटे व्यंग्यपूर्ण वाक्यों के

प्रयोग द्वारा नाटककार अपनी शैली को प्रभावपूर्ण बनाये रखता है। बीच-बीच में प्रश्न वाचक चिन्ह लगाकर शैली को विशेष सजीव एवं प्रभावोत्पादक बनाया गया है। एक दो स्थलों पर शैली का स्वरूप भावात्मक हो गया है। ऐसे स्थलों पर पात्र भावना के प्रवाह में वह चलता है और अभी कचन में छोटे-छोटे वाक्यों की लड़ी-सी पिरोता चलता है, यथा-अपनी माता सावित्री के प्रति बड़ी लड़की का कथन, "तुम बात सकती हो। ममा, कि क्या चीज है वह ? और कहाँ है यह ? इस घर के खिड़की-दरवाजों में? छत में? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है कि मैं इस घर से अपने अन्दर लेकर गयी हूँ? बताओ ममा, क्या है वह चीज ? कहाँ पर है

वह इस घर में ? नाटक के अन्त की ओर जुनेजा सावित्री के मन की गुत्थियों का उद्घाटन करता है। है और सनेविश्लेषणात्मक पद्धति पर उसके चरित्र का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस अवसर पर शैली विवचनात्मक हो गई है, भाषा अपेक्षाकृत क्लिष्ट हो गई है तथा वाक्य लम्बे हो गये हैं। एक उदाहरण पर्याप्त है, यथा- "कि तुम्हारा मन में लगातार एक डर समाता गया है जिसके मारे कभी तुम घर का दामन थामती रही हाँ, कभी बाहर का। और कि वह डर एक दहशत में बदल गया जिस दिन तुम्हें एकबहुत बड़ा झटका खाना पड़ा.... अपनी आखिरी कोशिश में।" पुरुष दो की बातचीत के अवसर पर नाटककार ने बड़ी हो मनोवैज्ञानिक शैली का प्रयोग किया है। पुरुष दो जीने की जल्दी में हैं, वह स्त्री से अधिक बात नहीं करना चाहता है, विशेषकर लड़के की नौकरी के बारे में। स्त्री उनको लड़के की नौकरी के प्रसंग पर लाना वाहती है पुरुष दो उस प्रसंग को उत्तटना चाहता है। इस अवसर पर पुरुष दो एक अर्द्ध-विशिष्ट की तरह भूली-भूली सी बातें करता है, जो सर्वथा मनोवैज्ञानिक है।

पुरुष दो-यह लड़की?

स्त्री-नहीं, इसका नौकरी करना।

पुरुष दो-अच्छा-अच्छा, हाँ।

स्त्री-तो आपको ध्यान रहेगा-इसके लिये ?

पुरुष दो-इसके लिये ?

स्त्री-मेरा महलब है उसके लिए।

पुरुष दो-हाँ-हाँ-हाँ-हाँ..... तुम आओगी ही घर पर।

दफ्तर की भी कुछ बातें करनी है। वहीं जो यूनियन-ऊनियन का झगड़ा है। उपसंहार-उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भाषा शैली की दृष्टि

से 'आधे-अधूरे' एक सफल नाटक है और इसमें मोहन राकेश की भाषा-शैली के उत्कृष्ट रूप के दर्शन होते हैं। नाटक की भाषा सर्वथा स्वाभाविक, व्यावहारिक, चलती हुई, सरल एवं प्रभावशाली है। उसमें हमको मध्य वर्गीय परिवार का सजीव स्वरूप दिखाई देता है। शैली सशक्त एवं नाटकोचित है।

2.7 'आधे-अधूरे' शीर्षक की सार्थकता

ग्रन्थ के नामकरण के आधार-साहित्यशास्त्र के आचार्यों के मतानुसार किसी अन्य का नामकरण बहुत ही सावधानी के साथ अच्छी तरह सोच-विचार कर किया जाना चाहिए। साहित्यशास्त्र के पण्डितों के मतानुसार ग्रन्थ के नाम द्वारा ही उसका स्वरूप, वर्ण्य-विषय एवं

मन्तव्य स्पष्ट हो जाना चाहिए।

किसी ग्रन्थ का नामकरण चार प्रकार से किया जा सकता है, यथा-

(1) नायक अथवा नायिका के मन पर,
(2) किसी मुख्य घटना के आधार पर,
(3) किसी घटना स्थल के नाम पर, अथवा

(4) ग्रन्थ में निहित संदेश अथवा उसके उद्देश्य के आधार पर। इस सम्बन्ध में एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है। ग्रन्थ के शीर्षक यानी नाम में कम से कम शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। केवल एक शब्द वाला नाम सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। वैसे आवश्यकतानुरार ग्रन्थ के नामकरण में तीन शब्दों का नाम स्वीकार किया जा सकता है।

प्रस्तुत' नाटक का नामकरण'-'आधे-अधूरे' नाटक का नामकरण सर्वथा शास्त्रीय एवं मान्य पद्धति पर किया गया है। इसमें केवल दो शब्दों-'आधे-अधूरे' का प्रयोग किया गया है तथा इन दो शब्दों में ही नाटक की कुल कहानी छिपी हुई है तथा उनमें ही नाटक का संदेश भी निहित है।

नाटकका संदेश-पुरुष और नारी एक-दूसरे के पूरक हैं। वे जीवन रथ के दो पहिय है। एक-दूसरे के बिना वे 'आधे-अधूरे है। उन्हें चाहिए कि वे पारस्परिक सहयोग द्वारा अपने 'आधे-अधूरे' व्यक्ति को पूरा बनाकर समग्र जीवन का आनन्द-लाभ करें। परन्तु हम ऐसा करते कब है। हम एक-दूसरे के अभावों को देखकर अपने-अपने जीवन को अभावमय बनाते जाते

और अन्नतः अपने जीवन से भी ऊब उठते हैं। नाटककार ने 'काम कुण्ठा' के विश्लेषण द्वारा दिवाने का प्रयल किया है। इसके लिए उसने आधुनिक कालीन मनोविश्लेषको प्रादारा इन तथा आडलर के सिद्धान्तों का अवलम्बन ग्रहण हमारे जीवन में चुनाव के अवसर बहुत कम है तथा चुनाव की सार्थकता भी बहुत ही है। अतएव हमें सहिष्णुता एवं व्यवहार कुशलता के सहारे स्थिति को अपने अनुकूल अपने आपको स्थिति के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस तथ्य के उद्घाटन ही नाटककार ने आँखें खोलना कहा है। एक सीमा पर पहुँच कर पुरुष एक महेन्द्र और स्त्री सावित्री दोनों की आँखें खुल जाती है।

2.8 सारांश

इस इकाई में अकाल्पनिक गद्य विधाओं का अध्ययन किया है। जीवनी और आत्मकथा व्यक्ति के जीवन चरित्र से संबंधित विधाएँ हैं। इनका संबंध इतिहास से भी है। जब भी कोई जीवन चरित्र लिखा जाता है तब उस व्यक्ति के समय की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का उल्लेख भी किया जाता है। अपनी आत्मकथा व्यक्ति स्वयं लिख सकता है पर जीवनी लिखने के लिए उसे किसी अन्य व्यक्ति के चरित्र का चुनाव करना होता है। रेखाचित्र और संस्मरण भी परस्पर संबद्ध है। रेखाचित्रकार किसी की अंतरंगता में प्रवेश नहीं कर सकता है। वह किसी का भी बाह्य रेखा ही खींच सकता है। रेखाचित्र की रचना निर्लिम और तटस्थ होकर की जाती है। संस्मरण साहित्य गत्यात्मक है। इसमें भाव-संचरण होता रहता है। संस्मरण लेखक अंतःअनुभूति में विभोर होकर अपनी

स्मृतियों का अंकन करना है। यात्रा वृत्तांत पर्यटन में जुड़ा हुआ है और रिपोर्ताज पत्रकारिता में संबंधित है। डायरी और पत्र बेहद निजी दस्तावेज़ हैं। प्रायः इन्हें प्रकाशन के निमित्त नहीं लिखा जाता लेकिन महत्वपूर्ण पत्र और डायरी प्रकाशित होती हैं। इनमे साहित्य समृद्ध हुआ है। माक्षात्कार विधा भी ज्ञानोपयोगी है। इन सभी विधाओं का उपयोग कथा माहित्य में किसी-न- किसी रूप में किया जाता है। 'आलोचना' साहित्य की मुख्य विधा है और साहित्य की गुणवना कर मापक भी। विद्वानों के अनुसार देवराज द्वारा लिखित पुस्तक 'छायावाद का पतन' (1948ई.) में आलोचना विधा में गुणात्मक परिवर्तन आया। आलोचना विधा के कुछ प्रमुख हस्ताक्षर हैं- नामवर सिंह, विजयदेवनारायण माही, रघुवंश, विद्यानिवास मिश्र, इंद्रनाथ मदान, रमेशचंद्र शाह, सावित्री सिन्हा, निर्मला जैन इत्यादि।

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- 'आधे-अधूरे' नाटक की 'कथा बस्तु' अपने शब्दों में लिखिए।
- 'आधे-अधूरे' नाटक आज के जीवन के एक गहन अनुभव खण्ड को प्रस्तुत करता है-इस कथन के पक्ष या विपक्ष में अपना मत दीजिए। और नाटक का मूल्यांकन कीजिए।
- नाटक की कथा-वस्तु की समीक्षा कीजिए।
- आधे-अधूरे नाटक के कथानक की विशेषताएँ बताइए।
- "आधे-अधूरे" समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक है। "आधे-अधूरे " नाटक शहरी निम्न मध्यवर्ग के कुंठित स्त्री-पुरुषों के आई.
- . अधूरे बरियों का उद्घाटन करता है।"-सोदाहरण विवेचना कीजिए।
- "आधे-अधूरे बारक परिवार के तनाव और उससे उपजी विसंगतियों को सशक्त प्रस्तुति है।" सोदाहरण समीक्षा कीजिए।
- आधे-अधूरे स्त्री-पुरुष के बीच के लगाव व तनाव का दस्तावेज किय प्रकार है?
- "नाटक' आधे-अधूरे' की स्वाभाविक भाषा-शैली ने नाटक में प्राण फैक दिये हैं।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
- 'आधे-अधूरे' नाटक की रंगमंच एवं अभिनेयता की दृष्टि से मूल्यांकन
- 'आधे-अधूरे नाटक का रंग-विधान' पर टिप्पणी लिखिये।'आधे-अधूरे' हिन्दी नाटक का रंगमंच की दृष्टि से महत्व प्रतिपादित कीजिए।
- आधे-अधूरे नाटक की कथोपकथन की दृष्टि से विवेचना कीजिए।
- "कथोपकथन की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक एक सफल नाटक है।" इस
- कथन की समीक्षा कीजिए।
- मोहन राकेश के नाटक आधे-अधूरे के आधार पर संवाद योजना क्षमता का अथवा
- विवेचन कीजिए।

- महेन्द्रनाथ के रूप में राकेश जी ने आधुनिक समाज के मध्यमवर्गीय, निम्न मध्य वित्तीय परिवार के मुखिया के रूप में एक टूटे हुये व्यक्ति को' आये. अधूरे' में प्रस्तुत किया है।" विवेचना कीजिए।
- 'महेन्द्रनाथ' अर्थात् 'पुरुष एक' का चरित्र चित्रण कीजिये।
- "पुरुष एक जिंदगी से अपना लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिए है। महेन्द्रनाथ के चरित्र का विश्लेषण इस प्रकार कीजिये कि नाटककार के इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो जाये।
- "चरित्र-चित्रण की दृष्टि से आधे-अधूरे एक सफल नाटक है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
- 'आधे-अधूरे' नाटक आज के जीवन के एक गहन अनुभव खण्ड को प्रस्तुत करता है-इस कथन के पक्ष या विपक्ष में अपना मत दीजिए। और नाटक का मूल्यांकन कीजिए।
- नाटक की कथा-वस्तु की समीक्षा कीजिए।
- "आधे-अधूरे" समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक है।
- "आधे-अधूरे बारक परिवार के तनाव और उससे उपजी विसंगतियों को सशक्त प्रस्तुति है।" सोदाहरण समीक्षा कीजिए।
- आधे-अधूरे स्त्री-पुरुष के बीच के लगाव व तनाव का दस्तावेज किय प्रकार है?
- "क्या जुनेजा को आधे-अधूरे नाटक का नायक कहा जा सकता है?" कारण सहित अपने उत्तर का प्रतिपादन कीजिए।
- "सावित्री आधुनिक नारी की प्रताड़ना का सजीव प्रतिनिधित्व करती है।" स्पष्ट कीजिए।
- सावित्री के रूप में नाटककार मोहन राकेश ने " आधुनिक नारी के चारित्रिक पतन को 'आधे-अधूरे' नाटक में बड़े सशक्त और यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है-इस कथन की मीमांसा कीजिए।
- 'आधे-अधूरे' नाटक का नामकरण नाटक की मूल समस्या को उद्घाटित करने में पूर्णतः सक्षम है। व्याख्या कीजिए।
- आधे-अधूरे शीर्षक की उपयुक्तता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

2.10 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास: रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र
3. साहित्यिक विधाएँ पुनर्विचार हरिमोहन
4. हिंदी का गद्य साहित्य रामचंद्र तिवारी

इकाई – 3

हिन्दी नाटक, रंगमंच एवं उपन्यास के इतिहास की विविध प्रवृत्तियाँ और रचनाकारों पर निबंधात्मक प्रश्न।

रूपरेखा

3.1 प्रस्ताबना

3.2 उद्देश्य

3.3 शब्द संपदा

3.4 'आधे-अधूरे' नाटक में प्रतिपाद्य या उद्देश्य

3.5 कथानक के आधार पर 'गोदान' की विशेषताओं

3.6 प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का तात्विक विवेचन

3.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

3.8 सारांश

3.9 पठनीय पुस्तकें

3.1 प्रस्ताबना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। जिस क्षेत्र में भी अपनी लेखनी चलाई उसपर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। आधुनिक हिंदी के विकास क्रम में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का व्यक्तित्व अनेक दृष्टियों से अप्रतिम है। शुक्ल जी शायद हिंदी के पहले समीक्षक हैं जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने-बाने में गुंफित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का माक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया है। उन्होंने भाव या रस को काव्य की आत्मा माना है।

शुक्ल जी ने माहित्य में विचारों के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है। नलिनविलोचन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'साहित्य का इतिहास दर्शन' में कहा है कि शुक्ल जी में बड़ा ममीक्षक संभवतः उस युग में किसी भी भारतीय भाषा में नहीं थे, और यह बात विचार करने पर सत्य प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि समीक्षक के रूप में शुक्ल जी अब भी अपराजेय हैं। अपनी समस्त मीमाओं के बावजूद उनका पैनापन, उनकी गंभीरता एवं उनके बहुत में निष्कर्ष एवं स्थापनाएँ किमी भी भाषा के ममीक्षा माहित्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। इस इकाई में आप आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व और कृतित्व के आयामों का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

- प्रेमचन्द के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- प्रेमचन्द की रचनाओं से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रेमचन्द रचनाओं की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- प्रेमचन्द समीक्षा पद्धति से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी साहित्य में प्रेमचन्द के महत्व को जान सकेंगे।

3.3 शब्द संपदा

1. चमत्कार = करिश्मा

2. प्रौढ़ = अनुभवी, कुशल

3. विशुद्ध = सच्चा, पवित्र

4. सहायक = मददगार

3.4 'आधे-अधूरे' नाटक में प्रतिपाद्य या उद्देश्य

मोहन राकेश लिखित 'आधे-अधूरे' नाटक का विकास एक मध्यमवर्गीय परिवार के जीवन को लेकर किया गया है। यह परिवार पारिवारिक सुख से वंचित है। प्रत्येक सदस्य एक प्रकार की घुटन, बेचैनी और अकेलेपन का अनुभव करता है। वे एक साथ रहते हुए भी एक-दूसरे के लिए अजनबी बने रहते हैं। वे जब भी मिलते हैं, परस्पर किच-किच करते हैं श्री जल्दी से जल्दी अलग हो जाना चाहते हैं।

ग्रन्थियों का उद्घाटन-पिता यानी पुरुष एक सोचता है कि परिवार में उसका कोई उपयोग नहीं रह गया है और उसको गम्भीरतापूर्वक इस तथ्य पर विचार करना चाहिए कि उसको क्या इसका से अलग नहीं हो जाना चाहिए, यथा- "सचमुच करता हूँ। मुझे पता है मैं एक हूँ जिसने सदा ही अन्दर इस घर को खा लिया है। पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है। और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहता हूँ यहाँ ?

स्त्री सावित्री यानी गृह-स्वामिनी भी घर गृहस्थी से ऊबी हुई दिखाई देती हैं। वह बात पछि उलाहना देती है कि वह घर वालों के लिये करते-करते ऊब उठी है। परिवार के समस्त सदस्य उसका मात्र शोषण करते हैं तथा उसकी सेवाओं के महत्व को समझते नहीं हैं। वह प्रायः घर को छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाने की बात करती है, यथा- "मेरा पास अब बहुत साल नहीं है जीने को। पर जितने हैं, उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुये नहीं कादूँगी। मेरे करने से में कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से अब अन्त है उसका।"

लड़का अशोक चाहता है कि वह बेगाना महसूस करता है तथा लड़की बिन्नी कहती है क वह बेगानी महसूस करती है।

आखिर ऐसा क्यों? इसी प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करना सम्भवतः इस नाटक का उद्देश्य है। पुरुष जीवन की लड़ाई में प्रायः पराजित हो चुका है। वह किसी भी तरह यह विश्वास कान लगा है कि वह बेसहारा है तथा उसकी पत्नी उसका एक मात्र सहारा है। उसकी पत्नी पुरुष का अदन हरित पति का दर्शन नहीं करती है। उल्टे उस पर बात पीछे झल्लाती हते है। परिणामतः वह अपने मन में एक घुटन का अनुभव करता है। उसको घुटन का मूल कारण है उसको हीन भावना पो उसकी पत्नी ने उसके मन में बैठा दी है। नाटक में इसी परिप्रेक्ष्य * पुरुष एक को हीन भावना जो उसकी पका है। उसका मनोविश्लेषण निष्कर्ष है। युग का हीन भाव है। केदों में वह इस प्रकार है. "आज महेन्द्र एक कढ़ने वाला आदमी है। एक कथा जब वह महँसता था। अन्दर से हंसता था। पर यह तभी था जब कोई पर यह साबित करनेवाला नहीं था कि कैसे हर लिहाज से वह हीन और छोटा है- इससे आये मुझसे सभी से जब कोई उससे यह हीन कहने वाला नहीं था कि जो-जो वह नहीं। यहाँ-वही उसे होना चाहिये, और जो वह है....." इसलिये ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि

जुनेजा का यह विश्लेषण इसी प्रकार का संकेत दे चुकी होती है- "पर असल में आदमी होने के लिये क्या जरूरी नहीं है कि उसमें एक माहा, अपनी एक शख्सियत हो ....." इसके पूर्व सावित्री

आप इस शरियत के अनुभव को देखकर वह यहाँ तक कह देती है कि "मत कति मुझे महेन्द्र की पत्नी...."

सावित्री की कुण्ठा का परिचय हमें सिंघानिया के आने की सूचना के साथ ही प्राप्त ते। जाता है। पति-पाली बात पीछे झगड़ते दिखाई देते हैं। पत्नी सिंघानिया को आमन्त्रित करती है। आता लक्ष्य है सिंघानिया के द्वारा लड़के की नौकरी लगाना। इतना हितकारी लक्ष्य होने पा

श्री महेन्द्र (एक पुरुष) को सिंघानिया का आना रुचिकर प्रतीत नहीं होता है। आखिरकार यह यों है? इसका उत्तर नाटककार हमें तत्काल दे अस्वाभाविकता क्यों देता है। सावित्री इस प्रकार में विभिन्न पुरुषों को घर बुलाने की अभ्यस्त है। वह महेन्द्र के साथ न रह कर अन्य पुरुष के साथ रहना अधिक पसन्द करती है। स्वणेभावतः पुरुष एक को यह अच्छा नहीं लगता है। इसी कारण वह विरोध प्रकट करता है। उसका विरोध इस कारण अप्रभावी रह जाता है, क्योंकि वह स्वयं बेकार है और सावित्री एक कार्यालय में नौकरी करके घर का खर्च चलाती है। पुरुष कड़ता है कि, "जब-जब किसी नये आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था .....।"

तथा- "क्यों जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हो गये ?

मनोज का नाम आते ही स्त्री रोक देती है कि "और क्या-क्या बात रह गई है कहने को बाकी।"

मनोज लड़की का प्रेमी है। इसी कारण सावित्री भी एकदम उछलती है और पुरुष भी साब कुछ जानते हुये चुप हो जाता है और जगमोहन का नाम लेकर स्पष्ट कर देता है कि वह अब भी जगमोहन के चक्कर में है।

स्त्री सर्वाधिक जुनेजा से अप्रसन्न दिखाई देती है। उसका नाम आते ही वह आवेश में आ जाती है। वह कहती है कि जुनेजा के कारण ही उसके पति की और उसके घर की बर्बादी हुई है। यह नहीं चाहती है कि जुनेजा उसके घर में क्षकि भी तथा उसका पति जुनेजा का नाम भी ले।

यटककार कया को इस प्रकार विकसित करता है कि सावित्री जगमोहन के साथ भाग जाने का प्रयत्न करती है और उसको बुलाकर स्वयं ही उसके साथ रहने का प्रस्ताव भी करती है। । एक दिने उत्तरार्द्ध में जुनेजा सावित्री से कहता है कि तुम्हें महेन्द्रनाथ कभी रुचिकर नही सारित तुम बात करने के लिए ही खास आयी केक तयहें महेन्द्रनाथ कच्चे पर सिर रखे बहुत ही दिन भी तुमने महेन्द्र के सामने उमेड़ा था। कहा था वह बहुत लिजलिजा और चिपचिपा आदमी था।"

बनाने वालों में तब तुमने उसके माता-पिता का नाम लिया था, मेरा नाम नहीं

इससे क्योंकि जुनेजा उसको अपने कर चुका है। यह दमित कामेच्छा ही सावित्री को जुनेजा की विरोधी बनाये हुये है।

सावित्री की दमित कामेच्छा उसको तथाकथिक दुराचारिणी बना देती है। सावितो जुनेजा शिवजीत, जगमोहन तथा मनोज के प्रति आकर्षित रहती है। अवसर का लाभ उठाने के लिये प्रयत्नवान रही है। महेन्द्र के साथ रह कर वह अभाव की पूर्ति के लिए यह ग्ररवक

जुनेजा का कथन प्रमाण है, "तुम्हारे मन में, लगातार एक डर समाता गया है जिसके मारे क तुम घर का दामन थामती रही हो, कभी बाहर का.....पर तुम एकदम बौरा गई। जब अपने पाया कि उतने नाम वाला आदमी तुम्हारी लड़की को र साथ लेकर रातों- -रात .....। इसका कारण यह है कि सावित्री के दिमाग में यह बात आ गई कि उसने एक गलत आदमी शादी कर ली थी।

हब फिर सावित्री महेन्द्र को छोड़ती क्यों नहीं है। इसका उत्तर यह है कि एक पैर जमाने के बाद ही दूसरा पैर हटाना चाहिये। जब तक कोई अन्य प्रबन्ध न हो जाय, तब तक जो गाँठ वई, उसे भी क्यों छोड़ा जाय ? कम से कम एक आड़ तो है ही। इसी मनोवृत्ति को लक्ष्य करके इलेवा सावित्री से कहता है कि, "जिंदगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम-से-कम यह नामुराद बारा तो हाथ में बना ही रहे ?"

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आखिरकार सावित्री के मन में यह बात क्योंकर बैठ यां कि उसने गलत आदमी से शादी की थी। इस प्रश्न का उत्तर नाटककार प्रकारान्तर से सावित्री के द्वारा दिलवा देता है। सावित्री आवेश में आकर अपने मन के गुबार को निकालती है। उसका बारा है कि महेन्द्रनाथ ने मेरी भावनाओं की परवाह कभी नहीं की थी। उसने सदैव अपनी मर्जी के मुताबिक मुझे चलाना चाहा। ऐसा करते समय वह मनुष्योचित व्यवहार को तिलांजलि देकर एक जंगली व्यक्ति की भांति व्यवहार करता था। यथा- "दोस्तों के लिए जो फुरसत काटने का सोला है, वही महेन्द्र के लिये उसका मुख्य काम है जिन्दगी में। और उसका ही नहीं, उसके या के लोगों का भी वही मुख्य काम होना चाहिये।..... वही महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बू- सक्ना हल्के-हल्के मुस्कराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है।..... वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल-बोल चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूँ ?..... पर सावित्री फिर भी नहीं चलती।..... वह नफरत करती है इस सबसे-इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिये... एक - पूरा आदमी। कभी इस आदमी को वह वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी लाप कर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है..... इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सावित्री की कुण्ठा का निष्कर्ष इस प्रकार ठहरता है। महेंद्र ने सावित्री की भावनाओं का ख्याल नहीं किया, उससे मनमानी करवाना चाहा, सम्भवतः उसको अपने मित्रों के मनोरंजन की सामग्री बनाना चाहा। सावित्री को यह रुचिकर नहीं हुआ। शमोन्द्र की विरोधी बन गई और अत्यन्त दमित इच्छाओं की पूर्ति के अवसर देखने लगी।

गुरेजा ने सर्वप्रथम उनको निराश किया था। इस कारण वह जुनेजा की विरोधी बन जाती है। मनोज उसकी अन्तिम शरण थी। वह भी एक प्रकार से उसको धोखा देता है। अतः बह एकदम निराश हो जाती है। हमारी उससे भेट इसी स्थिति में होती है। इसी कारण सावित्री अपने मकव्यवहार में हमको बौराई हुई सी दिखाई देती है।

यह महेन्द्र से घृणा करती है परन्तु स्वार्थवश बेसहारा भी नहीं होना चाहती है। यह उसको गरिवंचित कुटिलता है कि उसने महेन्द्र को अपना दीवाना बना रखा है।

सावित्री के चरित्र की दुर्बलता को उसकी सन्तान भा देखता है और व भी उगा गस्ते पर चलने लगते हैं। सावित्री उन्हें रोकने में असमर्थ है-होना ही चाहिए।

निष्कर्ष-नाटककार का उद्देश्य है आधुनिक मनोविश्लेषण के आधार पर मध्यमना परिवारों में व्याप्त कलह एवं कुण्ठा का विश्लेषण प्रस्तुत करना। उसने फ्रायड तथा आडलर के सिद्धान्तों के आधार पर सावित्री के अस्वाभाविक व्यवहार का विश्लेषण किया है तथा गुग के हीन भावना सिद्धान्त के आधार पर महेन्द्र की जहालता का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यहां विश्लेषण वह जनुजा के माध्यम से प्रस्तुत करता है, क्योंकि जुनेजा इस परिवार के साथ दूध- एने की आवश्यकता नहीं है कि नाटककार अपने उद्देश्य में शक्कर की तरह घुला मिला है, कहने की पूर्णतः सफल हुआ है। उसने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जीवन में चुनाव बहुत कम है। हमें जिनके साथ रहना है, उनके ही साथ अच्छी तरह रहने का प्रयत्न करें। सब चीजें किसी को भी एक जगह अथवा किसी एक व्यक्ति से प्राप्त नहीं हो सकती हैं, प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई अभाव होता ही है, जैसा कि जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन, मनोज आदि के विषय में चर्चा करते हुए संकेत करता है।

पारिवारिक जीवन या दाम्पत्य जीवन की सफलता का सूत्र यह है कि पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे को पूरक समझें। एक के बिना दूसरा आधा-अधूरा है। पुरुष को चाहिए कि वह

नारी की भावनाओं का दमन करके उसके मन में अपने प्रति घृणा एवं विरोध उत्पन्न न करे। पतन की प्रवृत्ति उत्पनन हो जाने पर पतन की सीमा नहीं रह जाती है।

जीवन में चुनाव के अवसर बहुत कम है। अवगुण और कमियाँ सब में हैं। साथ रहने पर हमारे सामने साथी के अवगुण अधिक आते हैं। । इससे लड़की बिन्नी कहती है कि हम जितना भी ज्यादा साथ रहते हैं..... उतना ही ज्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करते है-"Much familarity breads contempt."

जुनेजा से बात करने के बाद सावित्री जुनेजा से कहती है कि वह महेन्द्र से कहे कि वह वस्तु स्थिति को समझे, इसकी आँखें तो खुल गई हैं। संयोगवशात् महेन्द्र वहाँ स्वयं ही आ जाता है। सम्भवतः अब वे दोनों व्यक्ति एक पूरी दुनिया का आनन्द ले सकेंगे।

इसी से यथास्थिति अनुकूलता एवं व्यवहारकुशलता को मानव विकास का सर्वोपरि लक्षण माना गया है। 'आधे-अधूरे' नाटक बड़ी ही कलापूर्ण शैली पर हमें उक्त आदर्श के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करता है।

संकेत- कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ न कुछ होता है, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि जो कारण दिया जाए, वास्तविक कारण वही हो। और जब मैं अपने ही सम्बन्ध में निश्चित नहीं हूँ, तो और किसी चीज के कारण-अकारण के सम्बन्ध में निश्चित कैसे हो सकता हूँ ?

सन्दर्भ-प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा विरचित नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है।

प्रसंग-यह एक ऐसे पुरुष का स्वगत कथन है जो नाटक में प्रथम पुरुष के रूप में हमारे सामने आता है।

व्याख्या-काले सूट वाला पुरुष अपने बारे में सोचता है कि वास्तव में क्या है ? संसार रूपी इस रंगमंच पर किसी अन्य के द्वारा परिचलित अभिनेता मात्र अथवा इससे अधिक कुछ ? क्या इस विश्व-प्रपंच के संचालन में उसका भी कुछ सहयोग सम्भव है? वह स्वयं उत्तर देते हुए कहता है कि इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। वह इस दुनिया की मशीन का एक पुर्जा मात्र भी हो सकता है और इस दुनिया के नाटक को चलाने में सहायता करने वाला व्यवस्थापक के स्थान पर भी हो सकता है। स्थिति के अनिश्चित होने का कुछ-न-कुछ कारण तो होगा ही। इत्ययेक कार्य का कारण होता है और प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक कार्य का कारण बताना चाहता है, मैं भी इस सम्बन्ध में कोई न कोई कारण निर्धारित करना चाहूँगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जो भी कारण बता दूँ, वही वस्तुतः वास्तविक कारण हो। इस अनिश्चित स्थिति में मैं कारण न बताना ही ठीक समझता हूँ और जब मैं अपनी स्थिति के बारे में ही वस्तु- स्थिति को बड़ी समझता हूँ तब अन्य किसी के विषय में मेरा कुछ भी कहना अनुपयुक्त ही होगा। विशेष- (1) यह एक ऐसे व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व है जो जीवन की लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिए है। (2) व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने बारे में गहराई से विचार करे-अन्य लोगों के बारे में कम सोचे।

2. संकेत- दो टकराने वाले व्यक्ति होने के नाते आपमें और मुझमें, बहुत बड़ी समानता है। यही समानता आपमें और उसमें, उसमें और उस दूसरे में, उस दूसरे में और मुझमें..... बहरहाल इस गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है। बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी न-किसी अंश में आप में से हर एक व्यक्ति हूँ और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अंदर, मेरी कोई भी एक निश्चित भूमिका नहीं है।"

सन्दर्भ-पूर्ववत् ।

प्रसंग-कालू सूट वाला व्यक्ति मानव जीवन के अनिश्चित क्रम पर प्रकाश डालता है। व्याख्या-जीवन की समस्याओं से संघर्ष करने वाले दो व्यक्ति जब अनायास मिलते

है, तब वे प्रायः एक ही कोटि के व्यक्ति हैं? इस प्रकार से मिलने वाले प्रायः समस्त व्यक्ति समान होते है, क्योंकि वे सबके सब अपनी परिस्थितियों के दास होते हैं। अतः इस प्रकार मिलने वाले माक्तियों में छोटे-बड़े का हिसाब लगाना व्यर्थ है। वैसे हम सब समाज के अभिन्न अंग है परन्तु व्यक्ति होने के नाते समाज से स्वतन्त्र रूप में आचरण करते हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक माक्ति स्वतन्त्र आचरण करता हुआ भी समाज के अन्य व्यक्तियों से सम्बद्ध रहता है और यही कारण है कि व्यक्ति चाहे स्वतन्त्र रहे अथवा समाज का अंग होकर रहे उसके जीवन-क्रम की रूप-रेखा निश्चित रूप से निर्धारित नहीं की जा सकती है।

विशेष - 1. उसमें और इस दूसरे में गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है ज्यामिति का गिद्धान्त है जो दो रेखाएं एक किसी तीसरी रेखा के समान्तर होती है, तो वे पर भी समान्तर होती हैं। इस सिद्धान्त को यदि हम मानव जीवन पर लागू करके मनुष्यों को प्रणावर की सामानहारती यह व्यर्थ होगा। मानव जीवन की समस्याएँ गणित की पहेलियों की भौतिक सुलझाई जा सकती हैं। यसकारण है नहीं है-मानव का जीवन दोहरा है-वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों ही दशाओं में वह परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार की प्रेरणा करता है। दर्शन की नाह 2. में वह नियति की डोरी में बंधा रहता है। जीवन को नाटक कहना यही द्योतित करता है।

3. इस स्वगत कथन में जीवन-संघर्ष से पराजित व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्र अभिव्यक्त है। जीवन के थपेड़े व्यक्ति को सामाजिक प्राणी एवं भाग्यवादी बनने को विवश कर ही देते हैं। 3. संकेत-" उसके हाथ में छलक गई चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती हैं। एक गुबार-सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब

कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूँ!" प्रसंग-बड़ी लड़की की अपने पति के साथ खटपट होती रहती है। उसी का विश्लेषण वह अपनी माता (स्त्री) के सामने करती है।

व्याख्या-हमारे मध्य ऐसी छोटी-छोटी बातों पर रुकावट उत्पन्न हो जाती है, जिनके कारण सामान्यतः कोई दिक्कत होनी नहीं चाहिए, जैसे कभी हाथ में चाय की प्याली का झलक जाना अथवा दफ्तर से आने में आधा घंटा देर हो जाना। पता नहीं क्या बात है, परन्तु स्थिति यह है कि मेरे मन में एक प्रकार की परेशानी सदैव घुटन पैदा करती रहती है और मैं इस अवसर की प्रतीक्षा करती रहती हूँ। जब मुझे अपने मन की भड़ास निकालने का बहाना मिल जाय।

विशेष-वर्णन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं तथ्यपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष एक, स्त्री और बड़ी लड़की हमारे जाने-पहचाने पात्र हैं। इतना ही क्यों, कहीं हम दोनों इनके माध्यम से तो नहीं बोल रहे हैं?

4. संकेत- मत कहिए मुझे महेंद्र की पत्नी। महेंद्र भी एक आदमी है, जिसका अपना घर- बार है, पत्नी है, यह बात महेन्द्र को अपना कहने वालों को शुरु से ही रास नहीं आई। महेन्द्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नजर में आपका ही कुछ आपसे छीन लिया। महेन्द्र अब पहले की तरह हँसता नहीं। महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नहीं। महेन्द्र अब वह पहले वाला महेन्द्र रह ही नहीं गया। और महेन्द्र ने जी-जान से कोशिश की, वह वही बना रहे किसी तरह। कोई यह न कह सके जिससे कि वह अब पहले वाला महेन्द्र रह ही नहीं गया। और इसके लिए महेन्द्र घर के अन्दर रात-दिन छटपटाता है। दीवारों से सिर पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है। दोस्तों को अपना फुरसत का वक्त काटने के लिए उसकी जरूरत है। महेन्द्र के बगैर कोई पार्टी जमती नहीं। महेन्द्र के बगैर किसी पिकनिक का मजा नहीं आता था। दोस्तों के लिए जो फुरसत काटने का बसीला है, वही महेन्द्र के लिए उसका मुख्य काम है

जिन्दगी में। प्रसंग-सावित्री का कथन है जुनेजा के प्रति। इसका कहना है कि दोस्त के कारण महेन्द्रनाथ की यानि उसका दाम्पत्य जीवन नष्ट हो गया है।

व्याख्या-आप मुझे महेन्द्र की पत्नी कह कर न पुकारें क्योंकि मैं उसके जीवन में म अर्थों में पत्नी का स्थान प्राप्त नहीं कर सकी हूँ। जो लोग महेन्द्र को अपना मित्र कहते हैं उन यह बात कभी रुचिकर नहीं लगी कि महेन्द्र एक व्यक्ति की भाँति विशेषताओं को लेकर रह और अपने परिवार तथा अपनी पत्नी के प्रति सम्यक् प्रकार के उत्तरदायित्व का निर्वाह करें। महेन्द्र का विवाह होते ही आप लोगों ने तो यह समझा कि आपका महेन्द्र आप से छिन गया है और आपकी भारी क्षति हुई है। विवाह के होते ही आप लोगों ने इस तरह की फब्तियां कसनी शुरू काटी कि महेन्द्र ने हँसना बंद कर दिया है, वह मित्रों में बैठ कर पहले की तरह न हँसता है और न खुल कर बात ही करता है। आप लोगों को क्रिकेटबाजी से जान बचाने के लिए महेन्द्र ३ भी यह कोशिश की कि विवाह के कारण उसके जीवन में किसी प्रकार का परिवर्तन न आने पावे। उसने जी-जान लगाकर कोशिश की कि यह पूर्ववत् बना रहे, जिससे कोई यह न कह सके कि महेन्द्र पत्नी के प्रभाव के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को खो बैठा है। परिणाम यह हुआ कि घर के अन्दर और घर वालों के पास रहते हुए महेन्द्र इस बात की पूरी कोशिश करता था कि वह घर का और घर वालों का न बन जाय। वह आप लोगों के प्रति पूर्ण एवं पूर्ववत् निष्ठा व्यक्त करने के लिए अपने परिजन के प्रति अनेक प्रकार से विरोध एवं विद्रोह प्रकट करता है। वह घर में बेचैनी का अनुभव करता है, दीवारों से सिर मारता है, बच्चों को पीटता है, अपनी पानी पर हाथ उठाता है आदि। इसके कारण है केवल उसके दोस्त, जिन्हें अपना मनोरंजन करने के लिए उसकी आवश्यकता है। वे इस प्रकार की बातें करके महेन्द्र को काठ पर रखते हैं कि चार, तुम्हारे बिना किसी पार्टी में रौनक नहीं आती है, किसी भी गोष्ठी या गोट में मजा नहीं आता है। पार्टी और पिकनिक में उसके मित्र जाते हैं केवल मन बहलाने के लिए, फुरसत का वक्त काटने के लिए। परन्तु पार्टियों और पिकनिके महेन्द्र के लिए जीवन का प्रमुख अंग बन गई हैं। विशेष-सावित्री के कथन में एक पत्नी का आक्रोश अभिव्यक्त है। मित्र महेन्द्र जैसे सीधे- मरचे व्यक्तियों को काठ पर रख कर किस प्रकार उसका पारिवारिक जीवन नष्ट कर देते हैं।

5. संकेत- वह नफरत करती है इस सबसे इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए एक पूरा आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फर्क पड़ने लगता है इस आदमी में, तो दोस्तों में इनका गम मनाया जाने लगता है। सावित्री महेन्द्र की नाक में नकेल डालकर उसे अपने ढंग से चला रही है। सावित्री बेचारे महेन्द्र की रीढ़ तोड़कर उसे किसी लायक नहीं रहने दे रही है। जैसे कि आदमी न होकर बिना हाड़ माँस का पुतला हो वह एक बेचारा महेन्द्र !

प्रसंग-महेन्द्र अपनी पत्नी से अपेक्षा करता है कि वह इस प्रकार रहे जिससे उसकी मित्र मण्डली का अनुरंजन हो। इसके लिए वह पत्नी को दण्डित प्रत्ताड़ित भी करता है, परन्तु सावित्री कुल-ललना की भाँति केवल महेन्द्र को ही जुनेजा से इसी विषय स्थिति के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती है-

व्याख्या-मित्री की इच्छानुसार व्यवहार करने की बात मुझे अरुचिकर लगती है। मैं पति को स्वतन्त्र आचरण करने वाले व्यक्ति के रूप में देखना चाहती हूँ जो मेरे साथ पूर्णता का

अनुभव कर सके। ऐसा करने के लिए कभी मैं पूरी शक्ति के साथ अपने पति को उपदेश देती और कभी उसकी इच्छानुसार बनाने। का प्रयत्न करती हूँ। इस प्रयत्न में अपने आपको असफल होता देखकर दुःखी हो उठती हूँ और घर-द्वार छोड़कर चली जाने की इच्छा करने लगती हूँ।

मेरे प्रत्ययी के फलस्वरूप महेन्द्र में यदि जरा-सा भी परिवर्तन हो जाता है, तो बस उसके मित्र दुःखी हो उठते हैं। वे शोक संतृप्त होकर इस प्रकार की बाते कहने लगते हैं कि सावित्री ने तो महेन्द्र को अपने कब्जे में कर लिया है और उसको मनमाने ढंग पर चला रही है। सावित्री महेन्द्र के मूल व्यक्तित्व को समाप्त किए दे रही हैं और वह एकदम बेकार हो जाएगा। मेरे प्रति आकर्षित महेन्द्र को उनके मित्र इच्छा शक्ति-विहीन केवल हाड़-मांस का पुतला * और हराजे पनि दिखावटी सहानुभूति प्रकट करते हैं। कहते

6. संकेत "देखा है कि जिस मुट्ठी में तुम कितना कुछ एक साथ भर लेना चाहती थी, उसमें जो था वह भी धीरे-धीरे बाहर फिसलता गया है कि तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया है जिसके बामती रही हो, कभी बाहर का।" मारे कभी तुम घर का दामन थामतीर और कि यह डर एक दहशत में बदल गया। जिस दिन तुम्हें बहुत बड़ा झटका खाना पड़ा

- अपनी आखिरी कोशिश में। प्रसंग-सावित्री के प्रति जुनेजा का कथन है। जुनेजा का कहना है कि विलास-प्रियता सावित्री के पतन का कारण रही है।

व्याख्या-जी हाँ, मैंने अन्य व्यक्तियों को भी देखा है, मैंने यह भली प्रकार देख लिया है कि तुम महेन्द्रनाथ के माध्यम से यौवन का भोग एक साथ कर डालना चाहती थीं। इसका परिणाम विपरीत हुआ। महेन्द्रनाथ तुमको जितना दे सकता था, , उतना भी नहीं दे सका और क्रमश. तुमसे दूर होता गया। तुम्हारे मन में यह भय समा गया था कि यौवन पूर्ण भोग के पूर्व ही कही समाप्त न हो जाए। परिणाम यह हुआ कि कभी तुम महेन्द्रनाथ को पकड़ती थीं और कभी अपनी वासना की तृप्ति के लिए अन्य व्यक्तियों की ओर देखती थीं। मन की। यह इस चंचलता की परिणति हुई कि तुम पुरुष से आतंकि हो गई हो। ऐसा तब। जब तुम मनोज नामक युवक को हुआ अपनी बास्स्ना का लक्ष्य बनाना चाहती थीं और वह तुम्हारे चंगुल में नहीं आया।

विशेष (1) भाषा में लक्षणा का चमत्कार द्रष्टव्य है- जिस मुट्ठी में तुम कितना कुछ एक साथ भर लेना चाहती थी, वह धीरे-धीरे फिसलता गया। (2) मुहावरा दामन थामना, झटका खाना। (3) इस कथन पर फ्रायड का गहरा प्रभाव है। काम-वासना की तृप्ति की इच्छा ही सावित्री के जीवन को अभिशप्त बना देने का मूल कारण बनी है।

7. संकेत- इसलिए आज यह उसे बरदाश्त भी नहीं कर सकती। (स्त्री से) ठीक नहीं है यह ? बिन्नी के मनोज के साथ चले जाने के बाद तुमने एक अंधाधुंध कोशिश शुरू की - कभी महेन्द्र को ही और झकझोरने की, कभी अशोक को ही चाबुक लगाने की, और कभी उन दोनों से धीरज खोकर कोई और ही रास्ता, कोई और ही चारा ढूंढ सकने की। ऐसे में पता चला जगमोहन यहाँ लौट आया है। आगे के रास्ते बंद पाकर तुमने फिर पीछे की तरफ देखना चाहा। आज अभी बाहर गई थी उसके साथ। क्या बात हुई ?

प्रसंग-जुनेजा सावित्री के चिन्तन का विश्लेषण करते हुए कहता है कि वह अपनी पुरानी भूख को लेकर ही अभी थोड़ी देर पहले जगमोहन के साथ गई थी। जुनेजा का यह कथन बड़ी लड़की बिन्नी के प्रति प्रारम्भ होता है और समाप्त होता है सावित्री (स्त्री) के प्रति।

व्याख्या-यद्यपि बिन्नी मनोज के साथ पत्नी बन कर रह चुकी है तथापि सावित्री मनोज को बिन्नी की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानती है। चूंकि सावित्री मनोज को प्राप्त न कर सकने के कारण कुंठित हो गई, इसीलिए उसको मनोज

किसी रूप में अच्छा नहीं लगता है। हे सावित्री! तेरा यह व्यवहार उचित नहीं है। बिन्नी जब मनोज के साथ चली गई, तब तुमने कभी अपने पति महेन्द्रनाथ को उकसाकर और कभी अपने पुत्र अशोक को उल्टी सीधी बातों द्वारा उत्तेजित करके, परिणाम को सोचे बिना इस बात की पूरी कोशिश की कि तुम्हारे पति-पुत्र किसी प्रकार बिन्नी से मनोज ज को अलग कर दें। परन्तु जब तुम उनके माध्यम से अपनी इच्छा पूरी न कर सकीं और उनकी ओर से निराशा हो गई, तब तुमने अपनी वासना पूर्ति का अन्य मार्ग एवं अन्य अवलम्बन

खोजना चाहा। इतने में तुम्हें पता लगा कि जगमोहन वापस आ गया था। तब तुमने यह सोचा कि इस स्थिति एवं अवस्था में नया प्रेमी पा सकना कठिन है. क्यों न इस पुराने प्रेमी के ही पास चली जाऊँ? बस तुम, इसी विचार को लेकर अभी कुछ समय पहले उसके साथ बाहर गई थीं। कहो तो बताऊँ कि उसके साथ तुम्हारी क्या बातें होगी ?

विशेष-मुहावरों का प्रयोग अत्यन्त सार्थक है।

* संकेत-"अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिंदगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार में है। फिर कारचे घर के चिपका हूँ क्योंकि कि अन्दर से मैं आराम-तलब हूँ, घरघुसरा है, हरिय जंग लगा है।"

प्रसंग-दोनों लड़कियों, लड़का तथा पत्नी के अपने प्रति व्यवहार से पुरुष एक खोझ हठता है।

व्याख्या-पुरुष एक खीझ कर अपनी पत्नी को सुनाता हुआ कहता है कि वस्तुतः इस या को बबर्बाद करने को जिम्मेदारी मेरी है। मैने अपनी जिन्दगी को बर्बाद कर डाला तुम्हारी जिन्दगी तो बिगाड़ दिया तथा अपने सब बच्चों के जीवन को व्यर्थ बना दिया है। मैं किसी योग्य न होकर थे इस घर के लोगों के किसी काम का न होकर भी क्या मालूम इस घर को छोड़ क्यों नहीं पाता हैं? इसका कारण सम्भवतः यही है कि मुझे आराम से रहने के आदत पड़ गई है, मैं अपने शरीर कहो हिलाना-डुलाना नहीं चाहता हूँ। मैं घर से बाहर नहीं जाना चाहता हूँ और मेरी आराम से पाने के कारण मेरी हड्डियाँ हिलने-डुलने में असमर्थ हो गई है।

विशेष-1. पुरुष एक का मानसिक क्षोभ स्वयं व्यक्त है। इसके अन्तर्द्वन्द्व में उसके को डॉवन की असफलता एवं जीवन के प्रति उसकी वितृष्णा अभिव्यक्त है। 2. बुढ़ापे में परिवार के लोग किस प्रकार उपेक्षापूर्ण व्यवहार करने लगते हैं, यह इस कथन द्वारा एकदम स्पष्ट है। 3. भाषा मुहावरेदार है। यथा-घर से चिपकना, घरघुसरा हड्डियों में जंग लग जाना।

4. शैली भावात्मक है। छोटे-छोटे वाक्य हैं तथा प्रश्नोत्तर के द्वारा भाव प्रवाह चलता है। २. संकेत- कैसी बात कर रही हूँ? यहाँ सब लोग समझते क्या हैं मुझे ? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है? अगर किसी के मन में जरा सा भी खयाल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं"

प्रसंग-पुरुष एक की भांति स्त्री भी अपने परिवार से खीझ उठती है। व्याख्या-बड़ी लड़की माता के व्यवहार पर आश्चर्य व्यक्त करती है। स्त्री खीझ कर कहते है कि तुम्हें ताज्जुब हो रहा है मेरी बातों पर, मैं किस प्रकार की अजीब बातें कर रही हूँ? सहाँ इस परिवार के सब लोग मुझे मेरी स्थिति की वास्तविकता को न समझ कर मुझे अत्यन्त तुच्छ सकते हैं? मेरे विचार से तो वे मुझे केवल कमाने और खाना बनाने की मशीन समझते हैं यानी तुम सब लोगों की नजर में मेरा केवल एक ही काम है-दिन भर कमाऊँ और तुम्हें खिलाती रहूँ- तुम लोग मुझसे केवल यही आशा करते हो कि मैं वक्त बे वक्त काम करती हूँ-न मेरे आराम का कोई समय है और न काम करने की सुविधाओं का मेरे लिए कोई अर्थ ही रह गया है।

विशेष-1. आधुनिक युग के बालक अपने माता-पिता को किस उपेक्षा के साथ देखते है। यह स्त्री के कथन द्वारा स्पष्ट स्पष्ट है।

2. लोकोक्ति का प्रयोग-रात को दिन और दिन को रात करते रहती हूँ। 10. संकेत- "अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क है कंपनी के सो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते है। जापान से तो पूरा एक प्रतिनिधि-मण्डल ही आया हुआ था पिछले दिनों। कुछ भी कहिए, जापान ने इन सबकी नाक में नकेल कर रखी है आजकल। अभी उस दिन जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था--।

प्रसंग-पुरुष दो आत्म-श्याला सी करता हुआ है।

व्याख्या-मैं जिस कम्पनी में काम करता हूँ इसका व्यापार अनेक देशों के साथ है। अभी दिनको कानों से व्यापार सम्बन्धी वार्तालाप करने हेतु जापान आपरियों के कुछ प्रतिनिधि आए हुए थे। उनकी बाते और उनके काम बहुत ही उच्च कोटि के हैं। उन्होंने अन्य देशों के व्यापारियों को नाच नचा रखा है, यानी समस्त व्यापार अपने ही हाथो में ले रखा है। मैं इस निर्णय पर उद्योग सम्बन्धी उन आँकड़ों को देख कर पहुँचा हूँ जो मैंने पिछले वर्ष पढ़े थे। विशेष-विदेशों से सम्पर्क होना हमारा शिक्षित वर्ग बड़े ही गर्व की वस्तु मानता है। इसी हीन भावना के प्रति संकेत है।

11. संकेत- यूँ तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता-फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है.....। पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा अपनी एक शख्सियत हो ?

प्रसंग-जुनेजा के प्रति सावित्री का कथन हैं। वह अपने पति महेन्द्रनाथ पुरुष एक को लक्ष्य करके कहती है।

व्याख्या-बाहर से देखने में सब आदमी एक से हैं। जो भी प्राणी आदमी की तरह दो टांगों पर चले-फिरे और बात करे उसे आदमी कहना ही पड़ता है, परन्तु वास्तव में आदमी कहे जाने के लिये आदमी में आदमियों जैसे गुण होने चाहिए। आदमी का गुण है अपनी समझ और अपना व्यक्तित्व। जब तक मनुष्य में अपनी कतिपय विशेषताएँ न हों, तब तक उसको हम भीड़ या समूह का अंग ही कहेंगे, व्यक्ति नहीं। व्यक्ति होने के लिए व्यक्तिगत गुण यानी व्यक्तित्व चाहिए और व्यक्तित्व के अभाव में मनुष्य-मनुष्य नहीं है और वह चाहे जो कुछ हो।

विशेष इस कथन में विकासवाद के इस सिद्धान्त की ओर संकेत है जिसमें यह मान्यता है कि मनुष्य की कोटि पर पहुँच कर चेतना का वैयक्तिकरण हो जाता है। अन्य जीवों की चेतना सामूहिक होती है, केवल मनुष्य की चेतना व्यक्तिगत होती है।

12. संकेत- एक आदमी घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरुरत पूरी करने के लिए। कौन सी जरुरत ! अपने अन्दर के किसी उसको..... एक अधूरापन कह लीजिए उसे....उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए..... अपने में.....पूरा होना होता है। किन्ही दूसरों को पूरा करते रहने में ही जिन्दगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेन्द्र के लिए जिंदगी का मतलब रहा है जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं....या जिस तरह वे सोचते हैं उनकी जिन्दगीं में उसका इस्तेमाल हो सकता है।

प्रसंग-सावित्री अपने पति की जीवन-दृष्टि के प्रति जुनेजा से अपना क्षोम व्यक्त करती हुई कहती है-

व्याख्या-पुरुष विवाह करता है अपनी एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए। वह अपने आप में एक अभाव का, एक अधूरेपन को वह नारी के द्वारा पूरा करना चाहता है, (और वस्तुतः नारी के पक्ष में भी यही बात कही जा सकती है।) इस प्रकार वह मनुष्य अपनी जीवन संगिनी पाकर पूर्णता का अनुभव करता है और फिर उसके जीवन में किसी तीसरे व्यक्ति के लिए स्थान नहीं रह जाता है। उस व्यक्ति को फिर अन्य किन्हीं लोगों का सहारा लेकर अपने जीवन के अभाव पूरे करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। परन्तु आपके मित्र महेन्द्र की सर्वथा भिन्न है। उनके जीवन में मानों सदैव रिक्तता बनी रहती है। उनका जीव

व्यक्तियो के अधूरेपन को पूरा करने के लिए बना है। सावित्री का लक्ष्यार्थ यह है कि मुझ प्राप्त करके वह पूर्णता का अनुभव नहीं सके है और इसी कारण आप जैसे अन्य व्यक्तियों का सहारा टटोलते रहते हैं। वे अन्य व्यक्तियों की भांति सोचते हैं तथा उन्हीं के इशारे पर सब काम करते है यानी नाचते रहते हैं। सावित्री का लक्ष्यार्थ यह है कि मेरे पति अपने मित्रों को तो सब कुछ समझते हैं और मुझे कुछ समझते हैं। उनका जीवन मित्रों के लिए है, उसमें पत्नी के लिए कोई स्थान नहीं है।

1. "हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द का स्थान और महत्व उपन्यास-सम्राट के रूप में हैं।" इस कथन के प्रकाश में मुन्शी प्रेमचन्द के उपन्यास शिल्प का विवेचन कीजिए। अथवा

"प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार हैं, साथ ही हिन्दी उपन्यास- साहित्य के केन्द्र बिन्दु भी।" इस कथन की समीक्षा करते हुए अपना निर्णय दीजिए।

उत्तर- प्रेमचन्द के के पूर्व हिन्दी उपन्यास की कोई मौलिक स्थिति नहीं थी। प्रेमचन्दजी उपन्यास साहित्य में युगांतर लेकर अवतरित हुए। प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को विकसित कर उसका पथ प्रशस्त किया। प्रेमचन्द के परवतों उपन्यासकारों ने किसी न किसी रूप में प्रेमचन्दजी ही का अनुकरण किया। आज हिन्दी उपन्यास साहित्य विकसित होकर बहुत पुष्ट हो चुका है। उसमे शैली-शिल्प और विषय-वस्तु की दृष्टि से नये-नये प्रयोग हुए हैं और असंख्य उपन्यास लिखे हैं, परन्तु हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंद जैसा युग दृष्टा उपन्यासकार नहीं हुआ। प्रेमचन्द का महत्व स्पष्ट करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है-

"प्रेमचन्द शताब्दियों से पद-दलित, अपमानित, उपेक्षिक कृषकों की आवाज थे। पढ़ें कैद, पद-पद पर लाक्षित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबर्दस्त वकील थे, गरीबों जऔर बेबसों के प्रचारक थे। अगर आप उत्तरभारत की समस्त जनता के आचार-विचार, रहन- सहन, आशा-आकांक्षा, दुःख-सुख व सूझ-बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता ता है। झोपड़ियों से लेकर महलों तक आपको इतने ही कौशलपूर्ण और प्रमाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।"

प्रेमचन्दजी ने अपने जीवन के प्रत्येक पहलू के साथ वर्णन करके उपन्यास साहित्य को जीवन को पूर्ण कृति बनाने का अनुपम प्रयास किया है। तत्कालीन सच्ची परिस्थितियों का चित्रण आपके उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचन्द के 'सेवासदन', रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, गोदान आदि मौलिक उपन्यासों में जीवन और समाज की अभिव्यक्ति बड़ी सफलता के साथ हुई है। इन उपन्यासों में वस्तु-चित्रण, कथोपकथन आदि के प्रौढ़तम रूप में दर्शन होते हैं। इनके माध्यम से निम्न और मध्यम वर्ग के सुन्दर चित्र सामने आए और साथ ही राष्ट्रीय भावना को भी बल मिला। उपन्यास गद्य-साहित्य की वास्तव में एक जटिल विधा है। उसका सीधा सम्बन्ध मानव-

जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। जीवन एवं उसकी स्वाभाविक गतिविधियों से कटकर उपन्यास- माहित्य जीवित नहीं रह सकता। वह कला के लिये सिद्धान्त का पोषण नहीं करता, बल्कि उसकी कला या शिल्प जीवन से ही उभर कर जीवन को कुछ प्रदान करते हैं। अपने 'उपन्यास' नामक लेख में उपन्यास के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा था- "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।" यह सत्य है कि साहित्य के अन्य अंगों के समान उपन्यास हमारा मनोरंजन भी करता ता है। है। पर अब वह मनोरंजन मात्र रागात्मक न रह कर बुद्धि- रस से संयत हो गया है। मूलतः साहित्य के सम्बन्ध में, उसकी सोद्देश्यता पर विचार करते हुए प्रेमचन्द भी यही मानते हैं कि साहित्य मात्र कल्पना की मनोरंजन उछल-कूद ही नहीं है। वह बुद्धि-संयत, औचित्यपूर्ण जीवन-व्यवहारों का चितेरा भी है। साहित्य के लक्ष्यों के सम्बन्ध में, विशेषतः कथा-साहित्य के सन्दर्भों में वे कहते हैं-" अब साहित्य केवल मन बहलाव को

चीज नहीं है। मनोरंजन के रिस्वाए उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।

अपने इन्हीं विचारों के अनुरूप ही प्रेमचन्द ने अपने उपन्यामों में जीवन की विभिन्न समस्याओं को हल करने का सफल प्रयत्न किया है। इसी कारण वे साहित्य की परिभाषा करते समय एक स्थान पर कहते हैं- "साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। वर्ष वह निबन्ध के रूप में हो, चाहे कहानियों या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना या व्याख्या करनी चाहिये।" यहाँ प्रेमचन्द जी के

विचार अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि और आलोचक मैथ्यू आर्नल्ड से बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। उन्होंन भी कहा था कि Literature is the miror of society अर्थात् साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य समाज का दर्पण तभी बन सकता है जब साहित्यकार का दृष्टिकोण उपयोगितावादी प्रवृत्तियों से परिचालित रहे। हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि प्रेमचन्द जी अपने समग्र साहित्य में उपयोगितावादी दृष्टियों से

पूर्णतः परिचालित थे। इस सम्बन्ध में उनकी आत्म-स्वीकृति विशेष दर्शनीय है- "मुझे यह कहने में हिचक नहीं है कि मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। उपयोगितावाद के द्वारा मानसिक उत्कर्ष और कर्ममय जीवन का ही समर्थन होना चाहिये।" और यही समर्थन उन्होंने अपने समग्र उपन्यास साहित्य में प्रदान किया है, ताकि व्यवहार-जगत का, कर्ममय जीवन का उत्कर्ष हो सके। प्रेमचन्द साहित्य के प्रभाव को अचूक और अकाट्य मानते थे। वे साहित्य को कोरा बौद्धिक विलास भी नहीं स्वीकारते थे। उनका विचार था कि साहित्य के नाम पर वह वस्तु पाठकों के हृदय पर सीधा प्रभाव डाल सकती है जो कि साहित्यकार के सीधे हृदय से ही प्रसूत हुई हो। जिसके लिए साहित्यकार ने प्रसव-वेदना की- सी अनुभूति की हो। इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए वे कहते हैं- "साहित्य ने मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है। साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु साहित्य में सामाजिकता और राजनीति को अपरिहार्य स्वीकारते हुए भी प्रेमचन्द साहित्य है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है।" को राजनीति का पिछ लग्गू बना देने के पक्ष में कतई नहीं थे। वे तो इस पुनीत उद्देश्य चले कि साहित्य राजनीति का भी पथ-प्रदर्शन करने की क्षमता रखता है। उसे जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान राजनीति का भी उचित पथ-प्रदर्शन करना चाहिए। ताकि मानवता का कल्याण सम्भव हो सके। तभी तो वे कहते हैं- "साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं है, उसके आगे-आगे चलने वाली एडवाँस गार्ड है। वह उस विद्रोह का नाम है, जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरुचि से उत्पन्न होता है।" इसी कारण गाँधीवादी राजनीति से प्रभावित होते हुए भी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में स्वस्थ राजनीतिक दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा वे गाँधीवादी दृष्टियों से भी पूर्णतया विद्रोही हो गये थे। 'गोदान' में यह विद्रोही और व्यावहारिक समाजवादी दृष्टिकोण हमें स्पष्टतः उभरता हुआ दिखाई देता है, जिसकी चरम परिणति उनके 'मंगल सूत्र' में होने वाली थी, पर मृत्यु ने होने नहीं दी। फिर भी वे समाजवादी उस दृष्टि से नहीं थे कि जिस दृष्टि से उन्हें कम्युनिस्ट कहा जाने लगा था या कुछ लोगों ने प्रत्यक्षतः कह भी दिया था। अपने साम्यवादी होने की बात को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द जी ने एक स्थान पर कहा था-

"मैं कम्युनिस्ट हूँ, किन्तु मेरा कम्युनिज्म केवल इतना है कि हमारे देश में जमीदार सेठ आदि जो कृषकों के शोषक है, न रहें और दूसरी ओर यह भी मैं गांधीवादी नहीं हूँ, केवल गाँधीजी के 'चेज आफ हॉर्ट' में विश्वास रखता हूँ।" इतना होते हुए भी निश्चय ही प्रेमचन्द जी के मन में गाँधी जी पर एक असीम श्रद्धा का भाव विद्यमान था। इसका मुख्य कारण था दुनियाँ में महात्मा गाँधी को सबसे बड़ा मानता है। उनका भी इसी कारण उन इन्दर और कास्तकार सुखी हों। वे हम लोगों को बढ़ाने के लिये आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं कर उनको उत्साह दे रहा हूँ।"

प्रेमचन्द का औपन्यासिक शिल्प-प्रेमचन्द जी उपन्यासों को जीवन की व्याख्याता कारते थे, उन्हें मानव-चरित्र के चित्रों का चितेरा मानते थे। अतः उन्होंने अपने उपन्यासों -विषयों का चयन सीधे व्यवहार-जगत के विभिन्न क्षेत्रों से ही किया है। यद्यपि उन्होंने अधिक समस्याओं को ही अपने वण्यं विषयों में पिरोया, पर जिस सत्य का वे उद्घाटन उनके द्वारा करना चाहते थे, वह निश्चय ही शाश्वत है। ये सभी प्रकार के विषयों का उपन्यासों द्वारा विषण कर पाना सम्भव मानते थे। उनका कथन था कि "अगर आपको इतिहास से प्रेम है, से आप अपने उपन्यास में गहरे से गहरे ऐतिहासिक तत्वों का निरूपण कर सकते हैं। अगर आपको दर्शन से रूचि है तो आप उपन्यास में महान् दार्शनिक तत्वों का विवेचन कर सकते है। मगर आप में कवित्व-शक्ति है तो उपन्यास में उसके लिये भी काफी गुंजाइश है। समाज, नीति, विज्ञान, पुरातत्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है।" प्रेचमन्द जी ने समाज- नीति आदि विषयों को ही

अपना वर्ण्य-विषय बनाया है। यों कहा जा सकता है कि मानव- जीवन और समाज के सभी पक्षों को ही उन्होंने अपने औपन्यासिक कथानकों में उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने जीवन को निकट से देखा और भोगा था, यही कारण है कि उनकी मान्यताएँ ओढ़ी हुई नहीं लगतीं। प्रेमचन्द अतीत के खण्डहरों में नहीं भटके, उन्होंने वर्तमान में ही सूक्ष्मतः से झाँककर शाश्वत मानव मूल्यों को उद्घाटित करने और उन्हें व्यवहार जगत में परिणत होने की इच्छा प्रकट की है। कहीं-कहीं यद्यपि वे सिद्धान्तकार बनते हुए प्रतीत होने लगते हैं, पर वास्तव में वे वहाँ सिद्धान्त प्रतिपादन न करके सम्भाव्य सत्यों का ही उद्घाटन करते हैं। यह सब-कुछ उन्होंने समग्रतः सामाजिक सन्दर्भों में ही किया है। वे व्यक्तिवादी नहीं थे। इसी कारण वे समाज के मार्ग से ही व्यक्ति की ओर उन्मुख होते हुए दिखाई देते हैं। वे समाज के परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति के दुःख-दर्द और समस्त समस्याओं का समाधान खोजते हुए प्रतीत होते हैं। इसी कारण उन्होंने अपने आस-पास की उन समस्त व्यवस्थाओं पर कठोर आघात करने का सफल प्रयत्न किया है कि जिन्होंने अच्छे भले व्यक्ति को भी कुण्ठित करके छोड़ दिया है। लगता है कि प्रेमचन्द यह विश्वास लेकर चले हैं कि यदि हम अपने वर्तमान को संभाल लेंगे तो हमारे शाश्वत मूल्यों की रक्षा स्वतः ही हो जायेगी। इसी कारण मूलतः सामाजिक विषयों में भी उन्होंने सामयिक राजनीति को उचित स्थान दिया। उन्होंने अपने युग के मानव के चरित्र की अच्छाइयों-बुराइयो का समग्र उद्घाटन किया। उसकी समस्त करुणा को, क्रन्दनों को उभारा। संक्षेपतः कहा जा सकता है कि वर्ण्य-विषयों की दृष्टि से प्रेमचन्द का उपन्यास-शिल्प समग्रतः समसामयिक सामाजिक विषयों से ही संयत है। उन्हीं के माध्यम से उन्होंने शाश्वत मानव मूल्यों को परखने,

अंकित और रक्षित करने का सतत् प्रयास किया है।

उपन्यास-शिल्प के अन्तर्गत दूसरी विचारणीय बात होती है-लेखक का अभिव्यक्ति-पक्ष। सबल और स्पष्ट अभिव्यक्ति ही किसी सर्जक कलाकार की सफलता का प्रमुख आधार ही सकती है। सर्जक कलाकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में से जिस प्रकार की अनुभूतियों संजोता है। उन्हें सर्जना के कलेवर में जिस प्रकार से रूपायित करता है, उसी को सामान्यतया हम लोग अभिव्यक्ति-पक्ष कहते हैं। उपन्यासकार अभिव्यक्ति के लिये प्रायः दो माध्यम अपनाता है। वे माध्यम परोक्ष और प्रत्यक्ष हैं। परोक्ष माध्यम को नाटकीय-विधि भी कहा जाता है। जिस प्रकार एक नाटककार स्वयं अलग-थलग रहकर विशिष्ठ पात्रों के माध्यम से अपनी जीवन-दृष्टियों को अभिव्यक्त करता है, तसी प्रकार उपन्यासकार भी अपने पात्रों के माध्यम से ही अपने विचारो की रूपायित करता है। अभिव्यक्ति की दूसरी विधा है-प्रत्यक्ष। इसे हम व्याख्यात्मक और आलोचनात्मक-विधा भी कह सकते हैं। इस विधा में उपन्यासकार स्वयं उपस्थित होकर वैचारिका अनुभूतियों को रूपायित करता जाता है। हमारे विचार में प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों में उपरोक्त दोनों अभिव्यक्ति-विधाओं को अपनाया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में अपने विचारों और जीवन दृष्टियों के अनुरूप विशिष्ट पात्रों की योजना तो की ही है, इस प्रकार उन्होंने अभिव्यक्ति की परीक्ष विधा को अपनाया। र वे अनेकशः स्वयं तो उपस्थित हो ही जाते हैं, व्याख्यात्मकता है। दूसरी और वे और आलोचनात्मकता को प्रत्यक्ष विधा को भी स्पष्टतः अपनाते हुए दिखाई देते हैं। यहाँ युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उनका उपदेशक और सुधारक रूप भी हमारे सामने उभरने लगता है।

जहाँ तक प्रेमबन्द जी के औपन्यासिक-शिल्प के भाव पक्ष का सम्बन्ध है, उनकी समस्त सर्जनाये सोद्देश्य हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में भावानुभूतियों से संश्लिष्ट मानव-सत्यों एवं आदर्शों का प्रतिपादन किया है। व्यावहारिक मनोविज्ञान का सहारा लेकर के उन्होंने जीवन और समाज जी सामान्य नैतिकताओं को ही समर्थन दिया है। उनकी समस्त नैतिकतायें वायवी न होकर व्यवहार जगत से सम्बन्धित अनुभूत सत्यों पर ही आश्रित है। इस दृष्टि से वे जीवन की नीति-संगत और मार्मिक घटनाओं के चयन में विशेष सिद्धहस्त थे। अनावश्यकताओं से भी वे सदा बचते रहे। सहज मानवीय अनुभूतियों को उन्होंने प्रत्यक्षतः रूपायित किया है। यही उनकी सफलता का भी रहस्य है।

प्रेमचन्द जी के उपन्यास-शिल्प के सम्बन्ध में एक और बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है। उन्होंने प्रायः सभी उपन्यासों में दुहरी और तिहरी कथा वस्तुओं का चयन किया है। उदाहरणतः हम उनके प्रेमाश्रय, कायाकल्प, रंगभूमि, कर्म भूमि और गोदान जैसे उपन्यासों को ले सकते हैं। इनमें दुहरी-तिहरी कथायें है। हमारे विचार में ऐसा वे एक विशेष दृष्टिकोण से ही करते हैं। वह विशेष दृष्टिकोण है, मूल कथ्य को सभी दृष्टियों से उजागर करने का प्रयत्न करना। यहाँ हम 'गोदान' का उदाहरण देना चाहेंगे। यहाँ मुख्य कथा होरी की ही है। पर साथ में मालती-मेहता, राय- साहब अमरपाल सिंह, मिल-मालिक खन्ना आदि के कथानक तो चलते ही हैं, मातादीन और सिलिया आदि की कुछ ग्राम्य कथायें भी चलती हैं। उन सबका मूल उद्देश्य वास्तव में एक तो होरी के परिवेश को स्पष्ट करना है, दूसरे उन समग्र व्यवस्थाओं को रूपायित करना है जिनमें होरी का आदर्श पिसकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। अतः 'चिन्दिया लगाना' या 'पैच लगाना' आदि कहकर उनके वस्तु-शिल्प के इस रूप की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारे विचार में यह वस्तु- गठन की एक बहुत ही बारीक एवं महत्वपूर्ण विशेषता है। उनके 'रंगभूमि' आदि उपन्यासों के दुहरे-तिहरे कथानकों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। हाँ, ऐसा करते समय वस्तु- योजना का कहीं-कहीं शिथिल प्रतीत होने लगना नितान्त स्वाभाविक है। क्योंकि समग्र परिवेश को प्रस्तुत करते समय महाकाव्यात्मक तत्वों का समावेश अनिवार्यतः हो जाता है और 'रंगभूमि' तथा 'गोदान' जैसे कुछ उपन्यासों में महाकाव्यात्मक तत्व निश्चय ही है। ऐसा करके उन्होंने अपने उपन्यासों में आन्तरिक-बाह्य सभी रूपों का उद्घाटन भी पूर्ण सफलता के साथ किया है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यास-शिल्प को समन्वयवादी भी कहा जा सकता है।

शिल्प-विधान की दृष्टि से पात्र योजना पर विचार करना भी अनिवार्य होता है। क्योंकि वाण्यं-वस्तु का विकास पात्रों के माध्यम से ही हुआ करता है। पात्रों के सम्बन्ध में मुख्यतः यही बात कही जा सकती है कि वे वायवीलोकों में विचरण करने वाले ती कतई नहीं हैं। उनका सीधा सम्बन्ध व्यवहार-जगत से है। वे जीवन के विविध क्षेत्रों और उनकी व्यवस्थाओं • का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करते हैं। यथार्थता उनका प्रमुख लक्षण है। प्रत्येक पात्र अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता है। विभिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन हमें वहाँ होते हैं। प्रेमचन्द जी ने स्वभावतः ऐसे पात्रों की ही सर्जना की है कि जिनका सम्बन्ध हमारे प्रत्यक्ष व्यवहार जगत से ही है।

एक विशेष बात यह भी है कि प्रेमबन्द जी के उपन्यासों के पात्र उतने व्यक्ति नहीं, जितने बद है। फिर भी उनके व्यक्तित्वों की सामान्यतः सर्वत्र रक्षा हुई है। उन्होंने पात्रों के चनतने का चित्रण वर्ग, स्थिति, समय और परिवेश की समग्रता में ही किया है। पात्रों का सम्बन्ध शान थी वर्ग या व्यवसाय से है, वह उसके अन्तर्गत अपने समग्र परिवेश को लेकर अभिव्यक्त है। वे घटनाओं और स्थितियों के सन्दर्भों में अपने-आपको प्रायः बदलते जाते हैं, परन्तु किसी विशिष्ट धारणा के लिये अपने-आपको मिटा देने वाले पात्र भी वहाँ विद्यमान हैं। उन्हें आदर्श पात्र कहा जा सकता है। स्थिर या गतिशील दोनों प्रकार के पात्र वास्तव में वर्ण्य-विषयों की कसौटियों पर पूर्ण खरे उतरे हैं। कहीं-कहीं हमें कुछ ऐसे पात्र भी दिखाई दे जाते हैं कि को कल्पना-जोवी भी प्रतीत होते हैं, पर उनका वर्णन विशेष सन्दर्भों में ही हो पाया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द जी के उपन्यासों के पात्र अपनी समस्त सबलताओं- दुर्बलताओं को लेकर रूपायित हुए हैं। उपन्यासकार ने पात्रों के चरित्र-चित्रण करने के लिये प्रत्यक्ष और परोक्ष सभी प्रणालियाँ अपनायी हैं। कहीं-कहीं ऐसा अवश्यं प्रतीत होने लगता है कि वे किसी विशिष्ट पात्र को चला नहीं पाये, तो उसकी किसी न किसी प्रकार से हत्या करवा देते हैं। परन्तु 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते उनका यह दोष प्रायः दूर हो गया है। औपन्यासिक-शिल्प पर विचार करते समय संवाद-योजना पर भी विचार किया जाता

है। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में संवादों की योजना करते समय स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का अपना मत द्रष्टव्य है- "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो, और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाये, उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होने चाहियें। प्रत्येक वाक्य को-जो किसी चरित्र के मुँह से निकले-उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना जरूरी

है।" हमारे विचार में अपनी इन मान्यताओं के साँचे में ही प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों के संवादों को ढालने का प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं संवाद कुछ लम्बे अवश्य हो गये हैं, पर उनकी व्यावहारिकता कहीं भी ध्वस्त नहीं होने पाई है। संवाद- योजना करते समय उन्होंने चरित्रों के वर्ग, परिवेश, पेशे, समय और स्थिति आदि का निश्चय ही विशेष ध्यान रखा है। इन सब बातों के अनुरूप सूक्तियों का प्रयोग भी किया है। अतः उनके द्वारा पात्रों के चरित्रों का अन्तः बाह्य एकदम स्पष्ट हो जाता है।

प्रेमचंद जी के समस्त उपन्यास पूर्णरूपेण देश-काल-सापेक्ष्य हैं। वे जिस गुण में, जिन पर्यावरणों एवं परिस्थितियों में रहे जिये-उनका समग्र अन्तः बाह्य उनके उपन्यासौं में देखा जा सकता है। इसी कारण तो कहा जाता है कि गाँधी-युग का इतिहास यदि किसी कारणवश खो भी जाये, तो प्रेमचंद जी के उपन्यासों के आधार पर उनका सहज ही पुनर्लेखन किया जा सकता है। इसका कारण यही है कि प्रेमचन्द जी द्वारा चित्रित देश-काल और वातावरण पुस्तकीय या सैद्धान्तिक न होकर पूर्णतया प्रत्यक्ष-अवलोकित एवं स्वानुभूत है। उन्होंने अपनी खुली आँखों से जो कुछ कुछ देखा, खुले कानों से जो कुछ सुना और खुले हृदय से जो कुछ अनुभव किया, वही सब-कुछ उनके उपन्यासों में अपने समग्र परिवेश एवं आयम में रूपचित हुआ है। है। आन्तरिक वातावरण के साथ- साथ उन्होंने बाड़ा प्राकृतिक एवं भौगोलिक वातावरण का चित्रण भी स्वाभाविक रूप से किया है। जिस ग्राम-सभ्यता-संस्कृति का रूपायन वे अपने उपन्यासों में करते हैं, उसका स्पष्ट चित्र बे उभार देते हैं। प्रकृति कि उद्दीपन, आलम्बन और सहज सभी रूप तहाँ हमें देखने को मिल जाते हैं। उन्हे मुख्यतः नर-प्रकृति का ही चितेरा माना जाता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रेमचंद जी के उपन्यासों में अन्तः-बाड़ा सभी प्रकार के चित्रण समग्र और स्वाभाविक है

जहां तक प्रेमबन्द जी की सर्जना-प्रक्रिया और शैली का प्रश्न है, उसमें सभी प्रकार की सरलता और प्रभविष्णुता है। गहन से गहन और कागल से कोमल भाव को उन्होंने एकदमसहज रूप से रूपायित कर दिया है। भाषा-भावों की पूर्णतया अनुगामिनी है। ओजस्विता तो सर्वत्र विद्यमान है ही सही, सब प्रकार के भावों को अभिव्यक्त करने में भी वह सक्षम है। चित्रमयतः भावावेश के कारण सहज काव्यमयता, औचित्य की सीमा में लाक्षणिकता और व्यंजकता, पात्रानुकूल भाषा और अभिव्यक्ति, सभी प्रकार की स्थिति के अनुकूल लोकोक्तियों आदि के प्रयोग, मूर्त-अमूर्त प्रयोग, यथासमय वर्णनात्मकता आदि बातें भी भाषा-शैली में विद्यमान है। व्यंग्य-विनोद की भावना भी वहाँ विद्यमान है और प्रेमचंद जी को सहज सूक्तिकार भी कहा जा सकता है। नागरिक, ग्रामीण, शिक्षित, अर्ध-शिक्षित और अशिक्षित, राजनेता, पत्रकार, राजनीतिज्ञ और किसान सभी अपनी सहज भाषा और शैली का प्रयोग करते हैं। एक दोष अवश्य देखा जा सकता है। वह है- पात्रों का जाति या सम्प्रदाय के आधार पर भाषा का प्रयोग करना। मुसलमान पात्र फारसी-मिश्रित उर्दू का प्रयोग करने लगते हैं, जबकि अंग्रेज या ईसाई पात्र या तो भाषा को बिगाड़ने लगते हैं या फिर अंग्रेजी शब्दों की भरमार करने लगते हैं। उपन्यास-कला की एक अन्य बात की ओर स्वयं प्रेमचन्द जी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है- "कुशल लेखक वही है जो यह अनुभव कर ले कि कौन-सी बात पाठक स्वयं सोच लेगा और कौन-सी बात उसे लिखकर स्पष्ट करनी चाहिए। कहानी या उपन्यास में पाठक की कल्पना के लिए जितनी अधिक सामग्री हो उतनी ही वह कहानी रोचक होगी।" अपनी इस मान्यता के अनुसार प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में सभी कुछ अपनी ओर से ही नहीं कह दिया, बल्कि बहुत कुछ सोचने, विचारने और करने के लिए भी छोड़ दिया है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि प्रेमचंद जी के विचारों के समान ही उनकी उपन्यास-कला भी नितान्त जीवन्त है, प्रभावी है। वे वास्तव में यथार्थ एवं व्यवहार-जीवन के शिल्पी थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में जीवन जीने की कला सिखाने का सफल प्रयत्न किया है। वे आशावादी कलाकार थे। जीवन और मानव की सवृत्तियों के प्रति उनके मन में पूर्णतया सभी प्रकार की आस्थाएँ विद्यमान थीं। उन आस्थाओं का नाम ही उनकी सर्जना है। उन्होंने अपने युगीन आयाम को अपने समग्र परिवेश में, सभी दृष्टियों से सफलता के साथ रूपायित किया।

3.5 कथानक के आधार पर 'गोदान' की विशेषताओं

अथवा "गोदान में प्रेमचन्द प्रसंगों के उपन्यासकार हैं।" प्रस्तुत कथन के परिप्रेक्ष्य में गोदान की कथावस्तु की समीक्षा कीजिए।

"गोदान में दो कथायें समानान्तर गति से एक साथ चलती है किन्तु प्रायः परस्पर सम्बद्ध रूप में।" प्रस्तुत कथन की सारगर्भित समीक्षा कीजिए।

प्रेमचन्द और कथावस्तु-उपन्यासकार को अपनी सामग्री (कथा) आले पर रखी नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से कारको इसका अधिकार है कि वह लेनी चाहिये जो उसे चारों तरफ मिलते रहते हैं।" अपनी कथा को घटनावैचित्य से रोचक बनाये यह है कि प्रत्येक घटना असली बाँचे से निकट सम्बन्ध रखती हो। उपन्यास में वही विचार लाना चाहिये जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जायें जो प्लाट के विकास हो अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन करते हों।" कहना न होगा कि अपने कथातत्य में प्रेमचन्द ने यही किया है जिसका सर्वोत्तम और सर्वोच्च प्रमाण है। कथावस्तु और उसकी समीक्षा।

अन्तिम उपन्यास 'गोदान' की की कथावस्तु (कथानक) दान में अधिकारिक रूप से तीन कथाएँ समान्तर रूप से चलती है- (1) होरी की कथा (2) मालती व मेहता की कथा, और (3) रायसाहब की कथा। डोनों कथाये ऊपर से अलग-अलग दिखाई पड़ने पर भी एक हैं। इन तीन कथाओं

रूप में समाज की विशालतम पृष्ठभूमि आ गयी है। किसान होरी की कथा जमींदार रायसाहब, पालसिंह की कथा से पृथक् नहीं है। शहर का शोषक वर्ग मिल-मालिक व उनके दलाल हो कृषक की मुख्य कथा के अंग हैं। होरी निम्न वर्ग का प्रतीक है। उसकी कथा भारत किसानों का प्रतिनिधित्व करती है। मालती और मेहता की कथा मध्य वर्ग की कथा होला वर्ग उच्च वर्ग या शोषक वर्ग है। रायसाहब अमरपालसिंह, राजा सूर्यप्रतापसिंह आदि वर्ग के प्रतिनिधि हैं। खन्ना तथा आदि इस शोषक वर्ग के सहायक हैं। इस प्रकार तीनों कथाओं को मिला देने से गोदान उपन्यास में दो कथायें रह जाती हैं- (1) ग्राम्य-कथा, (2) नागरिक कथा, इसमें ग्राम्य-कथा प्रधान है। इन दोनों कथाओं का सुगुम्फन करता हुआ कथानक इस प्रकार विकसित हुआ है कि ग्राम्य-कृषक जीवन का करुणोत्पादक चित्र -मने आ जाता है और 'गोदान' ग्राम्य-कृषक जीवन के विशालतम पट का महाकाव्य दीखने लगता है। कुछ आलोचकों का मत है कि 'गोदान' में ग्राम जीवन एवं नगर जीवन की दोनों कथाओ का उचित तारतम्य नहीं बैठ पाया है। अतः दोनों कथायें पृथक-पृथक उपन्यासों की कथावस्तु- को लगने लगती हैं, परन्तु यह आक्षेप सत्य नहीं है। दोनों कथायें मिलकर तत्कालीन भारतीय- दोवन (प्राभ्य एवं नागरिक जीवन) का विशालतम चित्र अंकित करती हैं। इतने विशाल जीवन को कथा में समेटना उपन्यासकार की औपन्यासिक कला की विशेषता ही कही जायेगी। प्रेमचन्द कथावस्तु में चमत्कारिकता लाने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वयं कहा है, "कथा का बीच में शुरू करना या इस प्रकार शुरू करना कि जिसमें ड्रामा का चमत्कार पैदा हो जाय, मेरे लिए मुश्किल है।"

गोदान' के कथा-विकास में आद्यान्ति घटनाओं और पात्रों के क्रिया-व्यापार का सरलता एवं स्वाभाविकता से गठन हुआ है। कथा में कहानीपन पर केन्द्रित रहकर प्रेमचन्द सदैव जीवन के निकट बने रहे हैं। तभी तो गोदान ग्राम्य-जीवन का सफल महाकाव्य बनने में सफल हुआ।

कथा-विकास में स्वाभाविकता और उत्सुकता-आकस्मिक घटनाओं और अक्रिकता के तत्व का समावेश करने के प्रेमचन्द जी पक्षपाती नहीं थे। अतः 'गोदान' में भी इससे बचे हैं। घटनाओं का विकास अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप से होता है। कथा बा

प्रवेश बेलारी गाँव के कृषक होरी और उसके परिवार के परिचय से होता है। कथानक का जाग्म होरी के जमींदार रायसाहब के यहाँ चल देने की घटना कर देती है। मार्ग में गायों के सपास के गाँव के ग्वाला भोला से उसकी भेंट एक स्वाभाविक घटना के रूप में होती है।

भोला-होरी मिलन की यह घटना आगे की कगा के विकास का कारण बनती है। उपायक भोला की घटना का निर्वाह अन्त तक सफलतापूर्वक करता है। यह घटना भोला की विषया पुढे शुनियों और होरी के पुत्र गोबर के मिलन एवं गोबर के शहर को पलायन करने का कारण बर है। होरी रायसाहब के यहां पहुंचता है। वहाँ धनुषयज्ञ की जोरदार तैयारी हो रही है। रागाव को शगुन के लिए किसानों से बीस हजार रुपया पाने की चिन्ता है। इसमें से पाँच हजार का भर होरी के सिर पर डाला जाता है। यह प्रवन्ध किस प्रकार होगा? रागसाहब और होरी की इस विषय में चिन्ता के साथ पाठकों की उत्सुकता जामत हो जाती है। यहाँ पर होरी, रागसाहब और मालती-मेहता की कथाओं का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। होरी रायसाहब का आदगी है, मालई मेहता तथा खन्ना, तंखा, मिर्जा, खुशेंद आदि शहरी जन भी रायसाहब के धनुषज्ञ में आमंत्रित होकर खिच आते हैं। ये सभी रायसाहब के साथ शिकार आयोजन में भी भाग लेते हैं। गोबर शहर में जाकर सबसे पहले मिर्जा खुशेंद के यहाँ ही आश्रय पाता है।

कथा-विकास में उत्सुकता का तत्व सर्वत्र बना रहता है, पात्रों की चातचीत में प्रेमचन्द जी आगे की घटनाओं का आभास देते हैं। गोबर और झुनियाँ की बातचीत से उनके भविष्ण के सम्बन्ध में पाठकों को आभास मिल जाता है।

पांठक आगामी घटनाओं की प्रतीक्षा उत्सुकता के साथ करता है। घटनाओं का सृजन-प्रेमचन्द घटनाओं का सूजन सहज ही कर लेते हैं। मालती और

मेहता की शिकार में भेंट के अवसर पर प्रेमचन्द एक ऐसी कलूटी स्त्री की उपस्थित कर देते है, जिसे पाठक भुला नहीं पाता। घटनायें आकस्मिक रूप में ही आती हैं। खन्ना साहब के मिल में आग लगना ऐसी ही घटना है। इस प्रकार की घटनाओं में अलौकिकता नहीं होती और इनमें अस्वाभाविकता नहीं आने पाती। घटनाओं के अवतरण में प्रेमचन्द ने मानवीय अनुभूति के स्वाभाविक परिवर्तन का भी आश्रय लिया है। धनिया होरी को यह सूचना देती है कि उसके लड़के गोबर की छोड़ी हुई स्त्री झुनियाँ पाँच महीने का गर्भ लिये आश्रय चाहती है। होरी और धनिया दोनों में से कोई भी उसे घर में रखने के पक्ष में नहीं है, परन्तु घर पहुँचते-पहुँचते होरी में ग्रामीण सहृदयता जाग्रत हो जाती है। वह पैरों पर पड़ी हुई झुनियों से कहता है, "डर मत

बेटी, तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह।" पात्रों को विषम परिस्थिति में डालकर कथा का विकास-प्रेमचन्द पात्रों को भी

कभी-कभी ऐसी परिस्थितियों में उलझा देते हैं कि पाठक यह जानने के लिये उत्सुक हो उठता है कि अब क्या होगा ? वे तिनके की-सा सहारा देकर विषम परिस्थितियों के भंवर में पड़े हुए पात्र का उद्धार भी कर देते हैं। होरी को सोना के विवाह के लिये कहीं से रूपये नहीं मिलते। दुलारी उसे सहायता देने का आश्वासन देती है, परन्तु ईख की बिक्री का रुपया होरी के हाथ में न आने पर दुलारी रुपया देने को मना कर देती है, होरी परिस्थितियों के जाल में उलझ जाता है, किन्तु नोहारी रूपये की सहायता देकर उसका उद्धार कर देती है।

कथा-विकास की पृष्ठभूमि पहले से ही तैयार रहती है-कथा के विकास में तीव्रता लाने के लिये प्रेमचन्द जी पहले से ही उसकी पृष्ठभूमि तैयार कर लेते हैं। होरी का गिरता स्वास्थ्य देखकर धनिया कहती है-"घी-दूध, अंजन लगाने को भी नहीं मिलता।" इसी पृष्ठभूमि में होरी रायसाहब से मिलने को चलता है।

शंकाओं और सम्भावनाओं को लाकर भी प्रेमचन्द जी ने उत्सुकता की वृद्धि की है। कार्य के पूरा होने में जो शंकाएँ और अनिश्चितता आती है, उससे भविष्य के विषय में पाठक उत्सुक हो उठता है। भोला गाय देने के लिये होरी को वचन दे चुका है, परन्तु होरी मन में सोचता है-

"भोला है तो अपने घर का मालिक, लेकिन जब लड़के सयाने हो गये, तब बाप की

कौन बलती है ? कामता और जंगी अकड़ जाये तो भोला अपने मन से गाय हमें दे सकेंगे ? कभी नहीं।"

चमत्कारपूर्ण स्थलों और प्रसंगों की योजना प्रेमचन्द ने स्थान-स्थान पर ऐसे बात्कारपूर्ण स्थलों की योजना की है, जो जिज्ञासा को जाग्रत कर कायानक के विकास में सहायक होते हैं? ऐसे स्थल और प्रसंग बड़े सरस है और औपन्यासिक कला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है? उदाहरण के लिये एक उज्जवल रात्रि के सुहावने समय में मालती मेहता की ओर पुलकित होकर बढ़ती है। मालती मेहता की ओर से उदासीन रहकर भी उनको अचकनें बनवा देती है, मकान किराए की डिक्री चुका देती है और उनके आय-व्यय का हिसाब नियमित कर देती है। भालती के इस व्यवहार का परिणाम जानने के लिये पाठक उत्सुक हो जाता है। महीनों एक साथ ही मकान में रहने पर भी मेहता मालती से मिलने का अवसर नहीं पाते। एक दिन एक बाजे रात को झुनिया के पुत्र मंगल के रोने की आवाज सुनकर वे संयोग से मालती के समीप पाँच जाते हैं। 'कुछ याचना की अनुभूति' चाहते हुए प्रार्थना भरी आँखों से मालती की ओर देखते हैं। मालती 'जीवन की सार्थकता और अपनी पूर्णता' पर सन्तोष प्रकट करती है। परन्तु मालती के हृदय में अनुराग की ऐसी लहर उठती है कि मेहता के हृदय से लिपट जाने के लिये व्याकुल हो उठती है। मेहता तो उसके चरणों को हृदय से लगा लेने की भावना लेकर आये ही थे। यहाँ पाठक की जिज्ञासा चरम सीमा स्पर्श करने लगती है। एकान्त में दोनों के मिलकर एक हो जाने की स्थिति है, परन्तु झुनिया के सहसा जग जाने से रंग में भंग हो जाता है।

निष्कर्ष- 'गोदान' एक सुगठित रचना है। इसमें गाँव और शहर की दो कथायें साथ-

साथ चलती हैं। प्रेमचन्द ने प्रत्येक वर्ग के प्रतीक पात्र लेकर समूचे समाज का चित्रण किया है। जमीदार अमरपालसिंह, खन्ना, स्वार्थी पत्रकार, ओंकारनाथ, चुनाव-विशेषज्ञ तथा तंखा आदि सभी शोषक हैं। होरी केवल किसानी करता है, जो इन लोगों के द्वारा शोषित होता है। अतः शहर के इस वर्ग की कहानी को हटा देने से होरी का चित्र अधूरा रह जाता है। जमींदार अमरपालसिंह कृषक होरी और शहरी वर्ग के बीच की कड़ी है। इस प्रकार कथा-विकास में गाँव और शहर की दोनों कथाएँ मिलकर एक हो गई हैं। होरी के जीवन को लेकर कथानक का प्रारम्भ बेलारी गाँव से होता है। जमींदार अमरपालसिंह के यहाँ आये शहर के मेहमानों तथा गोबर के शहर चले जाने की घटनाओं से नगर और ग्राम के कथानक में एकसूत्रता स्थापित हो जाती है। 'गोदान' की कथा समूचे युग की परिवर्तनशील परिस्थितियों का चित्रण करती है।

'गोदान' में घटनाओं का अद्भुत जाल है। प्रेमचन्द ने स्वयं कुछ न कहकर सब कुछ घटनाओं की सृष्टि द्वारा ही अभिव्यंजित किया है। सम्पूर्ण कथा घटनाओं और पात्रों के क्रिया- व्यापार में सरल एवं स्वाभाविक रूप से गठित होकर विकसित हुई है। अतः 'गोदान' उपन्यास को कथावस्तु अत्यन्त सुव्यवस्थित, सुनियोजित, आकर्षक और आवश्यकतानुसार मुढ़ने और बढ़ने वाली है।

3.6 प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का तात्विक विवेचन

उत्तर- 'गोदान' उपन्यास की तात्विक समीक्षा-तात्विक दृष्टियों से देखा जाये तो 'गोदान' में उपन्यासकार की आन्तरिक वृत्ति यथार्थवादी ही प्रमुख है। उन्होने यथार्थवादी दृष्टियों से ही चहुँमुखी शोषण की कहानी यहाँ कही है। जमीदार के अत्याचारों, उनके कारिन्दों एवं गाँव

के महाकों के शोषणों, इनके साथ व्यवस्थागत दमन आदि की कहानी पुर्णतया प्राम एवं कृषि- सभ्यता की वस्तु-स्थिति का हमारे सामने उद्घाटन करती है। प्रतिपल होने वाले आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्रण 'गोदान' में किया गया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि 'गोदान' में उन्होंने किससे आदर्श की सिद्धि के लिये परिणाम को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयत्न कतई नहीं किया। यहाँ पात्र और उनके चरित्र चित्रण, उनके संवादों की योजना, देश-काल और बातावरण की सुहि और उद्देश्य सभी कुछ यथार्थ जीवन की गहन अनुभूतियों से अन्वित एवं अन्तःस्यूत है। कृत्रिमता यहां कहीं भी नहीं है। तात्विक दृहियों से उनकी यह स्वाभाविकता ही गोदान' की सबसे बड़ी सफलता है।

तात्विक दृष्टियों से किसी उपन्यास का सर्वेक्षण अन्य प्रकार से भी किया जाता है। यह है एक बंधा बंधाया तत्य-चक्र। सामान्यतया उपन्यासों के 6 आधुनिक तत्व स्वीकारे गये है। उनके नाम है-वस्तु योजना (कथानक या कथावस्तु), पात्र और चरित्र-चित्रण, संवाद या कथोपकथन, देश काल और वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य। आगे हम इन निश्चित तत्वो के आधार पर भी 'गोदान' का सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन तत्वों के दृष्टिकोण से 'गोदान' का अध्ययन करने पर निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने आते हैं-

'गोदान' का कथानक (कथावस्तु) गोदान' की वस्तु योजना दुहरे कथानक वाली है। उन दोनों के साथ अनेक सहयोगी या अन्तर्कथाएँ भी अन्वित हैं। मुख्य वस्तु-योजना का सम्बन्ध ग्राम-परिवेश से है और उसका नायक है होरी नामक एक क्रमशः विघटित होता हुआ कृषक। उसके माध्यम से उपन्यासकार ने प्रामों में चलने वाले कृषकों के शोषण, उनकी घरेलु एवं पारिवारिक स्थितियों, पारिवारिक विघटनों, ईर्ष्या-द्वेष, राग-विराग, सुख-दुःख, शादी-गमी, उत्सव-त्यौहारों, प्रेम एवं स्वेच्छाचारों आदि का प्रभावी वर्णन किया गया है। वस्तु का आरम्भ होरी के गाय-पालन को चिर संचित इच्छा से होता है और फिर समूचा ग्राम्य-कथानक इसी इच्छा को उधेड़-बुन को परिधियों में विकसित होकर, अन्त में गो-पालन की इच्छा को मन में ही समेटे होरी के अवसान के साथ समाप्त हो जाता है। जीते जी तो वह अपनी गो-पालन की साध किसी भी कीमत पर पूर्ण नहीं कर पाता, हाँ, मर कर जाने कौन सी वैतरणी तरने के लिये उसके नाम पर बीस आने का गोदान अवश्य है। जाता है। इस प्रकार इस वस्तु-योजना का मूल उद्देश्य यथार्थवादी ढंग से कृषक संस्कृति के क्रमशः विघटित होने की कहानी कहना ही है।

दूसरी ओर मेहता-मालती के प्रसंग के रूप में नगरीय कथानक की योजना की गई है। इन दो पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने नगरीय जीवन के विभिन्न रूपों को, इच्छा-आकांक्षाओं, शोषणों, प्रवृत्तियों, मनोवृत्तियों, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक एवं स्वच्छन्दतावादी स्थितियों का भरपूर प्रदर्शन किया है। वहाँ भी स्थिति सामान्यतया अच्छी नहीं है। अन्तर केवल आर्थिक स्तरों का ही है। एक अन्तर बौद्धिक विलास का भी है। क्रियाशीलता और संघर्ष दोनों जगह समान रूप से विद्यमान है। उपरोक्त दोनों वस्तुओं को उपन्यासकार ने रायसाहब अमरपाल सिंह तथा गोबर के चरित्रों द्वारा एक-दूसरे से जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। कुछ आलोचक इस अन्तः योजना को उचित एवं सार्थक नहीं मानते। उनका यह भी कथन है कि इनका परस्पर किसी भी प्रकार का आन्तरिक या बाह्य सम्बन्ध नहीं है। पर हमारे विचार में ये मत बधार्थ एवं संगत नहीं। वास्तव में 'गोदान' की वस्तु-योजना के पीछे उपन्यासकार का एक महाकाव्यात्मक एवं व्यापक दृष्टिकोण है। दोनों वस्तु-योजनाएँ जीवन के एक ही सिक्के के दो पहलुओं को रूपायित करती हैं। सिक्के के दोनों पहलू रूपाकार की दृष्टि से अलग होते हुए भी अन्तः योजना की दृष्टि से अलग नहीं।

दोनों प्रत्यक्षतः एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। कृषि-संस्कृति हमारे जोबन का मूल है। उसके बिना खन्ना की शुगर मिल नहीं चल सकती थी। वास्तव में इन दोनों पहराओ कार्यचित्रण करके यह प्रदर्शित करना चाहता है कि कृषक वर्ग या प्राम-संस्कृति तो ओके कारण निरन्तर ध्वस्त हो रही है। जो नगरीय लोग उसे बचा सकते है ये गा भास को रोक सकता है। ग्राम एवं नगर दोनों को बचा सकता है। इन्ही

हि सा हाइम वस्तु-योजना की रार्थकता का अंकन उचित ढंग से कर सकते है छात्र और चरित्र चित्रण वस्तु-योजना के अनुरूप ही उपन्यास के पात्रों का सम्बन्ध

एवं नगर-जोधन से है। दोनों के बीच की कड़ी है रागसाहब अमरपाल सिंह और गोबर। वास्तव में चरित्र-प्रधान यथार्थवादी उपन्यास है। सभी पात्र जीवन के जीते-जागते और बोरे गये तथा जा रहे परिवेश से ही लिये गये हैं। यों प्रायः सभी पात्र वर्ग और पीड़ियों का यि करते हैं, पर उनका निश्चय ही अपना भी एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। ग्राम-कथा कादायक होरी है। वह व्यक्ति तो है ही परम्परागत किसान की समस्त अच्छाइयों और बुराइयों का भी वह जीवन्त प्रतिनिधि है। एक गाय के पालन की सामान्य इच्छा को लेकर उसका चरित्र विषण आरम्भ होता है और उसी साध की पूर्ति के लिये अनवरत संघर्ष करते-करते अन्त में काभर जाता है। उसकी मृत्यु वास्तव में भारतीय कृषक की इच्छाओं-आकांक्षाओं एवं चिर दाचित साधों की मृत्यु है। जिन विषम परिस्थितियों में अनवरत संघर्ष करता हुआ वह मरता है उसमें समूचे कृषि वर्ग की असमर्थता अन्तः स्यूत है। साथ ही परम्परागत कृषक की मान्यताओं की थी वह मृत्यु ही है। उपन्यासकार ने उसे देवत्व के धरातल पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा सामान्य मानव ही रहने दिया है। उसमें यदि दयालुता, कर्मठता, सहानुभूति आदि भावनाएँ है वह झूठ भी बोल लेता है। अपनी पत्नी को पीट भी सकता है, खुशामद भी कर सकता है और रिश्वत भी दे सकता है। यह सभी कुछ वह अपनी थोथी मर्यादा बनाये रखने के लिए ही करता है। यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है। होरी के समूचे व्यक्तित्व को प्रायः समीक्षको में एक सूत्र में इस प्रकार बाँधा है वह जन्म लेता है, जीने के लिए संघर्ष करता है और असहायावस्था में ही मर जाता है।

ग्राम-वस्तु की नायिका है धनिया। वह एक परम्परागत कृषक नारी के समस्त गुण-दोषों में समन्वित है। व्यावहारिक दृष्टियों से धनिया का चरित्र अधिक यथार्थवादी है और उसके व्यक्तित्व में स्वाभाविक सबलता एवं सहज मानवीय गुण भी अपने पति होरी की तुलना में कहीं अधिक है। उसे अपनी सत्ता, अपने स्वत्त्वाधिकारों एवं औचित्य का बोध भी अधिक है। । पर उसकी विवशता केवल भारतीय नारी के रूप में ही नहीं है, बल्कि एक असहाय कृषक नारी के रूप में भी है। उसे ही भोगती हुई वह अन्त में होरी की मृत्यु के अवसर पर उसकी आत्मा की शान्ति के लिये बीस आने का गोदान करवा कर स्वयं भी मूच्छित होकर निढाल गिर पड़ती है। उसका पतन,

उसकी बेसुधी कृषक-नारी की विवशता का प्रतीक है और वास्तव में व्यवस्था की ही देन है। गोबर के व्यक्तित्व में उपन्यासकार ने नई पीढ़ी के किसान का असफल बिद्रोह चित्रित करने का प्रयास किया है। उसकी असफलता वास्तव में युगीन स्थितियों की विवशता के आगे समूची विद्रोही चेतना की विवशता और असफलता है। फिर भी उसे हम नव्य एवं जागरूक कृषक वर्ग का प्रतिनिधि तो कह ही सकते हैं। कम से कम वह एक अव्यवस्थित परम्परा के विरुद्ध विद्रोह का स्तर तो मुखर करता ही है। एक नव्य चेतना, जो समय के साथ-साथ अनेक प्रकार के आन्दोलनों के परिणामस्वरूप कृषक वर्ग में अंगड़ाइयाँ लेने लगी थी, गोबर ने उसी को मुखरित किया है।

उसका पलायन और प्रत्यावर्तन वास्तव में उन परिस्थितियों की अनिवार्य मरिणति है।

इन ग्राम-पात्रों से सम्बद्ध अन्य सभी पात्र भी पूर्णतया अपने यथार्थ परिवेश एवं आयाम में चित्रित हुए है। महाजनी सभ्यता के प्रतीक ग्राम्य पात्र उन जोकों के समान चित्रित हुए है हे कि कृषक-संस्कृति से बुरी तरह चिपकी है, उसका अनवरत भावेन रक्त चूम रहे हैं। जोक के समान तब तक वे कृषक के शरीर को नहीं छोड़ते जब तक कि उसके रक्त की अन्तिम बूंद भी निचूड़ कर शरीर को निवाल करके भूमि पर गिरा नहीं देती।

जमीदार राय साहब अमरपाल सिंह ताल्लुकेदारों एवं जमींदारों के समस्त दाव-पेंचों से युक्त परम्परागत पात्र ही है। एक अन्तर अवश्य है कि वे अनवरत परिवर्तित हो रही स्थितियों की नाही को अवश्य पहचानते हैं। इसी कारण उन्होंने कुछ-कुछ अपना चोला बदलना आरम्भ कर दिया है। वे न नव जागृति, भावी परिवर्तनों की चर्चा भी करते हैं। । पर अपनी गाँठ के सभी दृष्टियों से पूरे हैं। क्योंकि उनकी

राजनीतिक चेतनाएँ वास्तव में स्वार्थ सिद्धियों की आड़ मात्र ही है। वे जो कहते हैं, उनका व्यावहारिक आचरण उससे सर्वथा भिन्न है। मेहता ऐसे लोगों को खूब पहचानता है और इसी कारण सावधान रहने की प्रेरणा भी देता है। वास्तव में रायसाहब उन्ही तथाकथित देशभक्तों एवं राष्ट्रीय जनों के प्रतीक हैं जो कि एक ही रात में स्वार्थ सिद्धि के लिये हैट उतार कर गान्धी टोपी पहन लिया करते थे और आज भी उनका व्यक्तित्व ही यही है।

कथोपकथन या संवाद योजना- 'गोदान' के कथोपकथनों या संवाद की योजना करते समय उपन्यासकार ने पात्रों के परिवेश, आयाम, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक स्थितियों, योग्यताओं आदि का पूर्णतया ध्यान रखा है। छोटे-छोटे वाक्यों एवं पदों में भी संवादों की योजना की गई है और आवश्यकतानुसार भाषणों की सीमा तक में भी उनका विस्तार मिलता है। लेकिन सभी प्रकार से निश्चय ही कथोपकथन वस्तु-योजना को सहज गति प्रदान करने वाले, वक्ता पात्रों के चरित्र के उन्मेषक, भावानुकूल, सहज एवं प्रभावी है। कहीं-कहीं संवाद अनुभवजन्य सुन्दर सूक्तियों के रूप भी धारण करते हुए दिखाई देते हैं। रोचकता सर्वत्र बनी रहती है।

देशकाल और वातावरण देश-काल और वातावरण के चित्रण का भी उपन्यासों में विशेष महत्व माना जाता है। प्रेमचन्द जी ने गोंदान' में देश-काल के समूचे वातावरण को, अन्तः-बाह्य रूपों एवं परिस्थितियों को सहज एवं स्वाभाविक रूप से समेटने का कुशलता से प्रयत्न किया है। एक तरफ हम अनेक प्रकार के शोषणों की स्पष्ट झाँकी पा लेते हैं, जबकि दूसरी ओर उनसे छुटकारा पाने की तड़प, आह और कराह भी वहाँ सहज रूप में सुनी जा सकती है। भौगोलिक एवं प्राकृतिक वातावरण भी बड़ा ही सजीव एवं स्वाभाविक है। परिस्थितियों एवं समस्याओं का चित्रण भी यथार्थ हुआ है। वातावरण के सभी पहलुओं के चित्रण में उपन्यासकार ने तनिक भी कंजूसी नहीं दिखाई। घर, परिवार, समाज, धर्म, राजनीति, उद्योग- धन्धे और कृषि इन सभी के क्षेत्रों को बड़ी सुघड़ता से 'गोदान' में रूप एवं आकार प्रदान किया गया है। इन सभी क्षेत्रों से समन्धित पात्रों को इस कुशलता से संजोया गया है कि पाठक देश-काल एवं उसकी समग्र स्थितियों का सजीव साकार दर्शन करने लगता है। वह तन्मयता के साथ प्रत्येक पात्र एवं स्थिति के साथ सहज ही तादीत्यू स्थापित कर लेता है। करुणा की सहज भावना आद्यान्त समूचे देश-काल और उसके वातावरश पर छायी रहती है। हमारे विचार में इस तत्व की दृष्टि से गोदान' की यह एक बहुत बड़ी सफलता है। 'मोदान' में आपको किसान, मजदूर, उनके शोषक, पटवारी, थाने वाले, अनेक प्रकार के मक्तजन, जमींदार, मिल मालिक, उद्योगपति, व्यापारी, दलाल, पत्रकार, डॉक्टर, प्रोफेसर, सामान्य जन आदि सभी प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। उनके व्यक्तित्व अपने परिवेश से पूर्णतया जुड़े हुए हैं। नारी पात्रों में भी आपको विधवा-सचवा, पतिव्रता, कुलटा, आधुनिका और परम्परागत नारियाँ, चूहिया जैसी सहानुभूतिमयी और अन्य भावों को अभिव्यक्त करने वाली नारियाँ भी यहाँ विद्यमान हैं। इस कारण 'गोदान' समूचे देश-काल के वातावरण एवं परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व कर सका है। वह अपने समूचे युग का दर्पण है। उसका कैन्वेंस अत्यधिक व्यापक एवं सजीव है। भाषा एवं शैली-उपन्यास की भाषा वास्तव में लोक भाषा ही कही जानी चाहिए। पात्रों के अनुकूल सहज स्वाभाविक भाषा का रंग 'गोदान' में स्पष्टतः देखा जा सकता है। भाषा को अपनी सहज बोधगम्यता भी है और लालित्य भी है। सामान्यतया अलंकरण की प्रवृत्ति वहाँ नहीं, फिर भी सहज आलंकारिक प्रयोग, लाक्षणिक एवं व्यंजक प्रयोग भी वहाँ देरी प्रवृति वहाँ है। इरुहता कहीं भी नहीं। भावावेश की स्थितियों सहज स्वाभाविक काव्यम देखे जा सकते है। कहीं-कहीं व्यंग्य-विनोद की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है। आम प्रयोग में आने वाली है। कोक्तियों, मुहावरों आदि का प्रयोग भी उपन्यासकार ने यत्र-तत्र सहज भाव से किया है। उई, अग्रेजी के स्वाभाविक एवं देशज प्रयोग भी वहाँ मिलते हैं। भाषा को पूर्णतया भाव और सर्जक कलाकार की अनुगामिनी कहा जा सकता है।

शैली सामान्यतया ऐतिहासिक वर्णनात्मक ही कही जायेगी। यथार्थ अभिव्यक्ति का रंग सर्वत्र गाढ़ा है। अन्य उपन्यासों के समान यहाँ भी प्रेमचन्द जी ने परिचयात्मक रूख तो अवश्य अपनाया है, पर स्वयं एकदम सीधे ही उपस्थित नहीं हो गये। प्रत्यक्ष परोक्ष आदि अभिव्यक्ति- गोलियों के साथ-साथ सहज मनोवैज्ञानिकता भी वहाँ विद्यमान है। किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष या परोक्ष सैद्धान्तिक आग्रह

वहाँ कतई दिखाई नहीं देता। सभी कुछ साफ, स्पष्ट एवं स्वाभाविक है। छोटे-छोटे पदों एवं वाक्यों की योजना करने में अपने अन्य उपन्यासों की तुलना में निश्चय हो प्रेमचन्द को 'गोदान' में अधिक सफलता मिली है। कथनों एवं कथोपकथनों की भाषण की सीमा तक विस्तार करने की प्रवृत्ति यदि एक तरफ विद्यमान है, तो दूसरी ओर संक्षिप्तता की सोमा भी देखी जा सकती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि तात्विक दृष्टियों से 'गोदान' की भाषा-शैली उपन्यासकार की विकसित कला एवं औपन्यासिक शिल्प के सर्वथा अनुकूल है।

उद्देश्य-जहाँ तक 'गोदान' उपन्यास के उद्देश्य का प्रश्न है, हमारे अपने विचार में वह समग्र व्यवस्था के दोष को ही अभिव्यक्ति प्रदान करना है। वे मुख्यतः यह बताना चाहते हैं कि भारतीय जीवन की मूल या रीढ़ कही जाने वाली कृषि-संस्कृति किस प्रकार एवं किन कारणों से क्रमशः विघटित होती जा रही है। दूसरी ओर उनकी गाढ़े पसीने की कमाई पर नागरिकों के समर्थ एवं बुद्धिजीवी वर्ग किस प्रकार अपनी ऐय्याशियों एवं रंगरलियों में निमग्न हैं। दोनों में मूलतः कोई सामंजस्य एवं सन्तुलन नहीं है। परिणामस्वरूप हमारे जीवन एवं समाज का समूचा शीरांजा ही बिखरता जा रहा है। उसे बचाने के लिये दोनों की स्थितियों एवं आवश्यकताओं को समझ कर ताल-मेल बैठाने की आवश्यकता है। यदि ऐसा न किया गया तो सारा जीवन और समाज ही ठप पड़ जाएगा। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि शिल्प एवं औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से 'गोदान' निश्चय ही प्रेमचन्द जी की सर्वश्रेष्ठ सर्जना है।

3.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- "गोदान की कथावस्तु अत्यन्त सुव्यवस्थित, सुनियोजित, आकर्षक और आवश्यकतानुसार बदलने, मड़ने और बढ़ने वाली है।" प्रस्तुत कथन के आधार पर गोदान की कथावस्तु की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
- कथानक के आधार पर 'गोदान' की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
- "गोदान में प्रेमचन्द प्रसंगों के उपन्यासकार हैं।" प्रस्तुत कथन के परिप्रेक्ष्य में गोदान की कथावस्तु की समीक्षा कीजिए।
- 'गोदान' उपन्यास की कथागत विवेचना करते हुए उसकी महत्वपूर्ण कथाविषयक विशेषताओं की स्थापना कीजिए।
- "गोदान में दो कथायें समानान्तर गति से एक साथ चलती है किन्तु प्रायः परस्पर सम्बद्ध रूप में।" प्रस्तुत कथन की सारगर्भित समीक्षा कीजिए।
- "गोदान की दोनों कहानियाँ अधूरी हैं किन्तु इसी में इस उपन्यास की पूर्णता है।" प्रस्तुत कथन की समीक्षा गोदान की कथावस्तु के आधार पर कीजिए।
- "मध्य वर्ग की कुण्ठाओं का उद्घाटन करना 'आधे-अधूरे' नाटक का उद्देश्य है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
- "मोहन राकेश अपने इस नाटक के माध्यम से महानगरीय विघटनशील परिवार का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं।" समीक्षा कीजिए।
- "गोदान की कथावस्तु अत्यन्त सुव्यवस्थित, सुनियोजित, आकर्षक और आवश्यकतानुसार बदलने, मड़ने और बढ़ने वाली है।" प्रस्तुत कथन के आधार पर गोदान की कथावस्तु की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
- 'गोदान' उपन्यास की कथागत विवेचना करते हुए उसकी महत्वपूर्ण कथाविषयक विशेषताओं की स्थापना कीजिए।
- "गोदान की दोनों कहानियाँ अधूरी हैं किन्तु इसी में इस उपन्यास की पूर्णता है।" प्रस्तुत कथन की समीक्षा गोदान की कथावस्तु के आधार पर कीजिए।

- प्रेमचन्द के औपन्यासिक-कला-वैशिष्ट्य का आकलन उनके उपन्यास 'गोदान' के आधार पर कीजिए।
- कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भाषा-शैली, देशकाल-वातावरण और उद्देश्य की दृष्टि से गोदान की समीक्षा कीजिए।

3.8 सारांश

निबंध को गद्य की कसौटी कहा है। यह ससीम व्यक्तित्व से असीम विचार तक पहुँचने की यात्रा है। समाज और समय के परिप्रेक्ष्य में जीवन से संबंधित चिंतन को अभिव्यक्त करने के लिए जिस गद्य विधा का प्रयोग किया जाता है उसे निबंध कहते हैं। इस विधा का आरंभ भारतेंदु युग में हुआ। साहित्य के साथ पत्रकारिता का भी प्रादुर्भाव उस युग में हो रहा था। ब्राह्मण, हिंदी प्रदीप, हरिश्चंद्र मैगजीन इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं ने निबंध विधा को समृद्ध किया। इस समय राजनीति, ममाज-सुधार, धर्म-अध्यात्म, अतीत का गौरव, आर्थिक दुर्दशा एवं प्रेरणास्पद चरित्रों को निबंध के विषय के रूप में चुना जाता था। वालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मित्र ने इस विधा में उल्लेखनीय योगदान दिया जिसे देखते हुए रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें 'स्टील और एडीसन' कहा। इस युग में विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक, इतिवृत्तात्मक, शोधात्मक इत्यादि शैलियों में निबंध लेखन के तहत गद्य विधा की अभिव्यक्ति हुई। द्विवेदी युग में ही रामचंद्र शुक्ल के आरंभिक निबंध प्रकाशित हुए थे। इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं माधव प्रसाद मिश्र (माधवमिच निबंधमाला), मन्दार पूर्ण सिंह (आचरण की सभ्यता, मन्त्री वीरता, मजदूरी और प्रेम, कन्यादान), चंद्रधरशर्मा गुलेरी (कछुवा धरम, मारेमि मोहिं कुठाव) इत्यादि। छायावाद युग में निबंध विधा के अंतर्गत विषय व स्थान पर व्यक्ति और लालित्य को प्रधान माना गया।

3.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास सं नगेंद्र और हरदयाल
2. हिंदी का गद्य साहित्य रामचंद्र तिवारी
3. हिंदी साहित्य और मंसंवेदना का विकाम: रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास: बच्चन सिंह

इकाई – 4

लघुत्तरीय प्रश्न- द्वतपाठ में निर्धारित गद्यकारों से सम्बद्ध दो लघुत्तरीय प्रश्न होंगे।

नाटककार- भारतेन्दु हरीशचंद्र, डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल।

रूपरेखा

4.1 प्रस्ताबना

4.2 शब्द संपदा

4.3 उद्देश्य

4.4 भाषा-शैली की दृष्टि से 'गोदान'

4.5 "गोदान' तत्कालीन परिस्थितियों का एक सजीव, प्रभावशाली और यथार्थ चित्र

4.6 "गोदान भारतीय कृषक संस्कृति का महाकाव्य

4.7 "प्रेमचन्द की लेखनी ग्रामीण पात्रों की रचना

4.8 'गोदान' में नारी पात्रों का चित्रण

4.9 सारांश

4.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

4.11 पठनीय पुस्तकें

4.1 प्रस्ताबना

हिंदी निबंध का विकास क्रम

हिंदी निबंध के विकास को चार कालों में विभक्त किया जा सकता है भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग।

भारतेंदु युग

भारतेंदु युग को हिंदी निबंध की विकास यात्रा का प्रारंभिक चरण माना जा सकता है। भारतेंदु जी के निबंध ही हिंदी के प्राथमिक निबंध हैं, जिनमें निबंध कला की मूलभूत विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। भारतेंदु ने हिंदी गद्य की अनेक विधाओं का न केवल सूत्रपात किया अपितु उन्हें पल्लवित करने का श्रेय भी उन्हें ही प्राम है। भारतेंदु के निबंध विषय एवं शैली की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण हैं। उन्होंने इतिहास, समाज, धर्म, राजनीति, यात्रा, प्रकृति वर्णन एवं व्यग्य विनोद जैसे विषयों पर निबंधों की रचना की। भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र के अतिरिक्तः बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुम, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादन व्याम आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों ने भी हिंदी निबंध के विकास में पर्याप्त योगदान किया है।

द्विवेदी युग

हिंदी निबंध के विकास के द्वितीय चरण को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादकत्व सन् 1903 ई. में संभाला था, अतः द्विवेदी युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है। दिवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से भाषा संस्कार एवं व्याकरण शुद्धि के जो प्रयास प्रारंभ किए उनका प्रभाव तत्कालीन सभी निबंधकारों पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा।

द्विवेदी ने 'बेकन' के निबंधों को आदर्श निबंध मानते हुए उनके निबंधों का हिंदी अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से किया। इसके अतिरिक्त उनके अपने निबंधों का संग्रह 'रमज रंजना नाम में प्रकाशित हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में विचार प्रधान निबंधों की रचना अधिक हुई है। भारतेंद्र युग की अपेक्षा इम युग के निबंधकारों की भाषा शैली में प्रौद्रता दिखाई पड़ती है। इन निबंधकारों ने युगीन समस्याओं की अपेक्षा माहित्यिक एवं वैचारिक समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए निबंधों के विषयों की खोज की। हास्य व्यंग्य के स्थान पर इनमें गंभीरता अधिक है।

4.2 शब्द संपदा

1. अपाहिज = लाचार, मजबूर
2. आलंबन = मदद, सहायता
3. करुणा = दया, रहम
4. घनिष्ठता = नजदीकी, करीबी
5. दुर्जनता = दुष्टता, पापकर्म, दुराचार
6. निराकरण = अलग करना, दूर हटाना
7. निवृत्ति = समाप्ति, रुकावट
8. सहानुभूति = हमदर्दी, संवेदना, कृपा
9. सात्विकता = सभी गुणों से संपन्न, अच्छी आदत

4.3 उद्देश्य

भारतेन्दु हरीशचंद्र, के जीवन से अवगत हो सकेंगे।
डॉ. रामकुमार वर्मा के माहित्यिक अवदान को समझ सकेंगे।
जगदीशचंद्र माथुर के दर्शन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
धर्मवीर भारती की भाषा और शैली में परिचित हो सकेंगे।
लक्ष्मीनारायण लाल के हिंदी साहित्य में स्थान व महत्व को समझ सकेंगे।

4.4 "गोदान भारतीय कृषक संस्कृति का महाकाव्य

गोदान : ग्राम-जीवन का महाकाव्य-उपन्यास के महाकाव्यात्मक लिए निम्न- लिखित तात्यों का होना आवश्यक माना गया है-कलेवर की व्यापक विशालता, असम्बद्ध एवं अनियमित कथावस्तु, समग्र देशकाल का चित्रण, अनेक पीढ़ियों का वर्णन, समाज, धर्म राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि समस्त पक्षों का चित्रण, पात्रों की बहुलता एवं विविधता, उदात्त एवं सार्वकालिक संदेश से समन्वित उद्देश्य। इन्हीं तत्वों के आधार पर हम यह परखने की चेष्टा करेंगे कि 'गोदान' महाकाव्यात्मक उपन्यास है कि नहीं और किस सीमा तक वह ग्राम-जीवन का महाकाव्य बन सका है।

"गोदान' उपन्यास में ग्राम-परिवेश एवं उद्देश्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी कहते हैं- "गोदान का कथानक ग्रामीण जीवन का कथानक है। उसका नायक एक भारतीय कृषक है। गोदान में भारतीय ग्राम के अनेक मुखी जीवन का

दिग्दर्शन कराया गया है। भारतीय कृषकों के समस्त संस्कारों से युक्त उसकी वर्तमान दशा का चित्रण किया गया है। उपन्यास का उद्देश्य भारतीय ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को उपस्थित कर ग्रामीण जीवन की स्थिति का उद्घाटन करना है।" हम वाजपेयी जी के इस मत से पूर्णतया सहमत है। केवल एक बात- 'उसकी वर्तमान दशा का चित्रण किया गया है' के सम्बन्ध में केवल इतना कहना चाहते हैं कि किसान की केवल वर्तमान दशा का ही 'गोदान' में चित्रण नहीं हुआ, बल्कि वर्तमान के संदर्भ में सुदियों से चली आ रही उसकी पिष्ट-पेशित स्थितियों का वहाँ सर्वांगीण चित्रण हुआ है। हाँ, केवल हिन्दी भाषा के ही नहीं, बल्कि भारतीय भाषाओं के साहित्य में इस प्रकार का सजीव, यथार्थ और समग्र चित्रण पहली बार अवश्य हुआ है। वस्तु-वर्णन की दृष्टि से आचार्य वाजपेयी का यह कथन 'गोदान' को महाकाव्यात्मक और विशेषतः ग्राम-जीवन का महाकाव्यात्मक उपन्यास भी प्रमाणित कर देता है।

प्रेमचंद जी के सम्बन्ध में 'गोदान' के सन्दर्भ में एक अन्य समीक्षक की निम्न उक्ति भी विशेष दर्शनीय है। वे उन्हें 'प्रजा संस्कार' कहते हुए लिखते हैं- "प्रेमचंद ठेठ गंवई गाँव की खादे थे। उनका सारा जीवन कठिनाइयों के साथ सतत्-संघर्ष का एक मधुर प्रयत्न रहा है और साहित्य क्षेत्र में उनकी आन का सबसे बड़ा कारण उनकी पीड़ित आत्म-चेतना ही रही है। यह वेदना ही साहित्य में अमर होकर वरदान हो गई। प्रसाद जी मध्य युग के यदि राज संस्कारण थे, तो प्रेमचन्द प्रजा संस्करण। राज तथ्य बदलते गये, किन्तु जिस राजा के जीवन में कोई बाह्य परिवर्तन नहीं हुआ, प्रेमचंद उसी प्रजा के चित्रकार हैं। यही नहीं, प्रेमचंद स्वयं भी वही प्रजा है। वह प्रजा मुगल काल से अब तक अपने आंसुओं से ही जीती आई है। प्रेमचन्द उन्हीं आँसुओं के कलाकार है।" इस कथन से भी हमारे उक्त मत का समर्थन हो जाता है कि 'गोदान' में किसान की वर्तमान दशा का ही चित्रण नहीं हुआ, बल्कि वर्तमान के सन्दर्भ में पहली बार उसकी युग-युगों की पेपित पीड़ित दशा का व्यापक एवं सर्वांगीण चित्रण हुआ है और ऐसा चित्रण केवल महाकाव्यों में ही सम्भव हुआ करता है। अतः तथ्यगत वस्तु-चित्रण की व्यापकता की दृष्टि से 'गोदान' में महाकाव्यात्मक और विशेषतः ग्राम-जीवन के महाकाव्यात्मक तत्वों का समावेश निश्चय ही स्वीकारा जा सकता है।

'गोदान' उपन्यास के कलेवर में भी व्यापकता एवं विशालता है। 'रंगभूमि' उपन्यास को तुलना में यद्यपि यह उतना व्यापक कलेवर वाला उपन्यास नहीं, फि भी इसने ग्राम एवं नगर दोनों के परिवेश को अपने में समानान्तर रूप से घेर रखा है। दोनों के तथ्य भी मूलतः एक हो चेतना-श्रृंगार के परस्पर असम्बद्ध से सम्बद्ध परिपाश्वों को उजागर करने वाले हैं। प्रश्न है अव्यवस्थित स्टे व्यवस्था का। वह व्यवस्था ग्राम और नगर दोनों जगह समान रूप से विद्यमान है और प्रत्यक्षतः या परोक्षतः दोनों का शिकार 'होरी' अर्थात् सामान्य किसान ही हो रहा है। इस प्रकार व्यापक कलेवर में एक ही चेतना, एक ही आत्मा कार्यरत दिखाई देती है। वह कलेवर

कुत्ते से पल-पनप रही ग्राम और नगर की संस्कृति का समान कलेवर है। क्षेत्र सीमित होते भी जहाँ तक कलेवर के प्रतिनिधित्व करने का प्रश्न है, वह समूचे देश का प्रतिनिधित्व करता है। सभी ग्रामों के किसान होरी ही है और सभी जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह ही हैं। इसी प्रकार सभी मिलों के मालिक खन्ना है और सभी मजदूर गोबर हैं। सड़क के ठेकेदार और वहाँ टोकरी ढोकर भूख से मरने वाले भी सभी समान है। ऋणग्रस्त और ऋण देकर किसान का शोषण करने वाले भी सर्वत्र समान है। अतः कहा जा सकता है कि कलेवरगत व्यापकता निश्चय ही महाकाव्यात्मक ही है।

जहाँ तक असम्बद्ध एवं अनियमित कथावस्तु के होने का प्रश्न है, 'गोदान' में उतनी असम्बद्धता और अनियन्त्रिता नहीं है। यह ठीक है कि हम कई बार एकाएक ग्राम की गलियों की विभीषिका से निकल कर शहर की भीड़-भाड़ में पहुँच जाते हैं। यह भी ठीक है कि कई बार सहसा हम ग्राम के करूण एवं वीभत्स यथार्थ से निकलकर नगरी बौद्धिक विलास एवं वैचारिक आदर्शों की रंगरलियों में भी विवरने लगते हैं, कई बार ग्राम-दशा का निरीक्षण पिकनिक का रूप भी धारण कर लेता है। ग्राम की मैली-कुचैली, कुरूप ललनाओं के संसार में विचरण करते समय एकाएक मालती की सुडौली, गोरी और साफ-सुथरी पिण्डलियाँ भी चमकने लगती हैं। फिर भी मूल कथ्य के

द्विपक्षीय वर्णन की दृष्टियों से बड़ी विनम्रता के साथ हम 'गोदान' की वस्तु योजना को अनियन्त्रित एवं असम्बद्ध नहीं मान सकते। न ही वे चिन्दियाँ है और न ही कतरने की चेष्टा की गई है। सभी कुछ सौद्देश्य एवं एक ही मूल तत्व को अनेकता से पर्यवेक्षित कर चित्रित करने का इच्छित प्रयास है। यदि असम्बद्ध एवं अनियन्त्रित कथावस्तु महाकाव्यात्मकता का एक लक्षण है, तो हम गोदान को महाकाव्यात्मक उपन्यास (एक इस दृष्टि से नहीं स्वीकार सकते)। हमारे विचार में तो महाकाव्यात्मक सर्जनाओं से असम्बद्ध एवं अनियन्त्रित वस्तु-योजना की न तो कोई अनिवार्यता है और न प्रायः होती भी नहीं। असम्बद्धता एवं अनियंत्रण से यदि विविध विषयों के समावेश से अभिप्राय है तो निश्चय ही ग्राम-जीवन के समस्त विषयों एवं नगर-जीवन के अनेक विषयों का भी समावेश यहाँ प्रासंगिक रूप में किया गया है। क्योंकि उपन्यास में पात्र विविध हैं और उनकी प्रवृत्तियाँ भी विविध एवं बहुमुखी हैं। अतः उन्हीं के अनुरूप अनेक विषयों का समावेश यहाँ हो गया है। यह सब कुछ अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक रूप में हुआ है। अतः यदि असम्बद्धता एवं अनियंत्रण का अर्थ विविधता है, तो निश्चय ही 'गोदान' महाकाव्यात्मक उपन्यासों की श्रेणी में ही आता है।

इसमें मुख्य कथा होरी की चलती है। उसके साथ झुनिया-गोबर, सिलिया मातादीन, नौहरी आदि की अन्य, अनेक अन्तर्कथाएँ भी जुड़ी हैं कि जो ग्राम के वैविध्यों की परिचायक हैं। इस प्रकार ग्राम एवं नगर के बीच की कड़ी के रूप में रायसाहब अमरपाल का वैविध्यपूर्ण जीवन भी जुड़ा है। उन्हें भी नगरीय मित्रों में से मेहता-मालती की कथा मुख्य होकर अलग से विकसित होती लगती है। उधर खन्ना-गुबिन्दी की कथा, मिर्जा खुशेंद की अखाड़ेबाजियाँ, तन्खा की दलाली और ओंकार नाथ की भ्रष्ट पत्रकारिता आदि के विभिन्न रूप हमारे सामने आते हैं। यह समूचा वैविध्य 'गोदान' की मूल भावना-कृषक संस्कृति पर पड़ने वाले चहुमुखी बोझ को स्पष्ट उजागर करता है।

स्थूलतः 'गोदान' उपन्यास में समय देश का चित्रण हुआ भी नहीं स्वीकारा जा सकता। क्योंकि समूची वस्तु-योजना उत्तर प्रदेश के नगर और ग्राम को ही स्थूलतः रूपायित करती है। किन्तु, जैसा कि हम ऊपर कह चुके है, मूलतः यहाँ वर्णित परिवेश और देश के अन्य भागो में वर्णित परिवेश में कोई सूक्ष्म अन्तर नहीं है। क्योंकि होरियों का शोषण सभी जगह समान रूप से चला है और चलता है। नगरीय ठेकेदारों, जमींदारों, मिल मालिकों, दलालों, पत्रकारों और बौद्धिकों की चोचले बाजियों भी सभी जगह समान रूप से एक जैसी ही है। कुछ लोगों में इति इराणे भी कही है।यही है और है भी। पर यहीं सकते है।देकर ही अधिक है, पर इससे परिवेशिका कोई अन्तर नहीं पड़ता।

सेवित हो पाया है। होरी और एकरी का प्रतिनिधि करते हैं। गोबर आधुनिक पड़ी का आक्रोश अफवर है। यह उसके प्रत्यावर्तन के सा मेंइयो सामने आती है, परन्तु है यह परिस्थितियों की देन और विवशता ही। मातादीन को भी हम इस अर्थ में दूसरी नाम पड़ी का स्वीकार कर सकते हैं कि वह अन्त में अपने पिता और बिरादरी की परवाह न करके मिलिया चारिन के प्रेमको निवाहन ही अपना ब्राह्मणाव (धर्म) मानने लगता है। नगरी जीवन में पीढ़ियों का अन्तर एवं आक्रोश प्रायः नहीं दिखाया गया है। हां, डॉ. पालती की बहिन के रूप में स्वातन्त्र्य की इच्छा और आक्रोश को वहाँ भी आपण संक्षेपतः एवं सांकेतिक रूप में चित्रित किया गया है। गोबर की सन्दान को तीरसी पीढ़ी भाव सकते हैं, पर वह अभी नितान्त अबीध है। अतः वह भी पीढ़ियों के संघर्ष एवं व्यवस्या चक्र से पिसती हुई अवश्य दिखाई गई है। इसका प्रभाव उसके संस्कारों पर आगे चलकर अवश्य पड़ता है। (आज के सन्दर्भ में वह प्रभाव हमारे सामने स्पष्ट है)। यद्यपि लिओ तालस्ताय के 'बार एण्ड पीस' के समान यहाँ पीढ़ियों की भरमार तो नहीं, परन्तु विविधता एवं उनका अन्तर

यहाँ भी अवश्य स्पष्ट है। प्रेमचन्द जी ने 'गोदान' में नगरीय और ग्रामीण समाज का भी स्पष्टतः चित्रण किया है।

उनकी समस्त आस्थाओं, नैतिकता, नीति-रीतियों, राजनीतियों, धार्मिक विश्वासों आदि का भी म्यकृतः चित्रण किया है। इन सबके बारे में परम्परागत मूल्यों की झांकी तो हमें मिल ही जाती है। उनके प्रति आक्रोश एवं नव मूल्यों के उदय की झांकी भी मिल जाती है।

परम्परागत एवं सामयिक मूल्य किस प्रकार से प्राम-जीवन का शोषण कर रहे हैं, न्याय व्यवस्था कैसी है आदि बातों के सम्बन्ध में 'गोदान' का निम्नलिखित उद्धरण विशेष दर्शनीय है

"थाना, पुलिस, कचहरी, अदालत सब है, हमारी रक्षा के लिये, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेबस है, उसकी गर्दन काटने के लिये सभी तैयार रहते हैं। यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दें, तो गाँव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे तो निर्वाह न हो। थानेदार और कानिस्टबल तो जैसे उसके दामाद है। जब उनका दौरा गाँव में हो जाय, किसानों का धरम है कि यह उनका आदर-सत्कार करें नजर नयाज दें, नहीं तो एक रिपोर्ट में गाँव का गाँव बंध जाए।"

इसके अतिरिक्त उपन्यासकार ने गाँव के जीवन से सम्बन्धित सभी प्राप्य एवं नगरीय पक्षों को, उनके आचार-विचारों एवं रीति-नीतियों का भी स्पष्ट आकार प्रदान किया है। 'गोदान' उपन्यास में पात्रों की संख्या भी किसी दृष्टि से कम नहीं। यद्यपि यह तालस्टा

के 'बार एण्ड पीस' के समान पांच सौ तक तो नहीं पहुंची, उससे बहुत ही कम है। फिर भी नाम उपन्यासों की तुलना में उसे कम नहीं कहा जा सकता। पात्रों में विविधता तो है ही उनके चरित्रों का चित्रण भी कथ्य के अनुरूप समग्रता के साथ किया गया है। पात्र व्यक्ति होते हुए भी युगीन एवं परम्परागत जर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। होरी यदि परम्परागत, सभी प्रकार के शोषणों को एक प्रकार से दैवी और व्यवस्था मानकर स्वीकारने वाला स्थिर पात्र है तो गोबर व्यवस्था के प्रति विद्रोही गतिशील पात्र है। रायमान अमरपाल सिंह, मिल मालिक खन्ना आदि है तो मेहता मालती में परिवर्तन एवं गतिशीलता है। दातादीन को दिया दीन असता गतिशीलता आ जाती है। समग्रता की वि के परम्परागत एवं नख्य मूल्य-मानों के साथ सुक्ष्मतः अन्तः स्मृत है। सभी पात्र एक को एक संस्कृति की समग्र चेतनाओं को प्रतिविम्वित एवं प्रतिपादित करते हैं। इसी उनका अपना व्यक्तित्व भी बना रहा है और वर्ग का व्यक्तित्व भी। समग्रत सभी पात्र एक ही व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को रूपायित करते हैं।

उपन्यास का उद्देश्य भी उदात्त एवं महान् है। उपन्यासकार कृषक एवं उसके साथ जुड़ी संस्कृतियों का यथार्थ वर्णन करके उसकी समय व्यवस्था के दोष को हमारे सामने उजागर है। साथ ही यह सन्देश भी दिया है कि यदि हम सभी वर्गों का हित चाहते हैं ज सोही समूची व्यवस्थाओं को बदलना होगा। व्यवस्था-दोष के कारणों की तह ते हैं तु हमे और प्रेमचन्द 'गोदान' में उस तह तक पहुंचे हैं। उन्होंने व्यवस्था के कण-कण में पहुँच कागारराई से झाँका है। इसी कारण होरी ही नहीं, राय साहब, अमरपाल तथा अकाणा में पहुँ कनकी सहानुभूति की सीमा में आ जाते हैं। इसका मुख्य कारण है उनका मानवतावादी दृष्टिकोण यह मानवतावादी दृष्टिकोण किसी भी सर्जना का चरमौदात्य कहा जा सकता है। मानवता रावत है, उसकी रक्षा हर मूल्य पर होनी ही चाहिये, क्या 'गोदान' का यह सन्देश शाश्वत सही है? अतः शाश्वत उद्देश्य एवं सार्वकालिक सन्देश की दृष्टि से भी 'गोदान' को हम महाकाव्यात्मक उपन्यासों की श्रेणी में रख सकते हैं।

अब तनिक ग्राम-जीवन की दृष्टि से, विशुद्ध ग्राम्य-परिवेश की दृष्टि से भी 'गोदान' के काव्यत्व पर विचार कर लेना संगत होगा। प्रेमचन्द जी ने ग्राम-जीवन और वातावरण के समस्त परिपार्थों को उभारने का सतत् एवं निरपेक्ष प्रयास किया है। ग्रामों का प्राकृतिक-परिवेश, लिक स्थितियाँ एवं संरचनाएँ यहाँ एकदम साकार हो उठी हैं। प्राकृतिक वर्णन की एक टी-सी झलक देख लेना आवश्यक है- "फागुन अपनी झोली में नवजीवन की विभूति लेकर जा पहुंचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर भी सुगन्ध बाँट रहे थे और कोयल आम की हालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी।" इस प्रकार ग्रामों के सामान्य खाते- पनि घरों का वर्णन देखिये- "द्वार पर बड़ी-सी चरनी थी, जिस पर दस-बारह गाय-भैंस खड़ी सानी खा रही थीं। ओसारे में घड़ा-सा तख्त पड़ा था, जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूंटी में ढोलक लटक रही थी, किसी पर मंजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते में बंधी हुई रखी थी, जो शायद रामायण हो।" उपन्यासकार ने ग्राम्य परिवेश में पलने वाले पात्रों की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों को भी महाकाव्यात्मक

परिवेश प्रदान करने का सहज प्रयास किया है। होरी जैसे किसानो की सामाजिक एवं आर्थिक विवशता का चरम रूप हमें उस समय देखने को मिलता है जब होरी अपनी किशोरी बालिका के होने वाले प्रौढ़ आयु के पति, अपने दामाद से दो सौ रुपया अपने खेत को बेदखली से बचाने के लिये लेता है। उस समय की विवशता का यह अंकन कितना सजीव एवं मार्मिक है- "होरी ने रुपये लिये तो उसका हाथ कांप रहा था, उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुंह से एक शब्द न निकला, जैसे आसमान से गढ़े में गिर पड़ा हो और गिरता चला जाता हो। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसे नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो भी आता, उसके मुँह पर थूक देता है।" इसी प्रकार की मार्मिकता से लेखक ने अन्य प्राम्य स्थितियों का भी प्रभावी वर्णन किया है।

ग्राम्य-जीवन, कृषि-प्रधान जीवन है। केवल गाँव ही नहीं, हमारे देश की समूची सभ्यता- संस्कृति आज भी मुख्यतः कृषि-प्रधान ही है। प्रेमचन्द जी ने इस संस्कृति का भी 'गोदान' में

सभी दूहियों से सजीव, मार्मिक एवं प्रभावी चित्रण किया है। होरी की गाय पालन की इच् कृषक-संस्कृती की निश्चय ही अन्यतम और एकान्त इच्छा है। क्योंकि इसे तह सुख-समृद्धि का मूल प्रतीक ही नहीं, कारण भी मानता है। होरी की चिन्तन्ना के शब्दों में- "गऊ ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे सबेरे गऊ के दर्शन हो जायें तो क्या कहना।" इसके अतिरिक्त किसान अनेक प्रकार के कष्ट सहन करके भी खेती बाड़ी छोड़कर अमर्यादित नहीं होना चाहता। इस तथ्य की अभिव्यक्ति होरी की निम्न उक्ति से से हो जाती है-"हमी को खेती से क्या मिलता है? जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता पहनता है। लेकिन खेद को तो छोड़ा नहीं जाता, परजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।" इसके अतिरिक्त कृषि संस्कृति के अनेक प्रकार से किये जाने वाले शोषण का समूचा चित्र तो 'गोदान' में है ही सही। उनकी सभी प्रकार को दुखावस्थाओं का मूल कारण लेखक ने इस आर्थिक शोषण को ही बताया है और यह सोलह आने सत्य भी है। कृषक संस्कृति में बनियों का महत्व, ब्राह्मणो, जमींदार और उसके कारिन्दों, थाना-पटवारी, बिरादरी और पंचायत, वैयक्तिक आचार एवं सामाजिक आचार-विचार आदि कोई भी पक्ष यहाँ अछूत नहीं रहा। कृषक कितना अधिक धर्म-भीरू होता है, इसका भी एक उदाहरण पण्डित दातादीन के ऋण के सन्दर्भ में देखिए-

मगर होरी के पेट में धर्म की क्रान्ति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिये के रुपये होते, तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रुपये, उसकी एक पाई भी दब गई तो हड्डी तोड़कर निकलेगी।" वह ब्राह्मण के घिनौने शोषक रूप को भूलकर भी उसको पूजा ही करता है। शादी-ब्याह, रीति-रिवाजों, इनके सम्बन्द में किसानों की धारणाएँ आदि कोई भी पहलू अछूता नहीं रहने दिया गया। उपन्यासकारों ने वहाँ के सम्मिलित परिवारों और उनके विघटन की दर्दनाक कहानी भी कही है। भीतरी एवं बाहरी गड़ बड़ियों को भी प्रेमचन्द ने छोड़ा नहीं। तात्पर्य यह है कि कृषक संस्कृति का समग्र रूप यहाँ साकार होकर पाठक के बस ही आविल कर देता है। मन को बरबस

इनके अतिरिक्त ग्रामीण पात्रों के नाम, वेश भूषा, क्रिया-कलाप, शारीरिक गठन, बातचीत के ढंग एवं भाषा आदि भी समग्रतः ग्राम-परिवेश के अनुकूल है। गोबर, धनिया, झुनिया, सिलिया, पटेश्वरी, नोखेराम, नौहरी, दुलारी साहुआइन, मातादीन, दातादीन-ऐसे नाम हैं जो कि सूक्ष्मतः पात्रों के व्यवसाय एवं जाति-पाति का द्योतन भी प्रायः करा देते हैं। लाठी, पगड़ी, जूते, मिरजई, तमाखू का बटुआ आदि के उपकरण एक ग्रामीण किसान को हमारे सामने साकार खड़ा कर देते हैं। भाषाई प्रयोगों से भी गाँव के जाति एवं व्यवसायों का स्पष्टतः पता चल जाता है। इस प्रकार सभी दृष्टियों से उपन्यासकार प्रेमचन्द ने 'गोदान' उपन्यास में समग्र ग्रामीण परिवेश को उजागर करने और उभारने का सफल प्रयत्न किया है। इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'गोदान' उपन्यास भारतीय जीवन का एक सम्पूर्ण महाकाव्य है।

4.5 "गोदान' तत्कालीन परिस्थितियों का एक सजीव, प्रभावशाली और यथार्थ चित्र

देशकाल चित्रण की सफलता की दृष्टि से 'गोदान' की समीक्षा कीजिए। गोदान का देशकाल चित्रण 'गोदान' सन् 1936 में प्रकाशित हुआ। प्रेमचन्द उत्तर- की राष्ट्रीय चेतना 'गोदान' से पहले के उपन्यासों में अनेक रूपों में उभरी है, परन्तु 'गोदान' मे समस्त अनुभवों से युक्त होकर वर्ग-संघर्ष के रूप में सामने आई है। गोदान भारतीय जीवन की उन समस्त घटनाओं और विचारधाराओं को उभारा गया है जो कि अपना श्रीय महत्व रखती हैं। सामाजिक क्षेत्र में जो नवीनता मान्यताओं के अनेक संघर्ष चल रहे थे. उनको भी 'गोदान' में स्थान मिला है। इस प्रकार 'गोदान' की रचना जिस सामाजिक भूमि में हुई है. उनमें समाज पुरानी रूढ़ियों और जीवन की समस्याओं से मुक्ति पाने के लिये प्रयत्नशील था और आर्थिक क्षेत्र में वह जमींदार एवं पुजीपतियों के शोषण से मुक्त होने के लिये छटपटा रहा था। राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय जन-जीवन अंग्रेजी शासन को दासता से मुक्ति पाने क लिए आतुर था। 'गोदान' की ग्राम और नगर की ऊपर से दीखती हुई दोनों को चास्ति पाने के रूप में तत्कालीन भारतीय का जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देती है कथाएँ अविभाज्य समस्याओं की जड़ दरिद्रता को ठहराया गया है और वह दरिद्रता राजनैतिक शोषण की पुत्री है।

राजनैतिक स्थिति-ग्रामों में जमींदार की स्थिति सर्वोपरि थी, उसके पश्चात् मुखिया, महाजन, ब्राह्मण और पुरोहित का महत्व था, पंचायत का फैसला सर्वमान्य होता था। जमीदार महान में किसानों के खेतों को नीलाम कर देते थे। किसानों को जमीदार को भेंट भी देनामी और बेगार भी करनी पड़ती थी। 'गोदान' के युग में राष्ट्रीय-आन्दोलन अपनी उग्रता को नहीं पहुँब पाया था। कांग्रेस का आन्दोलन देश के एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित था। इसकी बागडोर नगरों के हाथ में थी। ग्रामीण क्षेत्रों में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव बहुत ही कम था। बेलारी की धनिया जैसी स्त्री भी इस सत्य को समझ चुकी थी कि, "जेल जाने से सुराज नहीं मिल सकता।" परन्तु हवा का रुख पहचानकर जमींदार और पूँजीपति जेल जा-जाकर अपने को राष्ट्रीय नेता घोषित करते थे। इलाके की जनता उनके प्रति श्रद्धा करने लगी थी। वे राष्ट्रीय- आन्दोलन में भाग लेने के साथ ही सरकार से भी मिले रहते। रायसाहब अमरपालसिंह के निम्न चरित्र-चित्रण में राष्ट्रीय कहे जाने वाले जमींदारों का यथार्थ चित्र अंकित हो गया है-

"पिछले सत्याग्रह संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौशिल की मेम्बरी छोड़कर जेल गये थे, तब से उनके इलाके में आसामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाके में आसामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, डॉट और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे। जाब्ते का काम तो जैसा होता चला आया है वैसे ही होगा।..... आसमियों से वह हँसकर बोल रहे थे, यही क्या कम है ? सिंह का काम तो शिकार करना है। अगर यह गरजने और गुरनि के बदले मीठा बोल सकता तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता।"

'गोदान' में प्रेमचन्द रायसाहब जैसे लोगों की राजनीति और राष्ट्रवादी स्वरूप का भंडा फोड़ निम्न प्रकार से करते हैं-

"और सबसे बड़े सौभाग्य की बात यह थी कि अब की हिज मेजेस्ट्री के जन्म दिन के अवसर पर उन्हें राजा की पदवी भी मिल गई। अब उनकी महत्वाकांक्षा सम्पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो गई। उस दिन खूब जश्न मनाया गया और इतनी शानदार दावत हुई कि पिछले सारे रिकॉर्ड टूट गये। जिस वक्त हिज एक्सेलेन्सी गवर्नर ने उन्हें पदवी प्रदान की, गर्व के साथ राजभक्ति की तरंग उनके मन में उठी कि उनका एक-एक रोम उससे पल्लवित हो उठा। यह है जीवन ! नहीं विद्रोहियों के फेर में पड़कर व्यर्थ बदनामी ली, जेल गये अफसरों की नजरों से गिर गये। जिस डी. एस. पी. ने उन्हें पिछली बार गिरफ्तार किया था, इस वक्त वह उनके सामने हाथ बाँधे खड़ा था और शायद अपने अपराध के लिये क्षमा माँग रहा था।"

तत्कालीन राजनीति और आन्दोलन में रायसाहब जैसे रंगे सियार घुस आये थे। ग्रामों की तरह नगरों की राजनैतिक स्थिति भी अस्त-व्यस्त थी। नगरों में जमींदारो के ' स्थान पर मिल मालिको पूँजीपतियों और उद्योगपतियों का साम्राज्य, मजदूरों विदो पुलिसकी सहायता

से दबा दिया जाता था। गाँव एवं शहर दोनो क्षेत्रों की स्थिति अपे दिन। अनी शासक स्वयं तो न्याय का अवतार बने हुए थे, किन्तु उनके एक जभीदार के कारिण्ये, सरकारी सलाहकार आदि जनता का खुला शोषण करते थे। में उठता लता हुआ र के रिजति में पूँजीवाद सामन्तवाद को हटाकर एक नई शक्ति के रूप में सामने आ रहा था। देशी पूँजीवाद, विदेशी पूँजीवाद आन्दोलन का साथ स दे रहा है। को उखाड़कर स्वयं जड़ जमाने के लिये राष्ट्रीय विदेशी के मिल-मालिक खन्ना जैसे लोग कांग्रेस के नेता माने बाने लगे थे। एक तरफ तो अपने स्वार्थ के लिये ये लोग कांग्रेस का साथ देते थे, परन्तु इसी और ब्रिटिश सरकार से मिले रहते थे। इस समय के तथाकथित राष्ट्रवादी नेता जेल जाना भी स्वार्थ सिद्धि का साधन समझते थे। अंग्रेजों ने राय, राव और राजा के खिताबों के टुकड़े डालकर जमीदारी और शहर के पूँजीपतियों को जनता का विरोधी बना दिया था। 'गोदान' के रायसाहब को राजा का खिताब मिलता है। उनको अपनी नाममात्र की राष्ट्रीयता पर लज्जा आती है। यह भी 'गोदान' कालीन राजनीतिक स्थिति। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने प्रत्यक्ष रूप में राजनीति का नाम नहीं लिया, परन्तु उन्होंने अत्यन्त कलात्मक ढंग से उन समस्त तत्वों को प्रस्तुत कर दिया, जो हमारी राजनैतिक स्थिति को विकृत रूप दे रहे थे और हमारी राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक थे।

सामाजिक परिस्थिति- 'गोदान' में सामाजिक परिस्थिति के अन्तर्गत ग्राम और नगर समाज दोनों की सामाजिक समस्याओं, धार्मिक वितंडावाद और आर्थिक वैषम्य का चित्रण हुआ है। गाँवों का पारिवारिक जीवन सुखद न होकर कलह-ग्रस्त था, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ- बेटे, भाई- -भाई के बीच आये दिन -दिन झगड़े हुआ करते थे थे। तात्कालीन ग्राम्य समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। दहेज लड़कियों के लिए अभिषाप बना हुआ था। लड़कियों बेच दी जाती थीं। होरी अपनी लड़की रूपा को अधेड़ उम्र के रामभरोसे के हाथ बेच देता है। गांव के धनी लोग स्त्रियों को रखैल के रूप में रख लेते थे। स्त्रियों को फुसलाकर उनके साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाता था। दातादीन पुरोहित का पुत्र मातादीन सिलिया को फुसलाकर उसे वासना-पूर्ति का साधन बनाता है। जाति-पाँत के भेद-भाव की दृढ़ श्रृंखलायें ग्राम-समाज को जकड़ हुए थी, धर्म के नाम पर ग्रामों में अनेक ढोंग, पाखण्ड और रूढ़ियों का बोलबाला था। उच्च कुल में जन्मा दुराचारी भी सम्मानित था। भाग्यवाद, कर्मवाद और ब्राह्मणवाद का प्रचार पांखण्डियों के द्वारा हो रहा था। दातादीन कसकर सूद लेते हैं, किसानों का शोषण करते है और उनका पुत्र मातादीन सिलिया को घर में बिठाये हुए है; किन्तु वे गाँव में फिर भी पूज्य हैं। क्योंकि वे पूजा-पाठ करते हैं और कथा-भागवत बाँचते हैं। नोखेराम कुलीन ब्राह्मण होते हुए भी नोहरी अहीरन को बिठाये हुए है। परन्तु गोबर गरीब किसान का पुत्र है। वह जब झुनियाँ को पत्नी बना लेता है, तब गाँव की बहू-बेटियों की इज्जत जाने लगती है। पंचायत होरी पर दण्ड लगाती है।

गाँव में भाग्यवाद इतना प्रबल है कि होरी भाग्य की दुहाई देकर ही समस्त प्रतारणा और दुखों को सहन करता है और रायसाहब इसलिए मौज करते हैं कि उन्होंने पूर्व जन्म में पुण्य किये हैं और उन्हीं पुण्यों का संचित फल वे भोग रहे हैं। ग्राम्य-जनता धर्म-प्राण है। इसी धर्म के नाम पर होरी बिना लिखा-पढ़ी के लिया हुआ ऋण चुकाना चाहता है। धर्म-प्राण ग्राम की जनता द्वार पर गाय का होना स्वर्ग की नसेनी मानती है। परन्तु कथानक के नायक होरी की यह इच्छा पूरी नहीं हो पाती, उसकी मृत्यु पर लेखक बीस आने का गोदान कराकर जैसे उसके आँसू पोछ देता है।

भारतीय ग्रामों में दरिद्रता का एकछत्र राज्य है। आर्थिक विपन्नता और दरिद्रता की जैसी स्थिति बेलारी गाँव के होरी की थी, वह प्रायः भारत के समस्त किसानों की थी, किसान जो बहाकर अन्न उत्पन्न करता है. उसका वह सारा अन्न शोषक वर्ग उसके मुँह और किसान का पेट भूखा रह जाता है-

होरी की सारी फसल डांड की भेंट हो चुकी थी। बैराख तो किसी प्रकार कटा। मगर घर में अनाज का एक दाना न रहा, पाँच-पाँच पेट खाने वाले और घर में अनाज दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर पिले। निराहार कोई के दिन रह सकता है। उधार लें

पेट न मिले, तो आधा पेट लें तो किससे ? गाँव के सभी छोटे- सेना मजूरी करें तो किसकी ? जेठ मैं अपना ही काम था। ईख की हुई थी, लेकिन खाली पेट मेहनत कैसे हो।" हो गई। छोटा बच्चा रो रहा था। माँ को भोजन न मिले तो दूध कहाँ से निकले ?

गोवा परिस्थिति समझती थी, पर रूपा क्या समझे। बार-बार रोटी चिल्ला रही थी। दिन भर कच्ची अभियों से बहली, मगर अब तो कोई चीज चाहिए। होरी और उसके घर की आर्थिक विपन्नता से प्रताड़ित निम्न स्थिति समस्त भारतीय असानों की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है-

"माघ के दिन थे-होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेंड पर अपनी मर्दैया के लेटा हुआ था, चाहता था, सदर्दी को भूल जाये और सोए रहे। लेकिन बार-बार कम्बल और कटी मिजंई और शीत के झोंकों से गीली पुआल... बिवाई फटे पैरों को पेट में डालकर और हाथों को जाँघों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म सांसों में अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था.....जीवन में ऐसा तो कोई दिन नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो।"

होरी की जिस दयनीय स्थिति में मृत्यु होती है, वह भारत के 80 प्रतिशत कृषकों की मृत्यु का प्रतिनिधित्व करती है। दरिद्रता-पीड़ित होरी के परिवार का करुणाचित्र पूरे कृषक वर्ग की करुण स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देता है। होरी मर रहा है, गोदान कराने का झशन है। परन्तु धनिया के पास गाय कहाँ ? कुल बीस आने पैसे हैं, जो उसे सुतली बेचने से मिले हैं।

धनिया यन्त्र की भाँति उठी, आज तो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथ में रखकर खड़े दातादीन से बोली- "महाराज, घर में गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे है। यही इनका गोदान है।"

प्राम्य-जीवन का यथार्थ चित्र अंकित करते हुए प्रेमचन्द जी ग्राम्य-जीवन में पाई जाने काली कुछ विशेषताओं को भी नहीं भूले हैं। होली का उत्सव सभी परस्पर का भेद-भाव भूलकर मनाते हैं। नोहरी की दुश्चरित्रता को सभी बुरा कहते हैं। गाँव के लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होते हैं, होरी की गाय देखने के लिए सारा गाँव उमड़ पड़ता है। जब भोला होरी के बैल खोलने के लिए आता है, सभी उसकी सहायता के लिए आ जाते हैं। ग्राम्य-जीवन में जो ईमानदारी और सच्चरित्रता है, उसका चित्रण 'गोदान' में हुआ है।

'गोदान' में तत्कालीन नागरिक समाज का जो चित्र अंकित हुआ है, वह स्पष्ट करता है कि शहर में नैतिकता का स्तर गिरा हुआ है। झुनिया दूध देने जाती है। उसे देखकर लोग आँख मीचते हैं और छाती पर हाथ रखकर लम्बी साँस लेते हैं। एक पंडितजी उसे एक दिन घर में बन्द कर लेते हैं। वह अपनी हंडिया उनके सिर पर पटककर भाग निकलती है। 'गोदान' में नगर-जीवन का समग्र चित्र नहीं मिलता। मध्य-वर्ग का चित्रण न के बराबर हुआ है, मेहता और मालती की उच्च वर्ग में उठक-बैठक है। ओंकारनाथ, तंखा आदि मक्कार एवं डोगी है। ये खन्ना जैसे मिल मालिकों की चापलूसी करके अपना गुजारा करते है। निम्न वर्ग में गोबर के पड़ोस में रहने वाले मजदूर, खोमचा लगाने वाले और इक्के वाले है। ये लोग गाँवों से आये हो गया गया है- है। शहर के बड़े कहे जाने वाले लोगों का यथार्थ चित्र निम्न पंक्तियों में अंकित

"बड़े आदमियों की यह ईर्ष्या केवल आन्नद के लिए है। बड़ों को नीचता; कुटिलता में ही निस्वार्थ और परम आन्नद मिलता है। खन्ना रायसाहब को अपने मिल के शेयर खरीदने का सुझाव देते हैं और सम्पादक ओंकारनाथ खन्ना की पत्नी गोविन्दी की प्रशंसा कर उनको अपने पत्र की संरक्षिका बनाने का प्रस्ताव रखते हैं। वे रायसाहब की कमजोरी को पकड़कर उनसे पांच सौ ग्राहकों का चन्दा ऐंठ लेते हैं। नगर का निम्न वर्ग गाँव के किसानों की तरह ही दरिद्रता-ग्रस्त था, परन्तु नैतिक दृष्टि से इसमें सद्भावना थी। झुनिया के बच्चा होने पर चुहिया उसकी सेवा और सहायता करती है, शहर में शराब के दौर चलते थे। खन्ना मजदूरों की तरह उरी न पीकर फ्रांस की शराब पीते थे।"

निष्कर्ष-उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रेमचन्दजी ने 'गोदान' में देशकाल के समूचे वातावरण को अन्तः बाह्य रूपों एवं परिस्थितियों को सहज एवं स्वाभाविक रूप से समेटने का कुशलता से प्रयत्न किया है। भौगोलिक एवं प्राकृतिक वातावरण भी बड़ा ही सजीव एवं स्वाभाविक है। परिस्थितियों एवं समस्याओं का चित्रण भी यथार्थ रूप से हुआ है।

4.4 भाषा-शैली की दृष्टि से 'गोदान'

'गोदान' की भाषा एवं शैली-भाषा की शैली के साथ सीधा, बल्कि अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। वास्तव में कथ्य या अभिव्यक्ति शैली का रूपायन भाषा के माध्यम से ही होता है। कलाकार का व्यक्तित्व भी भाषा के माध्यम से ही रूपायित हुआ करता है। 'गोदान' में तो वास्तव में भाषाई प्रयोग में प्रेमचन्द जी ने कमाल ही कर दिखाया है। प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव प्रेमचन्द की भाषा का सस्पर्श पाकर अपने उचित एवं समग्र परिवेश में साकार रूपायित हो उठा है। डॉ. बलदेव कृष्ण के अनुसार- "गोदान की भाषा में विशेष रूप व्यापार सूचक शब्दों के प्रयोग तथा शब्द-शक्तियों के उपयोग से चित्रमयता, मरम स्पर्शिता आदि काव्य गुण समाविष्ट हो गये हैं। लेखक ने भावों के मूर्तिकरण के लिए अपेक्षित विशेष-रूप-व्यापार सूचक शब्दों का आलम्बन प्रायः किया है।" उन्हीं के शब्दों में एक उदाहरण भी यहाँ देखें- "होरी के घर में दूध-घी का अभाव रहता है। इस अभाव का बिम्ब ग्रहण करने के लिए लेखक ने इन शब्दों का प्रयोग किया है- 'दूध-घी अंजन लगाने तक को मिलता नहीं।" अंजन लगाना एक विशेष व्यापार है। इसके सूचक शब्दों के विनियोग से दूध, घी का अभाव प्रत्यक्ष झलकने लगता है।" स्पष्ट है कि 'गोदान' में भावों के सबल प्रत्यक्षीकरण के लिए उपन्यासकार ने इसी प्रकार की स्वरूप-विधायिनी लाक्षणिक एवं व्यंजक भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में इन्ही कारणों से चित्रोपत्रता के गुण का भी समावेश हो जाता है। होरी की निर्धनता को स्पष्ट करते वाला एक शब्द-चित्र प्रेमचन्द जी भी अभिव्यंजक भाषा-शैली में ही देखिये- 'बेबाय फटे पैरो को पेट में डालकर, हाथ को जाँघों के बीच में दबा कर और कम्बल में मुँह छिपा कर अपनी गर्म, साँसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। लेकिन तार-तार कम्बल फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंको से गीली पुआल इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नीन्द को साहस न था।" हमारे विचार में 'गोदान' के सर्जक की भाषा-शक्ति को नापने का उसकी समग्रता को तोलने या जोखने का इसके बाद कोई अन्य उदाहरण प्रस्तुत करना व्यर्थ है। इस सन्दर्भ में भाषा की शक्ति सम्पन्नता तो देखी ही जा सकती है। कलाकार का व्यक्तित्व भी हमारे समक्ष स्वतः ही साकार हो उठता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'गोदान' की भाषा भावानुरूपिणी होने के साथ-साथ चित्रमयता, मूर्तिकरण एवं बिम्ब-विधान के भी सर्वथा उपर्युक्त है। उसमें लाक्षणिकता और व्यंजकता तो है ही सही, काव्य का सा नाद-सौन्दर्य भी विद्यमान है। भावावेगों के अनुरूप ही

उको भाषा-लहरियों में भी सहज उतार-चढ़ाव आता है। जिस प्रकार वर्षाऋतु दी की धारा में आवेश ला देता है और शरद ऋतु की भाषा में भी भावावेश के क्षणों में आवेग और स्थिति के सहजभान के समय एक स्थिरता श्री आ जाती है। का प्रभाव का प्रभाव स्थिरता उसी प्रकार 'गोदान'। इस प्रकार का एक उदाहरण देखिये। । रात के समय खेत की रखवाली करते खनक अथय चूड़ियों की र सुनकर होरी के मन में जो भाव लहरियों उमड़ती हैं, उनका आरम्भ आवेगमय है. पर अन्त तर्क निह स्थिरता का द्योतक-

न जाने क्यों इन लोगों की नीयत इतनी खोटी है। सारे गाँव से अच्छा खाते हैं, घूस हते हैं, दस्तूरी लेते हैं, एक न एक मामला खड़ा करके हमातुमा को पीसते ही रहते हैं। स सेबीयत का यह हाल। बाप जैसा होगा, वैसी ही सन्तान भी होगी।" और इस आहै। फिर थिति के शान्त होने के बाद, स्थिति की वास्तविकता का आभास होने के बाद उसा की पार्ण हायचे "नीच कहने ही को नीच है, जो ऊँचे है उनका मन तो और भी नीच है। औरत जात का हाथ पकड़ते भी तो नहीं बनता। उखाड़ ले भाई, जितना तेरा जी चाहे। कहै। औरत जात हैं। बड़े आदमी अपनी लाज न रखें, छोटे को तो उनकी लाज रखनी ही पढ़ती है।" इस प्रकार भावावेश और उसके बाद की स्थिरता भी आकाशीय नहीं, बल्कि जीवन के यथार्थ का, माक्तित्व की विवशता का यथार्थ रूप है। प्रेमचन्द ने यदि भाषा में कहीं प्रतीकों का भी

प्रयोग तो वे वायवीं नहीं, बल्कि हमारे किया है तो जाने-पहचाने ही हैं। गोबर और झुनिया के सन्दर्भ बेहोरी जिस अदूरदर्शिता का परिचय देता है, उसका एक उदाहरण देखिये, जिसमें प्रतीकात्मकता तो है ही सही, भाषायी अलंकरण का रूप भी देखा जा सकता है-

मगर रूई के गोले को उसने नीले आकाश में हवा के झोंको से उड़ते देखकर केवल मुस्करा दिया था, वह सारे आकाश में छाकर उसके मार्ग दृढ़ता से इतना अन्धकारमय बना देगा, यह तो कोई देवता भी न जान सकता था।"

भाषा की समाहार एवं सामाजिक शक्ति भी प्रेमचन्द में अद्भुत थी। 'गोदान' में इस प्रकार के भी अनेक प्रयोग मिलते हैं जो कि एक साथ बहुत थोड़े शब्दों में कई पात्रों के मनोभावों, उनकी चरित्रिक दुर्बलताओं एवं सबलताओं को बिल्कुल स्पष्ट रूप से हमारे सामने बिम्बित कर देते हैं। मातादीन और उसकी प्रेमिका सिलिया के प्रसंग में कही गई उनकी एक उक्ति इंखिये- 'सिलिया ने उस पक्षी की भाँति जिसके मालिक ने पर काट कर पिंजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा।" इस एक ही वाक्य से सिलिया और मातादीन के चारित्रिक परिवेश, विवशताएँ, समर्पण के भाव और स्वार्थपरक वृत्तियाँ हमारे सामने स्पष्टतः उजागर हो उठती हैं। यहाँ भाषा में अलंकरण भी है, प्रतीकात्मकता भी है, सामासिकता एवं समाहार की शक्ति भी स्पष्ट है।

'गोदान' की भाषा में अनेकशः सांकेतिक या प्रतीकात्मक प्रयोग अत्यधिक भावुकता के स्यांवरण में प्रकट हुए हैं। ऐसे भावुक प्रयोगों ने वस्तु-योजना एवं कथ्य की नीरस्नता को भी मरसता का अंजन आज दिया है। जैसे अँजन के आंजने से किसी सुघड़ मुग्धा के नयनों का सौन्दर्य और भी अधिक निखर उठता है, उसी प्रकार से से प्रयोग भावाभिव्यक्ति के सौन्दर्य को बढ़ाने में विशेष सहायक हुए हैं। एक उदाहरण देखिये- "दीवट पर तेल की कुप्पी जल रही थी और उसके मध्यम प्रकाश में झुनिया घुटने पर सिर रखे, द्वार की ओर मुँह किये, अन्धकार में उस आनन्द को खोज रही थी, जो एक क्षण पहले अपनी मोहिनी छवि दिखाकर विलीन हो गया था।" समूचा वर्णन ही विशिष्ट प्रतीकों से योजित है। पर यहाँ 'अन्धकार' और 'आनन्द' शब्दों के प्रयोग सप्रयोजन हैं। इनके द्वारा निराशां एवं आशा-सुख को रूपायित किया गया है। दौवट पर दीपक का जलना और घुटने पर सिर रखे सिलिया-वियोग की जलन का समानान्तर वर्णन है, इसी कारण यहां 'अन्धकार' तो वियोग-निराशा का प्रतीक बन गया है 'आनन्द' गोबर से मिलने के मुख का प्रतीक इस प्रकार की प्रतीक योजना आज के कवियों और कथाकारों के समान सायास नहीं की गई, बल्कि वह तो निरायास ही 'गोदान' में हो गई है। साका मूल कथ्य के वर्णन को भाषा और सामान्य कथा वर्णन की भाष में एक अन्तर रहा करता है। ऊपर हमने भावाभिव्यक्ति से सम्बन्धित भाषा के भिन्न रूहे है। वर्णन किया है। वहाँ सामासिकता, समाहार शक्ति, प्रतीकात्मकता या सकितिकता एवं अलंकरण कासवंत सिंह प्रवृत्तियाँ विद्यमान है। अब तनिक कथा-वर्णन की भाषा भी देखिये। इस प्रकार की भाषा अत्यन्त सहज, सीधी और सरल होते हुए भी अत्यन्त सजीव है। इस प्रकार की भाषण अत्यन्त सहज, सीधी और सरल होते हुए भी अत्यन्त सजीव है। इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण देखिये- "धनिया इतनी व्यवहारकुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमीदार के खेत जोते है, तो वह अपना लगान नही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलायें।" इसी प्रकार वर्णनात्मकता का भी कथा के सन्दर्भ में एक उदाहरण देखिये- "सेमरी और बेलारी दोनों ही अवध प्रान्त के गाँव हैं। जिले का नाम बताने की जरूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है, रायसाहब अमरपाल सिंह सेमरी में, दोनों के गाँवों में केवल पाँच मील का अन्तर है।"

इसी प्रकार 'गोदान' उपन्यास में ग्राम्य एवं नगरीय पात्रों की भाषा में भी एक स्पष्ट एवं स्वाभाविक अन्तर वर्तमान है। ग्राम्य भाषा में उन्होंने सहज स्वाभाविक और व्यवहार में आने बाले आंचलिक शब्दों के प्रयोग प्रायः किये हैं। इधर नगरीय पात्रों की भाषा में उन्होंने बोल- चाल की स्वाभाविक अनिवार्यता के अनुरूप अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया है। जहाँ उपन्यासकार ने विश्लेषणात्मक शैली का सहारा लिया है, वहाँ अनेकानेक तत्सम शब्दों के प्रयोग भी देखे जा सकते हैं। जैसे सांस्कृतिक विकास, सर्वात्मवाद, एकात्मवाद,

आधिपत्य आदि। ग्राम्य एवं आंचलिक शब्दों के भी कुछ उदाहरण देखें-गाँ, बरखा, डाँडी, सुभीते, तल्लियाँ, गगरा, औगी आदि। अंग्रेजी शब्दों के भी इस प्रकार के अनेक प्रयोग देखे जा सकते हैं-गर्वनर, होममिनिस्टर, रेकार्ड, डी.एस.पी., हिज मैजिस्ट्री आदि।

प्रेमचन्द जी ने सहज स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति के लिये प्रचलित उर्दू, अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग भी मुक्त-भाव से किया है। जैसे-हरीश, नफरी, नखास, बेअदबी, सुर्खरू, बेइन्साफी, गुलजार आदि। क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य एवं शिक्षा-संस्कृति के प्रभाव के कारण देहातों तक भी उनकी भाषा के शब्द जा पहुंचे थे, अतः 'गोदान' में ग्रामीणों की भाषा में भी अंग्रेजी के किंचित विकृत प्रयोग देखे जा सकते हैं। जैसे- "देखा, तो सभी मुखिया लोगों का कैबिनेट बैठा हुआ था।" बोल-चाल एवं व्यवहार में हम लोग अनेकशः दुहरे या समानार्थक शब्दों का प्रयोग भी किया करते हैं। यह स्वाभाविकता भी हमें 'गोदान' में अनेकशः देखने को मिलाती है। जैसे-नेमी-धों, दाँव-घात, दान-दहेज, ठीक-ठाक, बरतन भाँडे और सानी- पानी या रस-पानी आदि।

विशेषणों से संयत आलंकारिक भाषा के साथ-साथ प्रेमचन्द जी ने 'गोदान' में अपनी अभिव्यक्ति को सबल एवं प्रभावी बनाने के लिये रोजमर्रा मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी अन्नाभाविक प्रयोग किया है। जैसे-"अंचल में आर्शीवाद, मंगल और अभय लिये उन पर बार रही थी।" इसी प्रकार "पंचों ने रायसाहब का यह फैसला सुना तो नशा हिरन हो गया।" इसी प्रकार उनकी वाक्यावली में अन्य अनेक प्रकार के मुहावरे आदि भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे- चोटी का पसीना एड़ी तक आना, दाने-दाने को मुहताज होना, आँखों देखकर मक्खी निगलना, मुंह में दही जमना, घात में बैठना, आग लगाना, माथा सिकोड़ना, पाँव सहलाना आदि। उनकी अनेक मुहावरों से युक्त चलती भाषा का एक उदाहरण देखिये-

"तु जो बात नहीं समझती, उसमें टॉग क्यों अड़ाती है माई। मेरी लाठी दे दे और अपना काय देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का पररााद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं लगता कि किधर गये। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरों के पाँव तले अपनी गर्दन दबी है, तो उन पांचों को सवालाने में ही कुशल है।"

इस पूरे प्रसंग का प्रत्येक वाक्यांश वास्तव में एक मुहावरा है या मुहावरेदार है। इस प्रकार दान के समूचे कलेवर की भाषा को इसी प्रकार की सहज मुहावरेदार भाषा कहा जा सकता है। वातावरण को सबल एवं सजीव बनाने के लिये प्रेमचन्द जी ने जहाँ भौगोलिक परिवेश का चित्रण किया है, वहाँ प्रकृति के चित्रणों का भी सहारा लिया है। ऐसे स्थानों पर उनकी भाषा- होली प्रकृति के समान ही कोमल, कान्त एवं सजीव हो उठी है। उसमें एक विशेष प्रकार की मनुष्णता आ गई है। जैसे-"कार्तिक की रूपहली चाँदनी प्रकृति पर मधुर संगीत की भाँति छायी हुई थी।" और 'चाँद धुलकर जैसे नदी में बहा जा रहा था।" यह बहाव कितना मसूण अतैव संगीतमयता के साथ-साथ चित्रमय भी है। प्रकृति-सम्बन्धी ऋतु-वर्णन का एक अन्य उदाहरण भी अत्यधिक प्रभावी अतैव ग्राह्य है- "फागुन अपनी झोली में नवजीवन की विभूति लेकर आ पहुंचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौरा के सुगन्ध बांट रहे थे और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई, संगीत का गुप्त दान कर रही थी।" यहाँ भाषा का लालित्य तो है ही, क्रमशः दृश्य, प्राण्य, स्पृश्य बिम्बों की योजना भी विशेष स्पृहणीय एवं प्राह्म है। इतना ही नहीं, प्रेमचन्द जी ने आलम्बन-उद्दीपन रूप में प्राकृतिक रूपों का सहारा लेकर मनः स्थितियों के चित्रण का भी सफल प्रयास किया है। रूपा द्वारा निरस्त सिलिया के लौटते समय के चांदनी के दृश्य का फीकापन एवं उदासी संयत रूप का वर्णन कितना अपनत्व लिये हुए हैं- "वही रूपहली चाँदनी अब भी छा रही थीं और सिल्ली विक्षिप्त-सी लहरें अब भी चाँद की किरणों में नहा रही थीं और सिल्ली विक्षिप्त-सी स्वप्न-छाया की भाँति नदी में चली जा रही थी।" यहाँ सिलिया का उत्ताप स्पष्टतः नदी की लहरों और फीकी चाँदनी में झलकता देखा जा सकता है।

पात्रों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं मनोभावों का चित्रण करते समय प्रेमचन्द जिस प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग करते हैं, वहाँ उनका अपना व्यक्तित्व भी स्पष्टतः झलकने लगता है। वर्णित पात्र का अन्तः बाह्य परिवेश शब्दों के पर्यावरण में एकदम साकार हो उठता है। मालती के व्यक्तित्व- चित्रण के समय अपनायी गई अभिव्यक्ति-पद्धति एवं भाषा का एक उदाहरण देखें-

"मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है और जिए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने और चमकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों से इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे अपनी ही लिये करे। नहीं, वह इसलिये चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।" इस वर्णन से मालती का अन्तःबाह्य रूप हमारे सामने साकार हो उठता है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने पात्रो के चारित्रिक चित्रण के लिए सरल स्पष्ट भाषा शैली का ही प्रयोग किया है। एक स्थान पर वे मिर्जा खुशेंद का चारित्रिक विश्लेषण करते हुए कहते हैं- "मिर्जा खुशेंद के लिए भूत और भविष्य सादे कागज की भाँति था। वह वर्तमान में रहते थे, न भूल का पछतावा था, न भविष्य की चिन्ता। जो कुछ सामने आ जाता था, उसी में जी-जान से लग जाते थे।" स्पष्टतः यहाँ अभिव्यक्ति या भाषा में किसी भी प्रकार की कोई कृत्रिमता या कठिनता नहीं है।

कठिन से कठिनतम स्थितियों में पलने पुसने के बावजूद भी प्रेमचन्द जी जीवन के प्रति पूर्ण आशा और आस्थावान थे। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वह हँसना-हँसाना जानते थे। मय-विनोद की थी उनके पात्रों एवं अभिव्यंजनाओं में भी हमे हास्य एवं व्यत्य-विनोद की स्थितियों के गचे दर्शन हो जाते हैं। शहर से लौटने पर गोवर द्वारा होली के रसिया योजना का सारा प्रसंग 'गौदान' में इस तथ्य का पूर्ण परिचायक है। वहाँ

सामाजिक हास्य व्यंग्य अपने चरम रूप में हमारे सामने आता है। वास्तव में समूचे 'गोदान' उपन्यास में व्यवस्था दोष पर किया गया हास्य-व्यंग्य का रूप भी बड़े सुघड़ साँचे में वहाँ उभरा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने पात्रों की स्थितियों एवं उक्तियों के माध्यम से भी हास्य व्यंग्य को उभारा है।

4.7 "प्रेमचन्द की लेखनी ग्रामीण पात्रों की रचना

प्रेमचन्द के पात्र एवं गोदान- 'गोदान' उपन्यास में अनेक पात्र हैं। पर उनमें से मुख्न पात्र चार ही माने जा सकते हैं। वे है-होरी और धनिया, प्रो. मेहता और डॉ. मालती। शेष सभी पात्र प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में इन्हीं के साथ जुड़े हुए हैं। उपन्यास के ये प्रमुख एवं अन्य समस्त पात्र भी प्रमुखतः सजीव एवं विकासशील है। उपन्यास की समस्त घटनाएँ इन्हीं पात्रों द्वारा जन्म लेती है और इन्हीं पात्रों को वे प्रत्यक्षतः प्रभावित भी करती हैं। होरी और धनिया समग्रतः ग्राम की कृषि-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि मेहता मालती नगरीय जीवन और संस्कृति का। अन्य पात्रो में से गोबर-झुनिया, मातादीन-सिलिया, पं. दातादीन, पटेश्वरी, नोखेराम, नौहरी, भोला, दुलारी साहुआइन आदि सभी पात्र प्राम्य जीवन की विभिन्न स्थितियों के परिचायक है और ये सब अपने समस्त क्रिया-कलापों के द्वारा होरी धनिया के व्यक्तित्वों एवं चरित्रों को प्रभावित तो करते ही हैं, उन्हें विकसित भी करते हैं। दूसरी ओर रायसाहब अमरपाल सिंह नगर और ग्राम के बीच की कड़ी है। इनके नगरीय मेत्र मेहता मालती, खन्ना, तन्खा, मिर्जा खुशेंद, ओंकारनाथ तथा अन्य नगरीय जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक बात यहाँ स्पष्ट रूप से द्यातव्य है कि ये समस्त पात्र अलग-अलग परिवेश और परिस्थितियों से सम्बन्धित होते हुए भी मूलतः एक ही व्यवस्था के दो भिन्न पहलुओं से जुड़े हुए हैं। यही इनकी आन्तरिक अन्विति है और यह आन्तरिक अन्विति ही कथानक तथा पात्रों के चरित्र चित्रण को भी स्पष्टतः उभारती एवं अन्वित किये रहती है। यदि यह बात न रहती होती तो 'गोदान' निश्चय ही कथानक एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टियों से एक विसंगति मात्र बनकर रह जाता है। मूल कथ्य एवं संवेद्य से अलग करके किसी भी पात्र के

चरित्र एवं कृतित्व को देखा या अंकित नहीं किया जा सकता। भिन्न परिवारों के सदस्य होते हुए भी सभी पात्र सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं की दृष्टि से समग्रतः अन्य स्यूत है। इसी कारण सभी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी को प्रभावित करते है। उपन्यासकार प्रेमचन्द ने पहले रायसाहब अमरपाल सिंह और आगे चलकर गोबर के चरित्र के माध्यम से बड़ी सूक्ष्म कुशलता के साथ ग्राम एवं नगर का भेद भी मिटा दिया है। सभी को एक ही व्यवस्था के अंग एवं विविध रूप बनाकर चित्रण किया है। 'गोदान' के पात्रों के चरित्र- चित्रण की दृष्टि से यही अन्तः योजना इसकी प्रमुख विशेषता है।

होरी 'गोदान' उपन्यास का नायक है। गो-पालन की इच्छा का उसके मन में उदय और उसके बाद उसी से सम्बन्धित समस्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं में उसका समूचा चरित्र उभारा गया है। रायसाहब के यहाँ जाते हुए गो-पालन की चिन्ता में व्यस्त होरी से भोला नामक गो पालक का मिल जाना और उसने गाय प्राप्ति का आश्वासन मिलना होरी के समस्त अन्तः बाह्य व्यक्तित्व को परिचालित कर देता है। किन्तु जिस परम्परा में उसका लालन-पालन हुआ है और जो व्यवस्था के रूप में मिली है. यह सादिताओं से सम्पन्न कल्पित आयोजित होने बाहर से बड़ी ही झाली प्रतीत होती है। अतः होरी उससे बाहर नहीं निति होने उसके होता है जब तक कि वह निहाल होकर गिर नहीं पड़ा। देवा के धरातल पर तो रहता है, पर मानवत्व के घरात पर ना सबसे बड़ी दुर्बलता बनकर उसे ले इम्बती है। पानिया और गोबर के पदार्थवादी की बोरी उसे बचा नहीं पाते। वास्तव में प्रेमचन्दजी ने स्वयं ही होरी के समूचे व्यक्तित्व की आकारा बांधकर रूपायित कर दिया है-

"होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर से हाथ सेंकना नहीं जानता था। संकट की बातु लेना उसकी दृष्टि में पाप था। वह अपनी रूढ़िगत नैतिकता तथा संस्कारगत आदर्शवादिता कारण शोषित होता रहता है।" वह केवल शोषित ही नहीं होता रहता, बल्कि इन्हीं दुर्बलताओं, दोषों के प्रति भी अनुराग के कारण अन्त में मारा भी जाता है। वास्तव में उपन्यासकार होगी को घटनाओं के माध्यम से ही नहीं चलाया, उसको अपने संस्कारों के माध्यम से चला कर अपनी यथार्थ-दृष्टि का परिचय दिया है। होरी आद्यान्त एक ही बना रहता है। परिस्थितियों इसके जीवन में परिवर्तन तो अवश्य ला देती हैं, किन्तु उसके विचारों और संस्कारों में, उसके आदशों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। इस दृष्टि से हम होरी को स्थिर चरित्र वाला पात्र ही कहेंगे।

मुख्यतः 'गोदान' के अन्य सभी प्रमुख पात्र भी परिस्थितियों से परिचालित ही दिखाये गये हैं। वास्तव में उनकी विकासशीलता परिस्थितियों की विकासशीलता ही है। गोबर, मातादीन, मालती, मेहता और झुनिया भी परिस्थितियों के अनुरूप साँचों में स्वतः ही ढलते जाते हैं। मिल मॉनिक खन्ना भी परिस्थितियों की अवहेलना नहीं कर पाता। इनके अतिरिक्त रायसाहब, धनिया, मिलिया आदि के चरित्रों में कोई बड़ा परिवर्तन या गतिशीलता तो दिखाई नहीं देती, फिर भी वे अपने स्थानों पर स्थिर नहीं रह पाते। कांपते हुए हाथों एवं चेतना से ही सही, नायक होरी भी अपनी भावी दामाद से दो सौ रुपये लेकर अपने स्थान से अवश्य हिल जाता है। फिर भी इन सारे पात्रों का अपने स्थान पर लगभग बने रहना इनके चरित्र की दृढ़ता को ही प्रकट करता है। इससे इन्हें निर्जीव नहीं कहा जा सकता। इनकी ये दृढ़ता कथानक एवं कथ्य के विकास में निश्चय ही अत्यधिक सहायक होती है। चरित्रों के परिवर्तन एवं विकास के लिए लेखक ने सर्वत्र उचित परिस्थितियों का विनिर्माण बड़ी ही कुशलता से किया है। यहाँ हम गोबर एवं मालती के चारित्रिक परिवर्तनों का उदाहरण देना चाहेंगे। उपन्यासकार प्रेमचन्द ने अपनी नई पौड़ी के विद्रोही पात्र गोबर को विशेष परिस्थितियों में पहले ही गाँव के वातावरण से अलग कर दिया और फिर नगरीय वैषम्यों में डालकर उसे झकझोरा, उसकी प्रेमिका-पत्नी झुनियां के प्रति भी विपरीत परिस्थितियों वाले वातावरण में लाकर उसे निर्मम बना दिया। किन्तु बाद में उसका गाँव में प्रत्यावर्तन जहाँ उसके विद्रोह एवं कृषक कार्य के प्रति कुरुचि की असफलता का द्योतक है, वहाँ उसके हृदय और संस्कारों का परिष्कारक भी प्रमाणित होता है। तभी तो गोबर अन्त में हमें शान्त एवं कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति के रूप में दिखाई देने लगता है। चरित्र-

विकास की दृष्टि से परिस्थितियों के सन्दर्भों में हम इस परिवर्तन को स्वाभाविक ही कहेंगे। जो बातें गोबर के चारित्रिक विकास के सन्दर्भों में सत्य है, वही प्रारम्भ में तितली और अन्त में सेवा-परायण सम्पूर्ण नारी के रूप में सामने आने वाली मालती के सम्बन्ध में भी पूर्ण संगत एवं सत्य हैं। एक बात यह भी ध्यातव्य है कि 'गोदान' के पात्रों का चारित्रिक विकास समग्रतः उनके वर्गों को ध्यान में रखकर ही दिखाया गया है। इसी कारण इसके पात्र व्यक्ति होते हुए भी व्यक्ति न रहकर वर्ग बन आते हैं। उनमें व्यक्ति का वैशिष्ट्य तो रहता ही है, पर वर्ग की सामान्य विशेषताएँ भी आ जाती हैं। होरी और गोबर, दूसरी ओर पण्डित मातादीन और दातादीन के चरित्रों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। होरी कृषक वर्ग के परम्परागत रूप को लिये हुए भी अपनी कुछ अनन्य विशेषताएँ भी रखता है। गोबर कृषक वर्ग से होते हुए भी उसकी परम्पराओं का पालन स्वभावगत उपेक्षा के कारण नहीं कर पाता। उधर मातादीन, दातादीन की मान्यताओं का अन्त तक निभाव नहीं कर पाता। उच्च एवं सम्भ्रान्त वर्ग की होकर भी मिल मालिक खन्ना की पत्नी इस वर्ग की पत्नियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती। वह सामान्य भारतीय नारी ही रहती है और स्यात् पति द्वारा उत्पीड़ित होने का यही उसके लिये मुख्य कारण भी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'गोदान के सभी पात्र व्यक्ति तो है ही, वर्ग या जाति की सामान्य विशेषताएँ भी उनके चरित्रों में विद्यमान है। इसी कारण प्रेमचंद जी पात्र दृष्टि और उनके चारित्रिक विकास या परिवर्तन हमें कृत्रिम नहीं लगते।

ग्राम-परिवेश से सम्बन्धित ऋणदाता पात्रों के सम्बन्ध में भी उपरोक्त बात कही जा सकती है। पण्डित दातादीन, मंगरूशाह, झिंगुरी सिंह, दुलारी, साहुआइन अपनी वर्गगत विशेषताएँ आद्यान्त अपने अन्तराल में संजोए हुए हैं। ये सभी अपनी आसामी की असमर्थता का जी भर फायदा उठाने और बढ़ा-चढ़ा कर ब्याज लेने का प्रयत्न करते हैं। पण्डित दातादीन तो होरी की दो-चार बीघा जमीन को भी, उसके शारीरिक श्रम को भी ब्याज के ऐवज में हथिया लेता है। उसे हम उनका वैयक्तिक वैशिष्ट्य भी कह सकते हैं। इन सभी ऋणदाताओं के चरित्रों में लाभ उठाने की प्रवृत्ति समान है-वर्ग की द्योतक है, तो इनकी अपनी कुछ अनन्य विशेषताएं भी है। झिगुरीसिंह आसमियों के प्रति कुनैन है तो पण्डित दातादीन धीमा विष। वह आठ-नौ वर्ष तक होरी के ऋण मिल जाने की प्रतीक्षा भी करता है। ऐसा स्यात् अपनी पुरोहिताई कायम किये रहने के लिये ही करता है। यह उसके व्यक्तित्व का अन्य सूदखोरों से अलग पहलू है। इसी कारण मंगरूशाह में भी क्रूरता नहीं, बल्कि भोलापन है। तात्पर्य यह है कि प्रेमचंद जी के सभी प्रकार के पात्र वर्गगत समानताएँ रखते हुए भी अपनी कुछ अनन्य विशेषताएँ भी रखते है। कुछ अंशों में यही बात जमींदार रायसाहब अमर पाल सिंह के बारे में भी कही जा सकती है। विलासिता को छोड़कर विलासिता को छोड़कर जमींदार वर्ग की सामान्य बातें, जैसे बेगार लेना, बेदखली लगान में इजाफा आदि बातें उनमें है और ये बातें वर्गीय ही है। पर इसके साथ- साथ प्रेमचन्द ने उनके चरित्र वर्ग से कुछ भिन्नताएँ या अनन्य विशेषताएँ भी दिखाई है। लेखक ने उन्हें कर्मशील और सत्याग्रह आन्दोलनों के अंग के रूप में भी चित्रित किया है। जेल जाना, सामान्य जनों के हितों की चर्चा करना उनकी कुछ अनन्य विशेषताएँ हैं। ऐसा करने पर उन्हें हम ढोंगी भी कह सकते हैं। यह भी कह सकते हैं कि वे इन सब कार्यों की आड़ में अपना ही स्वार्थ सिद्ध करते हैं-ऐसा लोगों ने कहा भी है। पर सत्य यह भी तो है कि उस युग में जमींदार इतनी ऐंठ में रहा करते थे कि सामान्य जनों की रमाई वहाँ किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं हुआ करती थी। राजाओं की तरह उनके दर्शन अपने उच्च कर्मचारियों को ही हुआ करते थे। पर 'गोदान' के राय साहब ऐसे नहीं हैं, यह उनकी अपनी विशेषता है।

'गोदान' में वर्णित नगरीय जीवन से सम्बन्धित कुछ सुशिक्षित वर्ग के बुद्धिजीवी एवं व्यापारिक पात्रों की सृष्टि भी की गई है। निश्चित ही शहरी सुशिक्षित वर्गों में से कुछ वर्गों का विशेष महत्व होता है। ऐसे वर्गों में मुख्य है अध्यापक, डाक्टर, वकील और सम्पादकों आदि के वर्ग। इनका अपना व्यक्तित्व भी होता है और समाज के साथ ये सारे वर्ग सीधे भी जुड़े रहते हैं। प्रो. मेहता, डॉ. मालती, तन्खाराम और पत्रकार ओंकारनाथ आदि इसी प्रकार के पात्र है उपन्यासकार ने इनके सामान्य वर्गीय चरित्रों का चित्रण तो किया ही है, उनके अपने व्यक्तित्व भी दिखाये हैं। सभी के व्यक्तित्वों के दोनों रूप धीरे-धीरे हमारे सामने स्वतः ही उभरते आते है। मालती की एक बहिन

सरोज का चित्रण भी उपन्यास में हुआ है। पर दोनों बहिनों का वर्ग एक होते हुए भी चरित्र और स्वभाव में स्पष्ट अन्तर है। तन्खा वकीलों एवं बीमा एजेन्टों के

वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। उनके अच्छे-बुरे दोनों पक्षों को उपन्यासकार ने सामान्यतया संन्यास में विन्यस्त करने का सफल प्रयास किया है। यही बात पत्रकार और सम्पादक आकारताम के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उसमें पत्रकारिता की समस्त समान (युगीन) प्रभूरिलाय हो है ही सहीं, पर आचार-व्यवहार एवं खान-पान आदि प्रवृत्तियों की दृष्टि से वह हमें अपना अलग व्यक्तित्व लिये हुए भी दिखाई देता है। एक अन्य पात्र है-मिर्जा खुशेंद। वह दुकानदार आपारी एवं राजनेता भी है। इन वर्गों की समान विशेषताएँ तो इसमें हैं ही, पर उसका निजत्व भी कुछ बातों में स्पष्ट झलकता है। जैसे वह कुछ-कुछ सनकी, निश्चिन्त एवं विनोदप्रिय किस्म का व्यक्ति है। ये बातें उसे सामान्य व्यापारियों एवं दुकानदार राजनेताओं से अलग कर देती हैं। वह समय पड़ने पर अपने नौकरों से भी उधार माँग लेता है। उपन्यासकार ने अन्त में उसे परिवर्तित दिखाकर निश्चय ही एक व्यक्ति-वैशिष्ट्य प्रदान कर दिया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय जहाँ उनके वर्गीय रूपों को उभारा है। वहाँ उनका अनन्य विशेषताओं वाला अपनापन भी रहने दिया है। सभी पात्र अपनी समस्त अच्छाइयों-बुराइयों के साथ हमारे सामने आते हैं। प्रमुख बात तो यह है कि यहाँ छोटे-बड़े, सामान्य-विशेष सभी प्रकार के पात्र विद्यमान है। निर्धनता, भूख, बेबसी का नग्न ताण्डव भी है तो विल्लास का उल्लास एवं सनक से भरी मस्तियाँ भी हैं। कुल मिलाकर प्रेमचंद ने चरित्रों के चित्रण के माध्यम से उन सभी प्रकार की व्यवस्थाओं का चित्रण किया है कि जिनमें निर्धनता, विशेषताएँ, रंग-रलियाँ और मस्तियाँ एक प्रकार से सभी-कुछ पिस रहा है। अतः मुख्य गूंज यहाँ श्मशान रोदन की ही है। क्योकि किसी भी पात्र के जीवन में सच्ची मस्ती या आशा का उल्लास नहीं है। यहाँ सामान्य मजदूर और किसान तो व्यवस्था-चक्र में पिस ही रहा है, जमींदार, व्यापारी और मिल मालिक भी अपनी ही सीमाओं की विवशता का रोना रो रहा है। बुद्धिजीवी एवं अन्य बौद्धिक वर्ग भी उसी व्यवस्था- चक्र में करूण-हुंकारे भरते सुनाई दे रहे हैं। सभी जगह एक प्रकार की आपा-धापी मची है। ग्राम हो या शहर सभी जगह वैयक्तिक स्वार्थ ही प्रत्यक्ष है। सभी एक-दूसरे को लूट-खसोट लेना चाहते हैं। न्याय के रक्षक अधिक उग्र एवं भक्षक बने हुए हैं। यदि कहीं इन व्यवस्थाओं के प्रति कुछ छटपटाहट दिखाई भी देती है, तो वह सब व्यवस्था की भीषणता में घुटकर रह जाती है। जीवन के यथार्थ का समग्र परिवेश अनेक कोणों से, अनेक बिन्दुओं के साथ पात्रों के माध्यम से यहाँ रूपायित हुआ है और यही इस उपन्यास के चरित्र-चित्रण की समग्र विशेषता है और उपन्यासकार का अपनापन भी।

4.8 'गोदान' में नारी पात्रों का चित्रण

गोदान में नारी चित्रण-प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास 'गोदान' एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें भारतीय समाज के दोनों अंगों-ग्राम्य और नागरिक की भाषा कही गयी है। इसीलिए इसके नारी पात्रों में दोनों ही समाजों की प्रतिनिधि नारियों को लिया गया है यथा धनिया, सुनिया, मिस मालती, सरोज, वरदा चुहिया, गोविन्दी, दुलारी, सोना, रूपा, सिलिया, कलू आदि इनमें से मालती और गोविन्दी नागरिकायें तथा शेष ग्राम्य समाज की नारियों की प्रतीक हैं वर्ग की दृष्टि से उन्हें उच्च, मध्यम और निम्न तीन वर्गों में रखा जा सकता है। गोविंदी उच्च वर्ग की, मिस मालती मध्यम वर्ग की तथा शेष सभी निमन्तर वर्ग की हैं। सामाजिक या पारिवारिक रूप से ये नारियाँ माता, पत्नी, पुत्री, बहिन, सास, ननद, भाभी और प्रेमिका आदि प्रायः सभी वर्गों की हैं। इनमें प्रधान रूप से नारी के तीन रूप-माता, पत्नी और प्रेमिका ही 'गोदान' में अधिक प्रकट हुए हैं। इनके चरित्र-चित्रण में उपन्यासकार ने वर्णनात्मक, मनोवैज्ञानिक, संवाद, क्रिया-कलाप, प्रभाव और रेखाचित्र आदि सभी विधियों का प्रयोग किया है।

'गोदान' में नारी के ग्राम्य और नागरिक दोनों रूप प्रस्तुत किये गये हैं। दूसरे शब्दों में भारतीय नारी के वर्तमान दोनों रूपों- भारतीय और पाश्चात्य प्रभाव से युक्त को गोदान में साकार किया गया है। धनिया ग्राम्य (अथवा भारतीय) नारी की प्रतिनिधि पात्रा है। "होरी महतो की

स्त्री, छत्तीसवें साल में ही जिसके सारे बाल पक गये, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी, सारी देह ढल गयी, सुन्दर गेहुँआ रंग सांवला हो गया और आँखों से कम सूझने लगा।" - धनिया का यह परिचय ही मानी एक सरल हृदया, ग्राम्य नारी को साकार कर देता है। वह सरल हृदया, दुनियादारी की बातों में कुशल, उदार, स्वाभिमाननी, साहसी और दृढ़, मातृत्व और वात्सल्य आदि से युक्त औरत है। इसी के साथ-साथ उसमें कुछ ग्राम्य नारीयोजित कमियाँ (अपनी प्रशंसा की भूखी, क्रोध, वाचालता, अपशब्दों तक खुला प्रयोग तथा अन्धविश्वासों की अनुयायी आदि भी है। अपने इन गुण-दोषों में उसका चरित्र एक ऐसा दर्पण है जिसमें निम्न वर्ग की ग्रामीण नारी के सभी गुण- दोषों का (अर्थात् प्रतिनिधित्व गुण का) वर्णन किया जा सकता है। स्वयं अपने पति के शब्दों में वह "सेवा और त्याग की देवी! जबान की तेज पर मोमजैसा हृदय। पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली पर मर्यादा रक्षा के लिये अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। कभी किसी ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़-छाड़ की थी। उसका ऐसा मुँह तोड़ जवाब दिया कि आज तक नहीं भूले। डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित के शब्दों में, "धनिया भारतीय नारी की प्रतीक है जो आजीवन अधखाये और अर्धनग्न रहकर परिवार के हित के लिये स्व-व्यक्तित्व का बलिदान कर देती है।" एक शब्द में धनिया का सम्पूर्ण चरित्र 'स्वाभाविक' है। वह एक स्वाभाविक पत्नी, एक स्वाभाविक माता और एक स्वाभाविक ग्राम्य नारी है। (उपन्यास के) प्रथम परिच्छेद से ही वह होरी के कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करती दिखाई पड़ती है। जमींदार, पुलिस, महाजन, पंचायत आदि के प्रसंगों में वह होरी के साथ छाया की भाँति लगी रहती है, उसके सभी सुख-दुःख में उसकी संगिनी बनी रहती है। इसी प्रकार, गोबर धनिया के प्रेम-प्रसंगों में वह एक और जहाँ गोबर को बुरा भला कहती है वहीं दूसरी ओर निस्सहाय झुनिया को, समाज की परवाह न करने आश्रय देती है। सोना के विवाह के समय भी न मांगे जाने पर भी शक्ति से अधिक दहेज देती है। इसी प्रकार देवरों से झगड़े, सिलिया की सहायता आदि उसके ग्राम्य नारी के ही स्वाभाविक रूप के उदाहरण है। धनिया एक ओर

जहाँ समाज में अपने पति की सहभागिनी है वहीं दूसरी ओर परिवार में गृहदेवी भी है। दक्षित ने ठीक ही कहा है, "उनके (प्रेमचन्द के उपना में व्यक्त इन विशेषताये हैं जो प्रायः सभी में उपलब्ध होती है त्याग की ये सभी साक्षात् मूर्ति है। अपमान, अवमानवता, उपेक्षा, वंचन तथा शोषण रूपी विष का पान करके परिवार में स्नेह साई अमृत की वर्षा करती हैं। वास्तव में धनिया भारतीय गृह देवियों का यथार्थ चित्र है।पनि की ही भाँति झुनिया, सिलिया दुलारी, सोना रूपा, आदि भी ग्राप्य समाज की नारियों के प्रतिविम्व हैं जिनमें भारतीय नारी के विभिन्न रूप अंकित हुए मिलते हैं। नगर कथा के अन्तर्गत मिस मालती गोविदी और मीनाक्षी आदि प्रमुख नारी-चरित्रों की अवतारणा की गयी है। मिस मालती, स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में, "दूसरी महिला जो डाँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख छवि पर हंसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। ** आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा है। गाल कोमल, पर चापलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिरजवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकर, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है, वह प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हावभाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह।" इसी प्रकार "चंचल वह इतनी है कि जरा से उकसाने पर ओंकारनाथ को अपने शब्द जाल में फंसाकर शराब पिला देती हैं, मनचली ऐसी है कि उसके बारों और रसिकों का जमघट चाहिये।" सामाजिक रूप से ऐसी स्वच्छन्द नारी होने पर भी 'मालती बाहर से तितली है और भीतर से मधुमक्खी। वह हंसती है। इसलिये कि उसे उसके भी दाम मिलते हैं। × × × वह घर की सारी स्थिति सम्हालती है, दोनों बहिनों की पढ़ाई लिखाई का प्रबन्ध करती है और सदा इस प्रयत्न में रहती है कि मेरे शराबी कबाबी पिता भी सात्विकता के साथ रहें।' इस प्रकार, मालती भी मूलतः भारतीय नारी ही है, किन्तु पाश्चात्य सभ्यता की साकार प्रतिमा। उपन्यास के अन्त तक आते-आते तो वह श्री. मेहता भारतीय नारी के पक्ष- पाती, से परास्त हो जाती है मानो मालती के रूप में भारतीय नारी के सम्मुख पाश्चात्य वातावरण में ढली नारी परास्त हो जाती है। मालती की यह स्वीकृति, "तुम मेरे पथ प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरु हो..... तुमने आकर प्रेरणा दी स्थिरता दी। तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यह मेरी पूर्णता है।" मानो मालती के सत्पथ पर अग्रसर होने की भविष्यवाणी है। इस प्रकार मालती उस उच्चमध्य वर्ग की नारी का

प्रतीक है जो पाश्चात्य भौतिकवादी विचारधारा से प्रेरित होकर अपने नारीत्व को भी दांव पर लगा देती है, नारी के सच्चे रूप को झुठला देती है और अन्त में परास्त होकर एकदम भारतीय नारी के "परम्परागत आदर्शानुकूल" तथा "श्रद्धा की वस्तु" तक बन जाती है। समग्रतः वह तितली वाले रूप को त्याग मधुमक्खी बन जाती है।

खन्ना की पत्नी गोविन्दी उच्च वर्ग की वह नारी है जो आधुनिकता के नाम पर, पति द्वारा किये गये अत्याचारों और अन्याय की सहन करती है, और चुप रहती है। कामुक, अत्याचारी, अनायायी और एय्याश पति भी उसके लिये 'परमेश्वर' है, उसका घर ही उसके लिये 'स्वर्ग' है इसीलिए 'विवाह-विच्छेद' जैसे उपाय तो वह सोच ही नहीं सकती और सुझाये जाने पर भी, परिवार-मोह के कारण ग्रहण नहीं कर सकती। इस प्रकार वह त्याग, सहनशक्ति और ममत्व भाव की मूर्ति है। मीनाक्षी वरदा, सरोज आदि भी आधुनिक नारी के प्रतिबिम्ब है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोदान में उपन्यासकार ने भारतीय नारी का सजीव और व्यक दृष्टि से चित्रण किया है। वास्तव में 'गोदान' एक ऐसा अलबम है जिसमे नारी के परम्परागत और नूतन दोनों रूप मिलते है। यहाँ ग्रामीण और शहरी पोषक और शोषित, उच्च और निम्न सभी प्रकार की नारियों है। डॉ. प्रेमनारायण टण्डन के अनुरको दृष्टि में की सहचरी है, अनुचरी नहीं। हाँ, अपनी सेवा, भक्ति और अनुपम त्याग के कारण भारतीय स्वयं अपने को पति की अनुचरी समझती है।" धनिया, झुनिया, गोविन्दी और मालती तक इसी भावना से अनुप्रेरित है और "लेखक के नारी-स्वपन्न को ही अंततः साकार करती है।"

प्रेमचन्द की नारी आदर्श और पूजनीय है, यदि भारतीय नारी संस्कारों से युक्त है। मेहता के शब्दों में मानो स्वयं उपन्यासकार ही अपना यह मत प्रकट करता है। "खन्ना अभागे हैं जो हीरा पाकर कांच का टुकड़ा समझ साथ ही रहे। सोचिये उनकी स्त्री में कितना त्याग है और उसके पति से कितना प्रेम है है। । खन्ना आज अन्ये या कोड़ी हो जायें तो भी उसकी वफादारी में फर्क न आयेगा। मैं ऐसी बीबी नहीं चाहता जिसमें मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बहस कर सकूँ या जो मेरा रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूँ जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्जवल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।"

नवीन विचारकों या तथाकथित प्रगतिशील नवयुवकों को प्रेमचन्दजी का यह विश्वास रूढ़िगत या प्राचीन लग सकता है, किन्तु निष्पक्ष दृष्टि से देखने पर वे भी इसमें असहमत नही हो सकते। दूसरे, प्रेमचन्द जी की नारी सम्बन्धी धारणायें अपने युग और व्यक्तिगत जीवन से प्रभावित थी। डॉ. दीक्षित के शब्दों में, "प्रेमचन्द का जीवन स्वतः इस रहस्य या पहेली का उत्तर था। नारी की ओर से उन्हें जीवन में सुखद और कटु दोनों प्रकार के अनुभव हुए थे।" फिर भी, वे अपने युग से पीछे नहीं कहे जा सकते। 'गोदान' में भी उनकी नारी अर्धांगिनी है। समाज और परिवार दोनों क्षेत्रों में वह कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन-संग्राम में जूझती है। व्यष्टि रूप में वह माता, पत्नी आदि उच्च पद की अधिकारी है। 'गोदान' में भी उपन्यासकार ने स्त्री-स्वातन्त्र्य, शिक्षा, समानाधिकार तथा वैश्यावृत्ति आदि नारी सम्बन्धी समस्याओं को ग्रहण किया है। उसका मातृत्व गुण उसकी सबसे बड़ी विभूति है। पाश्चात्य सांचे में ढली, आधुनिका का निर्वाण भी यहाँ भारतीय नारीत्व में दिखाना मानो भारतीय नारी की सबसे बड़ी विजय है। डॉ. दीक्षित के शब्दों में कह सकते हैं, "प्रेमचन्द ने भारतीय नारी का बड़ा कल्याणकारी रूप अपने उपन्यासों में (गोदान में सर्वाधिक) व्यक्त किया है। भारतीय नारी में मानव सुलभ सभी गुण हैं। ये नारी पात्र मानवीय शाश्वत प्रवृत्तियों से युक्त हैं।" वास्तव में, गोदान की नारी न देवी हैं, न दानवी वरन् सीधे-सादे रूप से मानवी है और वह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, सबसे बड़ा गुण, सबसे बड़ी आवश्यकता है।

जहाँ तक प्रश्न है, नारी विषयक सामान्य शाश्वत धारणाओं का, निःसंदेह लेखक ने उनको अपने मुख-पात्र या विचार-वाहक प्रो. मेहता के मुख से डट कर प्रस्तुत कराया है। निम्नलिखित कुछ उदाहरण हमारे इसी मत के साक्षी हैं-

(1) "मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की पूर्ति है, जो अपनी बेजुबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है।"

(11) "स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शान्ति सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाती है।

(iii) "संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ।"

(iv) "मैं ऐसी औरत चाहता हूँ जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्जवल बना दे, अपने प्रेम और त्यास से।"

(v) "मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ।" (vi) "पश्चिमी स्त्री आज गृहस्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है।"

(vi) "नारी केबल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम को सबसे बड़ी राधना सबसे बड़ी बड़ा और सकते विश्य है। एक शब्द में उसे लय कहूँगा जीवन का व्यक्तित्व और की।" "यह नारी है या मंगल की, पवित्रता की और त्याग की प्रतिमा।"

निष्कर्ष -उपर्युक्त विवेचन से यह बात एकदम उद्घाटित हो जाती है कि 'गोदान में भारतीय नारी के विभिन्न रूपी वर्गों का उनके गुण-अवगुण के साथ-साथ बड़ा विक चित्रण तो किया ही है, स्वयं ही भावनाओं, विचारों की अभिव्यक्ति देते हुए, यह सिद्ध कर दिया है कि "नारी के प्रति उनके हृदय में अत्यन्त कोमल भावना है जिससे उनके सभी नारी पात्र आदर्श से ओत-प्रोत है।" निःसन्देह नारी के इस आदूत आदर्शमय रूप जिसे "नारी विषयक भारतीय आदर्शों का प्रतिनिधि" बना दिया है। यहाँ तक कि "उनकी केकीर्ण एक मूर्तिमान भाव (idea) मात्र बन गयी है। विशेष नारी आदर्शों की काल्पनिक प्रतीक।" कर्ष स्वरूप कह सकते हैं, "प्रेमचन्द ने नारी.... का सफल चित्रण किया है। उनकी यी का आदर्श सीता और साबित्री है वे उसमें सेवा, त्याग, बलिदान, कर्मठता, प्रगतिशीलता, कर्तव्य-ज्ञान और पवित्रता आदि उदार भावों को देखना चाहते हैं।... वस्तुतः अपने द्वारा व्यक्ति सारी-भावना में उन्होंने इसी प्रकार के विचार व्यक्त (भी) किये हैं।" 'गोदान' और उसका गरी-चित्रण इसी सत्य का जीता-जागता प्रमाण है।

4.9 सारांश

करुणा' निबंध में शुक्ल जी ने करुणा नामक मनोभाव का विश्लेषपण किया है। शुक्ल जी का अनुभव था कि सुख-दुख की मूल अनुभूतियों ही विषय भेद से प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा आदि मनोविकारों का रूप धारण करती हैं। ये मनोविकार अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं।

करुणा दुःख की अनुभूति का एक प्रकार है। क्रोध भी दुःख की अनुभूति में ही गिना जा सकता है किंतु उसका परिणाम करुणा से विपरीत होता है, क्योंकि क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। इस प्रकार करुणा के भाव के मूल में पात्र की भलाई की उत्तेजना की भूमिका होती है।

शुक्ल जी के अनुसार तीन अवसर ऐसे होते हैं जिनमें करुणा के मनोवेग का महत्व घट जाता है। ये अवसर हैं आवश्यकता, नियम और न्याय। ये ऐमी स्थितियाँ हैं जहाँ करुणा व्यवस्था और कर्तव्य के मार्ग में बाधक बनती है। अतः उसकी भूमिका गौण हो जाती है। फिर भी

इन तीनों परिस्थितियों में यदि संबंधित व्यक्ति के दुख में करुणा उत्पन्न होती है तो दुखी व्यक्ति के दुख को व्यक्तिगत स्तर पर दूर किया जा सकता है क्योंकि करुणा का द्वार तो सबके लिए खुला

करुणा ममाज के कल्याण का आधार है। इससे समाज जीवित और स्थिर रहता है। अतः करुणा का ममाज में होना श्रेयमकर है। समाज की भलाई इसी भाव पर निर्भर है। दूसरों के दुख में दुखी होना करुणा कहलाता है। स्पष्ट है कि करुणा ही मानव समाज में मात्विक गुणों का दिव्य प्रकाश करने वाला मनोभाव है। यह सात्विक ज्योति मानव के अंतःकरण में सदैव विराजमान रहती हैं। करुणा ही श्रद्धा, प्रेम और कृतज्ञता और दया की जन्मदात्री है। यह शालीनता और मान्विकता की स्थापना करने वाली भावना है।

4.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- भाषा-शैली की दृष्टि से 'गोदान' की, समीक्षा कीजिए।
- "प्रेमचन्द की लेखनी ग्रामीण पात्रों की रचना में जितनी सहज और मुखर हो सकी उतनी शहरी पात्रों की रचना में नहीं।" गोदान' के सन्दर्भ में इस कथन का विवेचन कीजिये।
- "प्रेमचन्द के पात्र व्यक्ति नहीं वर्ग होते हैं।" इस कथन की विवेचना 'गोदान' में रखकर सोदाहरण दीजिए।
- "व्यवस्था की खामियों के प्रति स्त्री अधिक संवेदनशील और मुखर होती है।" गोदान के नारी पात्रों के साक्ष्य पर इस कथन की विवेचना कीजिए।
- प्रेमचन्द के चरित्र-चित्रण की विशेषतायें बतलाते हुए सिद्ध कीजिये कि 'गोदान' में नारी पात्रों का चित्रण सहज व मार्मिक रूप में हुआ है।
- "नारी के प्रति प्रेमचन्दजी के हृदय में अत्यन्त कोमल भावना है। जिससे उनके प्रायः सभी नारी पात्र आदर्श से ओत-प्रोत हैं।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में गोदान के आधार पर प्रेमचन्दजी की नारी विषयक धारणाओं को सप्रमाण स्पष्ट कीजिए।
- "गोदान में प्रेमचन्द ने भारतीय नारी का बड़ा कल्याणकारी रूप प्रस्तुत किया है।" उपयुक्त प्रमाण देते हुए सिद्ध कीजिए।
- "नारी के प्रति प्रेमचन्दजी के हृदय में अत्यन्त कोमल भावना है। जिससे उनके प्रायः सभी नारी पात्र आदर्श से ओत-प्रोत हैं।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में गोदान के आधार पर प्रेमचन्दजी की नारी विषयक धारणाओं को सप्रमाण स्पष्ट कीजिए।
- "गोदान में प्रेमचन्द ने भारतीय नारी का बड़ा कल्याणकारी रूप प्रस्तुत किया है।" उपयुक्त प्रमाण देते हुए सिद्ध कीजिए।
- "गोदान की नारी न देवी है, न दानवी वरन् मानवी है।" उपर्युक्त साक्ष्य देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए।
- "गोदान उपन्यास में नारी को भारतीय आदर्शों का प्रतिनिधि बना दिया गया है।" उपर्युक्त प्रमाण देते हुए सिद्ध कीजिए।
- "व्यवस्था की खामियों के प्रति स्त्री अधिक संवेदनशील और मुखर होती है।" गोदान के नारी पात्रों के साक्ष्य पर इस कथन की विवेचना कीजिए।
- "प्रेमचन्द के पात्र व्यक्ति नहीं वर्ग होते हैं।" इस कथन की विवेचना 'गोदान' में रखकर सोदाहरण दीजिए।
- 'गोदान' में मुंशी प्रेमचन्द की दृष्टि चरित्र-निर्माण की अपेक्षा वातावरण की सृष्टि की ओर अधिक रही है। सोदाहरण समझाइए।
- "गोदान' में अपने युग का प्रतिबिम्ब भी है और आने वाले युग की प्रसव- व्यथा भी। उपन्यास की शैली में उसे भारतीय जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है।" इस कथन की तर्कसंगत समीक्षा कीजिए।
- "गोदान ग्रामीण जीवन का महाकाव्य है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

- "गोदान भारतीय जीवन का एक सम्पूर्ण महाकाव्य है।" इस कथन की समीक्षा गोदान के घटनाक्रम एवं इतिवृत्तों के आधार पर कीजिए।
- "गोदान में लेखक के जीवन्त, घनीभूत अनुभव, महाकाव्यात्मक उपन्यास के रूप में व्यक्त हुए हैं।" इस कथन की तर्क संगत व्याख्या कीजिए।
- "गोदान की नारी न देवी है, न दानवी वरन् मानवी है।" उपर्युक्त साक्ष्य देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए।
- "गोदान उपन्यास में नारी को भारतीय आदर्शों का प्रतिनिधि बना दिया गया है।" उपर्युक्त प्रमाण देते हुए सिद्ध कीजिए।

4.11 पठनीय पुस्तकें

1. प्रेमचंद एक विशेष अध्ययन गंगा सहाय प्रेमी एवं जगदीश शर्मा
2. मानसरोवर भाग 8-1: प्रेमचंद
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र

इकाई – 5

उपन्यासकार जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, मन्नू भण्डारी ।

रूपरेखा

5.1 प्रस्ताबना

5.2 शब्द संपदा

5.3 उद्देश्य

5.4 'धनिया' के औपन्यासिक व्यक्तित्व

5.5 गोबर का चरित्र-चित्रण

5.6 "गोदान' तत्कालीन भारतीय ग्राम्य एवं नगर जीवन का सार्थक चित्रण

5.7 "होरी' भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि चरित्र

5.8 'गोदान' उपन्यास में निहित प्रेमचन्द के उद्देश्य और संदेश

5.9 भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कृतित्व

5.10 रामकुमार वर्मा के एकांकी साहित्य का परिचय

5.11 जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी कला का सामान्य परिचय

5.12 लक्ष्मीनारायण लाल के एकांकी साहित्य का परिचय

5.13 जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों की समीक्षा

5.14 निर्मल वर्मा का संक्षिप्त परिचय

5.15 भीष्म साहनी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय

5.16 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

5.17 सारांश

5.18 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्ताबना

आदर्श और यथार्थ- साहित्य में मानव जीवन और समाज का चित्रण होता है। जब साहित्यकार मानव-जीवन और समाज का आँखों देखा सच्चा चित्रण करता है, तब उसे यथार्थवादी चित्रण कहा जाता है और जब वह आँखों देखे रूप को अपनी कला और कल्पना में संस्कृत कर मानवमात्र के हितकारी रूप में उसे अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है, तब उसे आदर्शवादी चित्रण कहा जाता है। यथार्थ चित्रण में प्रायः समानता होती है, है, परन्तु साहित्यकारों के आदर्श में अन्तर होने के कारण आदर्शवादी चित्रण में प्रायः भिन्नता रहती है। है। प्रेमचन्द ने मानव-जीवन और मानव-समाज की व्याख्या उपर्युक्त दोनों रूपों में की है, परन्तु उनके यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों ही प्रकार के चित्रण में संयंत्र है। उन्हें "अमंगल यथार्थ अग्राह्य है, मंगलमय यथार्थ संग्रहणीय है।" उनके 'गोदान' में अमंगल यथार्थ का ही रूप मिलता है।

यथार्थ की कुरूपता को मिटाकर उसे उन्होंने मानव-कल्याणकारी रूप में रखा है। प्रेमचन्द की दृष्टि में यथार्थवाद और आदर्शवाद- प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों तथा उपन्यासकला के विवेचन में स्थान-स्थान पर यथार्थवाद और आदर्शवाद के स्वरूप को स्पष्ट किया है। प्रेमचन्द यथार्थ और आदर्श का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

यचार्थवादी चरित्रों को लेखक (पाठक) के सामने यथार्थ के रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं है कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं।..... यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमें निराशावादी बना देता है। मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। आदर्शवाद हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ की वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार- कुशल नहीं होते हैं, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है।

5.2 शब्द संपदा

- अंगुल = उंगली
- अद्वैत = द्वैत या भेद का अभाव, आत्मा परमात्मा में अभिन्नता
- अनागरिक = जो किसी राज्य या नगर का निवासी न हो
- आमोद-प्रमोद = हंसी-खुशी, भोग-विलास
- उद्विग्र चिंतित, परेशान
- कछार = नदी के तट की ज़मीन
- कर्तव्यपरायण = अपनी जिम्मेदारी को पूरा करना
- क्षत- विक्षत
- गिलट = घायल, लहूलुहान, जिसका शरीर घावों में भरा हुआ हो
- तपोव्रती = तप करने का व्रत रखने वाला ऐसी वस्तु जिस पर मोने या चांदी आदि का पानी चड़ा हो
- पछेली-ककना = कलाई पर पहनने का एक आभूषण। पहेली को कंगन (ककना) या चूड़ियों के पीछे पहन जाता है।

5.3 उद्देश्य

* कथा सम्राट प्रेमचंद के जीवन से परिचित हो सकेंगे।

* उनकी याचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

* उनकी कहानियों की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

* उनके उपन्यासों की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

* हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के महत्व और स्थान को समझ सकेंगे।

5.4 'धनिया' के औपन्यासिक व्यक्तित्व

'धनिया' का चरित्र-चित्रण धनिया कर्मठ ग्रामीण हिन्दू-ग्रहिणी की समस्त विशेषताएँ लेकर 'गोदान' के कथा-पट पर अवतरित हुई है। कथानक में उसकी महत्वपूर्ण स्थिति आद्यान्त बनी रहती है। अति साहस, धैर्य और अध्यावसाय से वह दैवी एवं मानुषी आपत्तियो के भयानक थपेड़ों से संघर्ष लेती हुई होरी के कदम से कदम मिलाकर जीवन-संग्राम में चलती रहती है। उसकी कर्मठता, त्याग और साहस पाठकों को आकर्षित कर लेता है। घनिया का व्यक्तित्व कठपुतली मात्र न होकर एक कर्मठ ग्राम्य नारी का जीवित रूप है। धनिया के चारित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट की जा सकती है-

धनिया होरी की शीतल छाया- धनिया और होरी के चरित्र में भिन्नता है, परन्तु वह उसकी सच्ची सहदर्मिणी बनकर संघर्षों की भीषण लपटों में उसे शीतल छाया प्रदान करती है। होरी जहाँ अन्याय को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है, वहाँ धनिया अन्याय का डटकर विरोध करती है। वह जीवन संघर्ष में साहस के साथ संघर्ष दोलती है। भीषण संघर्ष उसे असमय में ही वृद्ध बना देता है। अभी उसकी आयु छत्तीस वर्ष की थी- "पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थी, सारी देह जल गई थी, सुन्दर गेहुओं रंग सांवला हो गया था और आँखों से कम सूझने लगा था। इस चिर-स्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्म-सम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था।" धनिया कर्मठ भारतीय नारी का प्रतीक है और होरी कर्मठ भारतीय पुरुष का। धनिया वह आश्रय है, जिनका होरी को सम्बल मिलता है। यथार्थ में धनिया का व्यक्तित्व होरी से पृथक नहीं है। धनिया वह खरा सोना है, जो विषम परिस्थितियों की आओग में निरन्तर तपकर शुद्द होता जाता है। वह होरी की प्रेरणाशक्ति है। धनिया का अमर व्यक्तित्व कथा-साहित्य में अमर है।

धनिया ऊपर से बहुत कठोर है। वह गाँव भर में लड़ाकू प्रकृति के लिए प्रसिद्ध परन्तु वह हृदय की इतनी अधिक कोमल है कि दीन और दुखी उसके यहाँ आश्रय पाते हैं। धनिया के चरित्र का विश्लेषण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है- आत्म-प्रशंसा की भूखी-नारी दूसरों से अपनी प्रशंसा सुनना चाहती है, धनिया भी इसका अपवाद नहीं है। अपनी प्रशंसा सुनकर उसकी बाह्य पौरुषता धुल जाती है। होरी भोला को भूसा देने का वचन दे चुका है। भोला भूसा लेने आ भी गया है, परन्तु बिना धनिया की स्वीकृति लिए उसके लिए भूसा दे देना सम्भव नहीं है। होरी भोला का प्रसंग छेड़कर कहता है- ".....उसकी भलमंसी तो देखो। मुझसे जब मिलता है तेरा बखान करता है-ऐसी लक्ष्मी है, ऐसी सलीकेदार है।"

धनिया के मुख पर स्निग्धता आ जाती है, वह कहती है- "मैं उसके बखान की भूखी नहीं हूँ, अपना बखान धरे रहें।" फिर क्या था; वह भोला के लिए खाट डलवाती है, जलपान का प्रबन्ध करती है और एक के स्थान पर तीन खाँचें भूसा दे देती हैं। एक-एक खाँचा भूसा गोबर और होरी से ले जाने को कहती है। उसकी प्रकृति की यथार्थ आलोचना होरी के निम्न कथन में हो जाती है-

"या तो चलेगी नहीं, या चलेगी तो दौड़ने लगेगी।"

साहस-स्वाभिमान-धनिया का साहस उसके व्यक्तित्व को निखार देता है। वह अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देती, जो उससे एक कहता है, बदले में दो सुनता है। वह असत्य और अन्याय को भी सहन नहीं करती। अन्याय के विरोध में उसका आक्रोश उमड़ पड़ता है। उसकी गाय को हीरा ने जहर दिया है, दरोगा तहकीकात के लिए आता है। होरी कहता है कि उसका शक किसी पर नहीं है। गाय बूढ़ी हो गई थी, वह तो अपनी मौत से ही मरी है। धनिया निभर्भीकता से यथार्थ को प्रकट करती हुई कहती है-

"गाय हमारी है तुम्हारे भाई हीरा ने। सरकार ऐसे बौड़म नहीं है कि जो कुछ तुम कह दोगे, वह मान लेंगे।"

होरी नहीं चाहता कि उसके भाई हीरा के घर में तलाशी हो। वह कर्ज लेकर दरोगा को रिश्वत देने चलता है। धनिया आक्रोश में भरकर होरी के हाथ से अँगोछी को झटक लेती है। रुपये जमीन पर बिखर जाते हैं। धनिया नागिन की तरह फुंसकारकर कहती है-

"रुपये कहाँ लिए जा रहा है बता ! भला चाहता है तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के प्राणी रात-दिन मरें और दाने-दाने को तरसें। लत्ता भी पहनने को मयस्पर न होवे। अंजुली भर रुपये लेकर चला है, इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत । जिसके घर चूहे लोटे वह इज्जत वाला है। दरोगा तलाशी ही तो लेगा, ले-ले जहाँ चाहे वहाँ तलाशी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर ऊपर से यह पलोथन। वाह री ! तेरी इज्जत।" दरोगा को यह कहने पर कि, "इस शैतान की खाला ने हीरा को फँसाने के लिए स्वयं जहर दिया है।"

हीरा एक वीरांगना की तरह कड़ककर दरोगा को मुंहतोड़ उत्तर देती है। "हाँ दे दिया। अपनी गाय थी मार डाली फिर किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा? तुम्हारी तहकीकात में, यही निकलता है, तो यही लिख दो, पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियों।

देख लिया यानी का पौना मारी अक्कल की दौड़ । गरीबों का गला काटना दूसरी भार दूध का दूध करना दूसरी बात। धनियाँ वहाँ उपस्थित मुखिया, पटवारी, साहूकार आदि को भी आड़े हाथ लेती हुई कहती है-

"जिसके रुपये हों, उसे ले जाकर दे दो।..... मैं दमड़ी भी न दूँगी। हत्यारे गाँव के मुखिया है, गरीबों का खून चूसने वाले । सूद ब्याज ड्यौढ़ी-सवाई, नजर नजराना, सूर्याचा जैसे भी, गरीबों को लूटी। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से स न्याय से।" सुराज न मिलेगा धरम से, दरोगा धनिया के लिए कहता है- "औरत दिलेर है।"

धनिया झगड़े से नहीं डरती, गाँव में ऐसा कौन है, जिसकी काली करतूतें धनिया नहीं जानती। दातादीन उसे उपदेश देते हैं कि वह झुनिया को घर में रखकर मुसीबत मोल न लें। बह दातादीन की कलई खोलती हुई उनको करारा उत्तर देती है-

"हमको कुल परतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही, पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती। वही काम बड़े-बड़े आदमी करते हैं, मुआँ उनसे कोई नहीं बोलता-उन्हें कलंक भी नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं तो उनकी मरजाद बिगड़ जाती है, नाक कट जाती है। बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी। हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।"

फौलादी व्यक्तित्व-धनिया के व्यक्तित्व का निर्माण उस फौलाद से हुआ है, जो टूट सकती है, किन्तु मुड़ नहीं सकती। वह परिस्थितियों से समझौता न करके हार-जीत की चिन्ता किये बिना उनसे संघर्ष करती है। झुनिया को रखने के अपराध में पंचायत उनको दण्डित करती है। वह पंचों के अन्याय का मुँह-तोड़ उत्तर देती हुई कहती है-

"पंचों ! गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना, हम तो मिट जायेंगे। कौन जाने इस गाँव में रहें, या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर ही जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जारीमाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया, यही न्याय है, ऐं ?"

होरी धनिया को रोकता हुआ पंचायत का दिया हुआ दण्ड स्वीकार करता है। धनिया उसकी उपेक्षा करती हुई क्रोध में दाँत किटकिटाकर कहती है-

"मैं न एक दाना दूँगी, न एक कौड़ी डाँड। जिसमें बूता हो चलकर मुझसे ले ले। अच्छी दिल्लगी है, सोचा होगा डाँड के बहाने इसकी सब जाजात ले लो और नजराना लेकर दूसरों को दे दो, बाग-बगीला, बेचकर मजे से तर माल उड़ाओ, धनिया के जीते जी यह नहीं होने का और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है विरादरी में। बिरादरी में ! बिरादरी में रहकर मुकुत न हो जायेगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे।"

प्रगतिशीलता-धनिया को प्रगतिशील माना जा सकता है, वह शोषण और अत्याचार के विरुद्ध अपना आक्रोश व्यक्त करती है। होली पंचायत के दिये दण्ड में अपनी सारी उपज दे देता है और खाली हाथ घर आता है। धनिया उसे आड़े हाथ लेती हुई कहती है-

"न हुक्का खुलता तो हमारा क्या बिगड़ जाता। चार-पाँच महीने नहीं किसी का हुक्का पिया तो क्या छोटे हो गये, मैं कहती हूँ कि तुम इतने भौदू क्यों हो ? मेरे सामने बड़े बुद्धिमान बनते हो, बाहर तुम्हारा मुँह क्यों बन्द हो जाता है? ले दे-के बाप-दादा की निशानी एक घर बचा था, आज तुमने उसका भी वारा-नारा कर दिया। मैं पूछती हूँ तुम्हारे मुँह में जीभ

कि इनमें पूछते कि तुम कहाँ के बड़े-बड़े धर्मात्मा हो, जो दूसरों पर डाँड लगाते फिरते हो। तुम्हारा तो मुंह देखना भी पाप है।"

धनिया की वाणी में प्रभावी तेज व्यंग्य और मार्मिकता है। वह समाज के शोषक, न्या और धर्म के ठेकेदारों को फटकारती हुई होरी से कहती है-

"या पंच नहीं राक्षस है, पक्के राक्षस। यह सब हमारी जगह-जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं. डाँड तो बहाना है। समझाती जाती हूँ, पर तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं। तुम इन पिशाचों से दया की आशा करते हो। सोचते हो दस-पाँच मन निकालकर दे देंगे। मुँह धो रखो।"
यदि किरादरी उसके साथ अन्याय करे और उसका शोषण करें, तो विरादरी की भी चिन्ता धनिया को नहीं होगी। वह होरी को उसके दब्बूपन पर फटकारती हुई कहती है-
"कौन-सा पाप किया है, जिसके लिए बिरादरी से डरें। किसी की चोरी की है, किसी का माल काटा है। मेहरिया रख लेना पाप नहीं है। हाँ, रखकर छोड़ देना पाप है।" अन्याय के विरुद्ध धनिया का आक्रोश ज्वालामुखी बनकर फूट पड़ता है। हीरा ने उसकी गाय को जहर दिया है। यह जानकर वह आग-बबूला हो जाती है-
"सबेरा होते ही लाला को थाने पहुंचा दूँ तो अपने असल बाप की नहीं। यह हत्यारा भाई कड़ने जोम है, यह भाई का काम है। यह बैरी है, पक्का बैरी और बैरी को मारने में पाप नहीं छोड़ने में पाप है।"
सहृदयता और नवनीत की-सी कोमलता-धनिया का बाह्यरूप ही उम्र है। उसका हृदय नवनीत-सा कोमल है। झुनिया के घर आ जाने पर वह होरी को समझाती हुई कहती t-
"देखो तुम्हें मेरी सौंड, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती, तो यह दिन क्यों आता।" कह-करुणार्द्र होकर सिलिया से धनिया निराश्रित सिलिया को भी आश्रय देती है।
कहती है-
"जगह की कौन कमी है बेटी! तू चल मेरे घर रह।"
धनिया त्याग और सेवा की देवी है, वह जबान की तेज अवश्य है किन्तु उसका हृदय मोम जैसा कोमल है। वह पैसे पैसे पर प्राण देने वाली है, परन्तु मान मर्यादा की रक्षा के लिए
अपना सर्वस्व तक न्यौछावर करने के लिए उद्यत रहती है। वह जीवन में कभी हार नहीं मानती। निष्कर्ष-उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धनिया ऐसी कर्मठ और आदर्श नारी है कि जिसकी समता कथा-साहित्य में अन्यत्र खोजने से न मिलेगी। उसके यथार्थ चरित्र का विकास बड़ी स्वाभाविक गति से हुआ है। वह भारतीय ग्राम्य नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती हुई अत्याचारों और विपत्तियों से संघर्ष करती है। वह बाहर से कठोर किन्तु हृदय से नवनीतवत् कोमल है। वह ऐसी फौलाद है जो टूट भले ही जाय, किन्तु झुक नहीं सकती। वह जीवन के भीषण संघर्ष से कभी भी पीछे पैर नहीं हटाती। पति की मृत्यु पर अपने को असहाय समझकर बह पछाड़ खाकर गिर जाती है, जैसे उसकी सहनशक्ति की सीमा ही समाप्त हो गई हो। उसके पछाड़ खाकर गिरने में उपन्यासकार यह व्यंग्य व्यजित करता है कि जो समाज-व्यवस्था उसकी इस कारुणिक दशा के लिए उत्तरदायी है, वह इसी प्रकार टूटकर रहेगी। धनिया के व्यक्तित्व में कोमलता और पुरुषता का अद्भुत मिश्रण है। उसका संघर्षशील साहसिक व्यक्तित्व उसे बहुत ऊँचा उठा देता है। धनिया जहाँ एक पति-परायण-नारी है, वहाँ पुत्र-वत्सलता मां भी है। असहायों की सहायता से वह जितनी कोमल एवं उदार है, अत्याचारियों और ढोगिनों को बखिया उधेड़ने से वह उतनी ही अधिक कठोर है। वह स्वाभिमानी और कर्मठ नारी का महान आदर्श है। धनिया को कथानक में नायिका का स्थान प्राप्त है।

5.5 गोबर का चरित्र-चित्रण

गोबर का चरित्र-चित्रण उपन्यास के आरम्भ में गोबर सोलह वर्ष का अल्हड़ किन्तु विद्रोही स्वभाव का सांवला, लम्बा, एकहरा युवक है, जिसकी कृषि कार्य में रुचि नहीं *और उसके मुख पर प्रसन्नता की जगह असंतोष और विद्रोह का भाव झलकता रहता है। वा का व्यक्तित्व अपने हिता होरी से सर्वथा भिन्न है। वह वर्तमान-शोषक समाज-व्यवस्था के प्रति नई पीढ़ी की विद्रोही विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। गोबर के चरित्र का घात- धात और उत्थान-पतन में विकास हुआ है। उसका चारित्रिक विश्लेषण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है-

शोषक और अन्याय के प्रति विद्रोह-गोबर का हृदय शोषण एवं अन्याय से भरी हुई समाज-व्यवस्था के प्रति असन्तोष और विद्रोह से भर जाता है। जमींदार की खुशामद करना उसे अभीष्ट नहीं, पुरानी मान्यताओं के प्रति उसका विश्वास नहीं और भाग्यवाद तो उसकी दृष्टि में डोंग और आत्मघाती सन्तोष मात्र है। उसे पिता का जमींदार की चापलूसी में जाना अच्छा नहीं लगता। वह पिता से कहता है-

"यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो ज्यादा आकर गालियाँ बकता है, बेगार देनी पड़ती है, नजर नजराना सब तो हमसे भराया जाता है, फिर किसी को क्यों सलाम करें ?"

गोबर प्रगतिवादी विचारों का है। वह अपनी स्थिति और जमींदार की तुलना करता हुआ जमींदार को शोषक कहता है। यदि जमींदार अपनी स्थिति से असन्तुष्ट है, तो वह अपना इलाका दे दें और बदले में उसके खेत, बैल, हल और कुदाल ले ले।

"तो फिर अपना इलाका क्यों नहीं दे देते ? हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं, करेंगे बदला ? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमदर्दी। जिसे दुःख होता है, वह दर्जनों मोटर नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है।"

गोबर जमींदार और महाजन के अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है, परन्तु होरी उसके विद्रोह को दबाता रहता है। गोबर इस बात को समझ चुका है कि जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है। इसलिए वह गाँव या भार में कहीं भी रहे, लेकिन अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाता रहता है।

भाग्यवादी सिद्धान्त में अनास्था-गोबर वर्तमान युग का ऐसा प्रगतिशील युवक है जो कर्मकाण्ड और भाग्यवाद में विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार भगवान ने सबको बराब बनाया है। यह भेद-भाव तो स्वाथों शोषकों और पूँजी पतियों के द्वारा किया गया है। गोब अपने पिता के भाग्यवादी सिद्धान्त का विरोध करता है। यह होरी के इस कथन में विश्वास नहीं करता कि जमीदार साहब पूर्व जन्म से संचित कर्मो के कारण सुखोपभोग करते हैं और वह पूर्व जन्म में अच्छे कर्म न करने के कारण ही कष्ट भोग रहा है। गोबर पिता के भाग्यवादी सिद्धान्त का खण्डन करता हुआ कहता है-

"भगवान ने सबको बराबर बनाया है।"

"यह सब समझाने की बातें हैं। भगवान् सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर एक बड़ा आदमी बन जाता है।"

प्रगतिशीलता-गोबर प्रगतिशील विचारधारा का युवक होने के कारण जमींदार और पूँजीपतियों के धर्म और पूजा-भजन को ढकोसला कहता है। यह सब उसकी दृष्टि में किसान- मजदूरों का शोषण करके ही धर्म और पूजा-पाठ का पाखण्ड करते हैं। उसका निम्न कथन उसकी प्रगतिशील विचारधारा का द्योतक है-

"नहीं किसानों के बल, यह पाप का धन पचे कैसे ? इसलिए दान-धर्म करना पड़ता है। भगवान का भजन भी इसलिए होता है, भूखे नंगे रहकर भगवान् का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान् का ही जाप करते रहें। एक दिन खेत में ईख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाएँ।"

गोबर के कथन के रूप में प्रेमचन्द ने भी नई पीढ़ी का सन्देश दिया है, जो वर्तमान समाज- व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना हृदय में लिए हैं। गोवर की यह विचारधारा प्रत्यक्ष अनुभव की हुई है, यह किताबी सिद्धान्त कथन-मात्र नहीं है। अन्धविश्वास और सड़ी-गली मान्यताओं का विरोध-गोवर समाज की सड़ी-गली मान्यताओं और अन्धविश्वास का विरोधी है। वह यह सब देखकर क्षुब्ध होता है कि गाँव के साहूकार, कारिन्दा, जमींदार, धर्म और समाज के ठेकेदार आदि सभी किसान की खून-पसीने की कमाई पर गुलछरें उड़ाते हैं और अन्न को पैदा करने वाला किसान दोनों वक्त भरपेट भोजन भी नहीं पाता। वह झुनिया को अपने घर लाने के कारण समाज की सड़ी-गली मान्यताओं का शिकार होता यह विवश होकर शहर को पलायन कर जाता है। वह निश्चय करता है- "अपना है। भाग्य स्वयं बनाना होगा। अपनी शक्ति और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा।"

निर्भीकता और साहस-निर्भीकता गोबर के चरित्र की प्रमुख विशेषता है। वह गाँव में जमींदार रायसाहब के दोषों की भी आलोचना करता है- "उसकी वाणी में सत्य का बल है। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूँगा हो जाता है। सीमेंट, जो ईट पर चढ़कर पक्का हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय तो मिट्टी हो जायेगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीत के बख्तर को वेघ डाला, जिससे सज्जित होकर नोखेराम की आत्मा अपने को शक्तिमान रही थी

धन कमाने की धुन-गोवर अध्यावसायी है। वह इस परिणाम पर पहुँचता है कि समाज में पैसे से ही सम्मान मिलता है। शहर जाकर वह खोमचा लगाता है और खर्च से बचे हुए रुपयों को ब्याज पर उठा देता है। शहर में आकर उसमें चालाकी और स्वार्थ की भावना भी आ जाती है। उन मिर्जा खुसेंद को पाँच रुपये उधार नाहीं देता, जिन्होंने उसे सबसे पहले नौकरी दी थी और रहने के लिए कोठरी भी दी थी, वह मिर्जा से तो रुपये न होने का बहाना कर देता है, किन्तु उसी समय अत्नतादीन को रुपये उधार दे देता है। वह जानता था कि मिर्जा रुपये वापस न करेंगे। वह मिर्जा के सारे अहसानों को भूल जाता है। गोबर के इस स्वार्थी चरित्र पर पाठक झुंझला उउता है, परन्तु उपन्यासकार ने यहाँ नयी पीढ़ी के यथार्थ प्रतिनिधि के रूप में उसे प्रस्तुत किया है।

नई पीढ़ी पैसे को सर्वाधिक महत्व देती है। गोबर में भी यह चनलिप्सा होना स्वाभाविक है। अल्हड़ता और भोलापन-गोबर एक अलाड़ युवक के रूप में भी सामने आता है। का दुनियादारी और समाज की पेचीदगियों को नहीं समझता। अतः बिना समझे झुनिया के प्रेम-जाल में फँस जाता है। गोबर को यह प्रणय-व्यापार उसे शह पलायन कर धन कमाने के लिए प्रेरित करता

"झुनिया उसे दगाबाज समझती है, तो समझे, वह तो अभी तभी घर आवेगा जब वह पैसे के बल से सारे गाँव का मुँह बन्द कर सके, और दादा, अम्मा उसे कुल कलंक न समझकर कुल तिलक समझे।"

अन्तर्द्वन्द्व-गोबर के चरित्र में नई पीढ़ी के युवक वर्ग का अन्तर्द्वन्द्र भी है। वर्तमान याज-व्यवस्था से उसे असन्तोष है, किन्तु पिता के दबाव के कारण वह विद्रोह का रूप धारण बगही कर पाता। झुनिया के प्रति प्रणय उसके हृदय में भी अन्तर्द्वन्द्व की भीषण आँधी उठा देता है। वह झुनिया को चुपचाप घर में लाकर बिठा देता है और माता-पिता की प्रतिक्रिया जानने को इच्छा से अपने को छिपा लेता है। यही अन्तर्द्वन्द्व उसे शहर ले जाता है। गोबर कहीं-कहीं परिस्थितियों से विवश होकर माता-पिता से अशिष्ट शब्द भी कहता है। एक उदाहरण देखिए-

"पालने में तुम्हारा क्या लगा, जब तक बच्चा था दूध पिला दिया, फिर लावारिश की तरह छोड़ दिया। जो सबने खाया वही मैने खाया। मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं बँधा था और तुम भी चाहती हों और दादा भी चाहते हैं, मैं सारा कर्ज चुकाऊँ, लगान दूँ, लड़कियों का ब्याह करू, जैसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा भरना भरने के लिए ही है। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं।"

गोबर के चरित्र का पतन और उत्थान-गोबर नई पीढ़ी का फूटता हुआ अंकुर है। वह पढ़ा-लिखा नहीं है, अतः उसकी दुर्बलतायें कलंक नहीं बनतीं। लखनऊ आकर वह झुनिया को सताने लगता है और ताड़ी पीना आरम्भ कर देता है। परन्तु गोबर के चरित्र का उत्थान होता है, झुनिया के प्रति किये गये कठोर व्यवहार पर वह पश्चाताप करता है- सुना माफ कर ? तुझे सताया था, उसी का यह फल मिला।" कहा-

गोबर गाँव लौट आता है। मालती-मेहता के सम्पर्क में आकर वह बदल जाता है। उसमे पहले की उद्दण्डता नहीं रहती और वह नम्र एवं उद्योगी हो जाता है।

निष्कर्ष-निष्कर्ष रूप में गोबर के चरित्र विवेचन के प्रकाश में कहा जा सकता है कि वह निस्संदेह होरी की उस पीढ़ी से पर्याप्त आगे बढ़ा हुआ है जो धर्म, नैतिकता और मिथ्या मर्यादा रक्षण के नाम पर महाजनों की चक्की में पिसती रही है तथा जमींदारों, मिल मालिकों के शोषण का शिकार रही है। अपने रचनाकाल की नयी पीढ़ी का तो वह प्रतिनिधि है ही, छत्तीस वर्ष व्यतीत होने पर भी लघु किसानों की आर्थिक दुरवस्था में विशेष परिवर्तन न आने के कारण वह आजकल की भी नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यासकार ने गोबर

को उस नयी पीढ़ी के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है, जो वर्तमान पूँजीवादी शोषक समाज व्यवस्था के उन्मूलन के लिए आक्रोश लिए हुए है।

5.6 "गोदान' तत्कालीन भारतीय ग्राम्य एवं नगर जीवन का सार्थक चित्रण

'गोदान' गुग-प्रतिनिधि उपन्यास है। इसमें समय भारतीय जीवन अपने विविध पक्षीय संधयर्थी और समस्याओं को लेकर चित्रित हुआ है। कथानक के सभी पात्र अपने-अपने वर्ग की स्थिति और समस्याओं का प्रतिनिधित्व करते है हैं। होरी जहाँ पुराने किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, वहाँ उसका पुत्र गोबर नए विद्रोही किसान का दबा हुआ स्वर लेकर सामने आता है। रायताहच, अमरपालसिंह जमीदार वर्ग की समस्याओं और स्थिति का प्रतिनिधित्व करते है। इस प्रकार 'गोदान' के पात्र और घटनाएँ प्रतीक है। 'गोदान' ही अपने युग का एक ऐसा उपन्यास है, जो विशाल और व्यापक जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है।

राष्ट्रीयता-प्रेमचन्द राष्ट्रवादी उपन्यासकार हैं। प्रत्येक उपन्यास में राष्ट्रीय उत्थान उनका प्रमुख लक्ष्य रहा है। 'गोदान' में सत्याग्रह आदि रूप में राष्ट्रीयता आन्दोलन का चित्रण नहीं है। 'गोदान' में राष्ट्रीयता का रूप दूसरा ही है। भारत में किसान ही भारतीय राष्ट्रीय उत्थान का आधार है। जब तक उसकी समस्याएँ हल हल नहीं होती, आन्दोलन से न तो सुखद समाज की स्थापना हो सकती है, और न राष्ट्रीय उत्थान ही हो सकता है। माम-जीवन में जहाँ ऋण और शोषण की समस्या सामन्तवाद का कारण है, वहाँ शहरों में श्रमिक एवं मध्य वर्ग का शोषण सामन्तवाद को पीछे उकेलता हुआ पूँजीवाद बढ़ा रहा है। सामन्तवाद ही भारतीय राष्ट्रीय जीवन के प्रतिनिधि होरी को ठोकरें देता हुआ और अपने शोषण की चक्की में पीसता हुआ इतना जर्जर कर देता है कि वह करुण मृत्यु को प्राप्त होता है। होरी की मृत्यु सामन्तवाद और पूँजीवाद की मृत्यु का प्रतीक है और इसके पश्चात् ही राष्ट्रीय उत्थान हो सकेगा, यही सन्देश प्रेमचन्द वे 'गोदान' में दिया है। 'गोदान' में किसान की कारुणिक दशा। पुरोहित वर्ग का पाखण्ड, भीषण शोषण-चक्र आदि का ऐसा सजीव और यथार्थ चित्र अंकित किया गया है जो इन सबको जन्म देने वाली वर्तमान विकृत समाज व्यवस्था का उन्मूलन करने के लिए प्रेरित करता है।

नारी और पुरुष सम्बन्ध 'गोदान' में मानव-चरित्र का जो विशाल पुट है, उसमें नारी की स्थिति तथा स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के विविध रूप चित्रित किये गये हैं। धनिया और होरी के रूप में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध त्याग, बलिदान एवं निस्वार्थ प्रेम का रूप प्रस्तुत करता है। दोनों कंधे से कंधा मिलाकर जीवन-संघर्ष में चलते हैं। धनिया होरी पर झल्लाती है। होरी उसे पीटता भी है, परन्तु दोनों के सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं आता। धनिया होरी के सीधेपन पर इधर झल्लाती है और उधर उसकी विवशता को समझकर उसका मन करुणा से भर जाता है। होरी बीस रुपये की ईख बेचकर महाजनों को दे देता है और खाली हाथ घर आता है, धनिया झल्लाती हुई कहती है- "तुम जैसा धाकड़ आदमी भगवान् ने क्यों रचा।..... उठा कर सारे रुपये अपने बहनोइयों को दे दिये।" परन्तु यह कहते-कहते वह मुस्करा पड़ी। इतनी देर में उसकी समझ में यह बात आने लगी कि महाजन जब सिर पर सवार हो जाय और अपने हाथ में रुपये हों और महाजन जानता हो कि उसके पास रुपये हैं तो आसामी कैसे अपनी जान बचा सकता है।"

'गोदान' में गोवर-झुनिया, मातादीन-सिलिया और मालती-मेहता के प्रेम में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का जो रूप मिलता है, वह धनिया और होरी के सम्बन्ध में सर्वथा भिन्न है। गोबर विधवा झुनिया से विवाह करता है। इसके पीछे पंचायत और धर्म एवं समाज के ठेकेदार होरी को दण्डित करते हैं। होरो की फसल और बैल तक बिक जाते हैं। वह दाने-दाने को मुँहताज हो जाता है। धनिया, होरी और गोबर इन धर्म के ठेकेदारों से संघर्ष करते हुए झुनिया को ग्रहण करते हैं। इस रूप में प्रेमचन्द विधवा विवाह का समर्थन करते हैं। गोबर और झुनिया के प्रेम में बासना की गन्ध नहीं है। वह सात्विकी भावों से प्रेरित है। मालती-मेहता में बौद्धिक आकर्षण मे उत्पन्न प्रेम है। मालती मेहता से अपने प्रेम के विषय में कहती है- "तुम जानते हो, तुमसे ज्यादा निकट संसार में मेरा कोई दूसरा नहीं है, मैंने बहुत दिन हुए अपने को तुम्हारे चरणों में अर्पित कर दिया। । तुम मेरे पथ प्रदर्शक हो, मेरे गुरु हो।

तमारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यह वरदान मेरे जोवन को सार्थक कर देने के लिए काफी है। यही मेरी पूर्णता है।" इस प्रकार मालती और मेहता का प्रेम भी सात्विक भावनाओं से प्रेरित है। मातादीन और सिलिया का प्रेम आरम्भ में अवश्य वासनात्मक रहता है, परन्तु अन्त में पूर्णतः सात्विक प्रेम का रूप धारण कर लेता है।

'गोदान' में प्रेम के अन्य रूप भी मिलते हैं। नोखराम और नोहरी का प्रेम सामाजिक स्वीकृति पाकर भी सात्विक रूप ग्रहण नहीं करता। वृद्ध भोला की दुर्गति के रूप में प्रेमचन्द वृद्ध और अनमेल विवाह का दुःखद परिणाम सामने लाते हैं। खन्ना और गोविन्दी के सम्बन्ध में नारी की विवशतापूर्ण घुटन का चित्र सामने आता है। इसमें पूँजीवादी समाज में नारी के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार 'गोदान' में प्रेमचन्द ने स्त्री-पुरुष के अनेक सम्बन्धों को दिखाकर तत्सम्बन्धी समस्याओं को उभारा है।

सामूहिक परिवार समस्या-वर्तमान युग में संयुक्त परिवार का विघटन आरम्भ हो गया है। होरी जिन भाइयों का पालन बच्चों की तरह करता है, वे उससे अलग हो जाते हैं. उनका पुत्र गोबर परिवार से टूटकर शहर पलायन करता है। होरी के भोला के प्रति निम्न कथन में सामूहिक परिवार के टूटने की व्यथा से उसका प्रत्येक शब्द भरा हुआ है- "कुछ न पूछो दादा, यही जी चाहता था कि कहीं जाके डूब मरूँ। मेरे जीते जी सब कुछ हो गया। जिनके पीछे अपनी जवानी धूल में मिला दी, वही मेरे मुद्दई हो गए।" तत्कालीन जीवन का द्रपण 'गोदान' में त्कालीन भारतीय जीवन को समग्र रूप मे देखा जा सकता है। इसमें तत्कालीन ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की समस्त समस्याओं और परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण मिलेगा। कृषक जीवन को चारों ओर से विषम समस्याओं ने जकड़ रखा है और शोषक समूह की प्रबल शक्ति ने उसे पूर्ण रूप से आक्रान्त कर रखा है। वह कर्ज के भार से इतना दबा हुआ है कि निरन्तर ब्याज चुकाने पर भी मूलधन में कमी नहीं होती, भारतीय ग्रामीण समाज को भाग्यवाद और कर्मफल के सिद्धान्त जकड़े हुए है। साथ ही अनेक सामाजिक, धार्मिक आदि समस्याएँ उनके सामने सुरसा के समान मुँह फैलाए हुए खड़ी हुई हैं, उपन्यासकार इन समस्याओं पर करारा व्यंग्य करता है। गोबर-झुनिया और मातदीन- सिलिया की कथाओं पर तुलनात्मक दृष्टि डालने से धर्म और समाज के ढोंगी ठेकेदारों की कलई खुल जाती है। गोबर का झुनिया से सात्विक सम्बन्ध जैसे गाँव की बहू-बेटियों को इज्जत पर डाका डाल देता है, परन्तु पण्डित मातादीन का सिलिया से अनैतिक और वासनात्मक सम्बन्ध किचित भी हलचल पैदा नहीं करता। इन दोनों कथाओं के माध्यम से समाज की नैतिकता पर कितना करारा व्यंग्य सामने आ जाता है।

'गोदान' में प्रेमचन्द जनता के शोषकों को बदलते हुए पैतरों से सावधान करते है। जमींदार और पूँजीपति वर्ग अब यह समझने लगा था कि अब पुरानी दमन एवं अत्याचार की नीति से काम नहीं चल सकता। अब यह मीठा बनकर किसान-मजदूरों का शोषण करने लगा है। बाह अपने शोषण के रूप की यथार्थता को छिपाने के लिए स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने लगा था, रायसाहब ऐसे ही वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे लोगों का भण्डाफोड़ 'गोदान' में निम्न प्रकार से किया गया है-

"पितले सत्याग्रह संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौशिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये। तब उनके इलाके के आसामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गयी थी। लेकिन रायसाहब हुक्कामों से भी मेल-जोल बनाये रखते थे।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'गोदान' तत्कालीन भारतीय समाज का दर्पण है।

5.7 "होरी' भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि चरित्र

उत्तर- कथानक का नायक और भारतीय कृषक जनता का प्रतिनिधि-होरी भारतीय कृषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ समस्त गुण-दोषों को लेकर सामने आता है। वह एक भोला-भाला, सीधा-सादा और छल-छन्द रहित किसान है। वह मन, वचन, कर्म से एक है। मानव मात्र के लिए सहानुभूति, स्वकीय बन्धु बान्धवों के प्रति विश्वास और प्रेम उसके चरित्र की ऐसी विशेषताएँ हैं जो पाठकों को आकर्षित आकर्षित करती हैं। अनेक कष्ट सहने और आपत्तियों से भिरा होने पर भी होरी आत्म-सम्मान की भावना नहीं छोड़ता। होरी 'गोदान' का नायक है वह कथा-साहित्य का अमर पात्र है, 'गोदान' का आद्यान्त कथानक उसी की जीवन-गाथा बन गया है। उसका चरित्र इतना स्वाभाविक, सजीव और करुण है कि पाठकों के लिए वह जीवित सत्ता बन गया है। उसकी कारुणिक मृत्यु पर पाठकों की

आँखें गीली हो जाती हैं। उपन्यासकार अपनी कृति में किसी-न-किसी पात्र के रूप में अपना व्यक्तित्व रखता है। होरी की तरह प्रेमचन्द का व्यक्तित्व भी भीषण संघर्षों से भरा हुआ था। परन्तु प्रेमचन्द बुद्धिजीवी थे, अतः उनके व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व होरी नहीं अपितु होरी-मेहता के समन्वय में हो सकता है।

'गोदान' के किसी एक पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधित्व नहीं कहा जा सकता, लेकिन अगर होरी को मेहता से जोड़ा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत कुछ प्रेमचन्द से मिलता- जुलता होगा। मेहता में यदि उन्होंने अपने विचार ढाले हैं, तो होरी में उनके बराबर परिश्रम करते रहने की दृढ़ शक्ति है।

'गोदान' होरी कृषक के भागीरथ परिश्रम की गाथा और कृषक जीवन के संघर्ष का महाकाव्य बन गया है। होरी पाँच बीघे का कृषक है, उसकी आय अल्प और परिवार बड़ा है। जी-तोड़ परिश्रम करने पर भी उसे और उसके परिवार को दो वक्त का खाना नहीं मिलता, वह कर्ज के महासागर में आकण्ड डूबा हुआ है। साहूकार, पटवारी, पंचायत, धर्म के ठेकेदार, कारिन्दा, दरोगा आदि की आततायी फौज चारों ओर से उस पर आक्रमण करती है। होरी भाग्यवादी किसान है। वह घर और समाज की परम्परा से चली आती मर्यादा की रक्षा के लिए, अपने भाई हीरा को पुलिस के चक्र से बचाने के लिए कर्ज लेता है और झुनिया को आश्रय देने में पंचायत का भारो दण्ड स्वीकार करता है। ये विषम परिस्थितियों उसे दाने दाने के लिए मुंहताज कर देती है। विवशता उसे मजदूर तक बना देती है। एक भारतीय कृषक वर्ग के समस्त गुण और अवगुण होरी के चरित्र में मिलते हैं। वह परिस्थितियों से जीवनभर संघर्ष करता हुआ है। उसको कारुणिक मृत्यु करुणा की ऐसी कादम्बिनी छा देती है कि पाठकों के से हुए बिना नहीं रहते। होरी के जीवन का संघर्ष विपत्तियाँ और अन्त में करुण मृत्यु कृषकवर्ग की सच्ची गया है। होरी की मृत्यु कारुणिक वातावरण में यह आशामय देश देती है कि होरी को मृत्यु के लिए उत्तरदायी समाज-व्यवस्था की भी मृत्यु निश्चित है। होदी के चरित्र का विश्लेषण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है-

चारित्र में यथार्थता-होरी उपन्यास की कल्पना की सृष्टि न होकर यथार्य पात्र है। वह और जोवन पात्र है वह अवध के बेलारी गाँव का दीन कृषक है। जीवनभर कमर तोड़ श्रम करने पर भी उसे और उसके परिवार को पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाता। उसके व्यक्तित्व के रूप में भारत का दीन-हीन किसान मूर्तिमान हो जाता है। संघर्ष और श्रम करते हुए चालीस की आयु में ही उसका शरीर इतना अधिक टूट गया है कि धनिया उसके स्वास्थ्य से चिन्तित होकर कहती है- "जाकर शीशे में मुँह देखो, तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अन्जन लगाने

एक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दशा देखकर तो मैं सूखो जाती हूँ कि भगवान् यह बुढ़ापा कैसे कटेगा ? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे ?" होरी उत्तर देता है- "साठे तक पहुँचने की नौबत न आ पायेगी धनिया। इसके पहले

ही चल देंगे।" धर्मभीरु और भाग्यवादी - भारतीय भाग्यवादी किसानों की तरह ही होरी भाग्यवादी

है और कर्मवाद में विश्वास रखता है। वह अपनी दयनीय स्थिति का कारण भाग्य को ही मानता है। उसका विश्वास है कि दरिद्रता का अभिशाप वह पूर्व-जन्म के किसी पाप के कारण ही भोग रहा है। वह दातादीन जैसे पाखण्डी ब्राह्मण को भी पूज्य मानता है। वह इतना अधिक धर्म-भीरु है कि बिना लिखा-पढ़ी के लिए हुए रुपयों को चुकाना अपना धर्म समझता है। यदि ब्राह्मण की वह एक पाई भी रख लेगा तो वह उसकी हड्डियों को फोड़कर निकलेगी। वह दातादीन को पाई भी चुकाने की प्रतिज्ञा करता है। होरी की कर्मवाद और भाग्यवाद में पूरी आस्था है। व्यवहार-कुशलता-होरी व्यवहार कुशल है। वह परिस्थितियों के अनुसार काम करता है और इसीलिए रायसाहब के यहाँ बराबर आता-जाता रहता है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए वह उनकी खुशामद और मिलते-जुलते रहने से लाभ के सम्बन्ध में सोचता है-

"मालिकों से मिलते-जुलते रहने का ही तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं। नहीं तो उसे कौन पूछता? पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या ? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महतो भी उसको सामने सिर झुकाते हैं।"

सरलता और सीधापन-होरी को चालाक और बेईमान नहीं कहा जा सकता परन्तु परिस्थितियों उसे चालाकी के काम करने के लिए विवश कर देती है। वह दरिद्रता में कुछ ऐसे काम करता है, जिनके लिए उसे पश्चाताप होता है। होरी प्रकृति से निश्छल है। वह छल-छन्द से दूर रहने वाला है। परन्तु दरिद्रताजनित विवशता उसे झूठ बोलने और झाँसा देने के लिए विवश कर देती है। वह घर के द्वार पर गाय बाँधने की अभिलाषा संजोए हुए है, परन्तु आर्थिक तंगी इतनी अधिक है कि गाय कहाँ से ली जाय। भोला की गाय पर उसका मन ललचा उठता है। वह उसका ब्याह कराने का झाँसा देता है और गाय प्राप्त कर लेता है परन्तु गाय के रूपये न देने को बेईमानी उसके मन में नहीं आती। रुपये होते ही वह भोला को दे देगा। होरी की स्वार्थी प्रकृति की एक घटना सामने आती है। वह बाँस बेचने में भाई के साथ पाँच रुपये की बेईमानी करता है, परन्तु इस कृत्य से उसे ग्लानि होती है। होरी रूपा के विवाह के बदले वर पक्ष से दो सौ रुपये लेता है, परन्तु इस रकम को बस ऋण समझकर लेता है। उसको आत्मा हाहाकर कर उठती है। इस प्रकार के कार्य करते हुए भी उसकी आत्मा सचेत रहती है।

भ्रातृ-प्रेम और परिवार प्रेम होरी में भ्रातृ-प्रेम की उदात्त भावना आद्यान्त मिलती है। किसी भी खुशी का अवसर आने पर धनिया के विरोध करने पर भी वह भाइयों से मिल लेता है। यह गाय लाया है, उसकी हार्दिक इच्छा है कि भाई आकर उसकी गाय देखें। हीरा के भाग जाने पर होरी बहुत दुःखी होता है और उसकी गृहस्थी का सारा भार अपने ऊपर ले लेता है। दरोगा गाय की तहकीकात के लिए आता है। हीरा ने उसकी गाय को जहर दिया है। होरी दरोगा को रिश्वत देकर भी भाई को बचाना चाहता है। वह नहीं चाहता कि पुलिस घर की तलाशी ले, क्योंकि पुलिस की तलाशी की वह सम्मान के विरुद्ध समझता है। वह दरोगा के सामने बयान देता हुए कहता है- "मेरा सुबहा किसी पर नहीं है। सरकार, गाय अपनी मौत से मरी है। बुड्डी हो गयी थी।" होरी के चरित्र की यह सबसे बड़ी महानता है कि वह स्वयं दुःखी रहकर भी दूसरे का दुःख सहन नहीं कर पाता।

दरिद्रता-होरी अभागा, दरिद्र किसान है, वह कमरतोड़ परिश्रम करने पर भी अपने जीवन की किसी भी अभिलाषा को पूरा नहीं कर पाता। होरी की दीनता और दरिद्रता हृदय विदारक है। मानवता-प्रेम-होरी सच्चा मानव है। वह ईमानदार और कठोर परिश्रमी होते हुए भी जीवन भर संघर्ष और शोषण की चक्की में पीसता रहता है। उसका हृदय मानव मात्र के प्रति सहानुभूति और सहृदयता से भरा हुआ है। झुनिया को घर में रख लेने के कारण होरी को अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है, परन्तु वह उसे घर से निकालने को तैयार नहीं होता। वह विषम परिस्थितियों में निरन्तर फँसता चला जाता है, जिनमें घुट-घुटकर दम तोड़ता है, परन्तु मानवता का आँचल वह कभी नहीं छोड़ता। मानवता के ये उदात्त गुण ही उसकी जीवन-गाथा को अमर बना देते हैं। इस प्रकार होरी 'गोदान' के कथानक का नायक मात्र न रहकर भारत की समस्त कृषक-संस्कृति का प्रतिनिधि अमर पात्र बन जाता है।

5.8 'गोदान' उपन्यास में निहित प्रेमचन्द के उद्देश्य और संदेश

युग जीवन को उद्वेलित करने वाली समस्याओं का चित्रण 'गोदान' में युग जीवन को उद्वेलित करने वाली विविध समस्याओं का चित्रण करना प्रेमचन्द का मुख्य उद्देश्य था। जीवन के कुछ अनुभवों से प्रेमचन्द इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सामन्त एवं पूँजीवादी दोनों प्रकार के शोषण से मुक्ति मिलने पर ही भारतीय जनता का उद्धार हो सकता है। इसलिए 'गोदान' में उन्होंने एक साथ सामन्ती और पूँजीवादी शोषण की प्रतारणाओं का चित्रण किया है। प्रतारणाओं का अन्त होने पर ही समानता के आधार पर जो वर्ग-हीन समाज स्थापित होगा, उसमें ही होरी का स्वप्न साकार होगा और सभी सुखी होंगे।

'गोदान' में युग-संस्कृति का एक समग्र और समवेत चित्र उपस्थित हुआ है। सन् 1935 म राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली बार श्रमिकों और कृषकों की संगठित शक्ति को मान्यता प्रदान की। देश में श्रमिक और कृषक आन्दोलन के अंग होते हुए पृथक् स्वतन्त्र और संगठित अस्तित्व बन गये। अस्तित्व के प्रभाव में वर्ग-वैषम्य को समाप्त कर वर्ग-हीन समाज की स्थापना की चेतना स्पष्ट हो चली थी। भविष्य श्रमिक वर्ग की संगठित शक्ति के हाथ में होगा। सन् 1936 में प्रेमवन्द ने प्रगतिशील आन्दोलन की अगुआई की। उनकी इसी पृष्ठभूमि में 'गोदान' की रचना हुई। इसमें उन्होंने सन्देश दिया कि हमारा भविष्य उज्जवल है। होरी का युग समाप्त होगा और गोबर का युग आयेगा।

'गोदान' में प्रेमचन्द अपने सम्पूर्ण पूर्वाग्रहों का मोह त्यागकर तटस्थ कलाकार के रूप उपस्थित है। उन्होंने 'गोदान' में आदर्श का मोह छोड़ दिया और समाज का यथार्थ रूप सामने रखा। जीवन भर संघर्ष करते हुए होरी की दयनीय मृत्यु दिखाकर प्रेमचन्द समाज के सामने यह मूक प्रश्न उपस्थित कर देते हैं कि यह व्यवस्था कब तक चलेगी। साथ ही गोबर के विद्रोह के रूप में यह सन्देश भी देते हैं कि यह व्यवस्था अधिक दिन चलने की नहीं है; यह तो टूटकर ही रहेगी। विश्वम्भर मानव के शब्दों में 'गोदान' का लक्ष्य और उद्देश्य निम्न प्रकार है-

"किसी प्रकार अपनी परिस्थितियाँ और संस्कारों से पिसता हुआ वह दरिद्र प्राण (होरी- किसान) करुण मृत्यु प्राप्त करता है, जिस प्रकार सभी का पेट भरता हुआ वह स्वयं अपने जीवन की किसी सामान्य इच्छा को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है, यह सब कुछ दिखाना 'गोदान' का लक्ष्य है।"

'गोदान' भारत में अबाध चल रहे शोषण-चक्र का यथार्थ रूप सामने रख देता है। इसमे भारतीय जनता का दुःख दरिद्रता और पीढ़ा स्पष्ट हो जाती है और साथ ही पीढ़ी और दुःख- दरिद्रता के मूल स्त्रोत स्त्रोत भी सामने आ जाते हैं, पाठकों के समक्ष पतनोन्मुख रूढ़िवादी हिन्दू- समाज के चरमराते हुए ढाँचे का यथार्थ रूप सामने आ जाता है।

'गोदान' वर्ग में तीन वर्ग हैं। पहला कृषक वर्ग है। यह वर्ग सर्वाधिक दुःखी, पीड़ित, शोषित और निराश है। होरी इसका प्रतिनिधित्व करता है। दूसरा वर्ग मालती-मेहता जैसे लोगों का है। इसे मध्यम वर्ग कह सकते हैं। हैं। इस वर्ग की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। मेहता अपने लिए अचकन तक नहीं सिलवा पाते। उनके ऊपर मकान किराये की डिग्री तक हो जाती है। तीसरा वर्ग शोषकों का है, इनका प्रतिनिधित्व रायसाहब और खन्ना आदि करते हैं। इस शोषक वर्ग की करतूतों का 'गोदान' में भंडाफोड़ हुआ है। रायसाहब सर्वाधिक शोषक है। वे ऊपर से मीठी बातें करते हैं, किन्तु यथार्थ में वे हिस्न पशु हैं। मेहता ने रायसाहब की पोल खोल कर उनकी यथार्थ स्थिति पाठकों के सामने रख दी है-

"मानता हूँ आपका व्यवहार अपने आसामियों के साथ अत्यन्त नरम है। पर यह तो इसलिाए कि मद्धिम आग में भोजन और भी स्वादिष्ट पकता है।"

'गोदान' में प्रेमचन्द ने ऐसे ही शोषकों का भंडाफोड़ किया है। इसमें पूँजीवादी शोषण का यथार्थ चित्र सामने आ जाता है।

दरिद्रता और भुखमरी का यथार्थ चित्र- 'गोदान' का कचानक यह स्पष्ट करता है कि दरिद्रता और भुखमरी की समस्या आज भारतीय समाज को दीमक की तरह नष्ट कर रही है। कर्ज ने भारतीय कृषक जीवन को खोखला कर दिया। पूँजीपति, मिल-मालिक किसान की फसल कौड़ियों में खरीद लेते हैं और वह अल्प धन भी गाँव के साहूकारों के कारण गरीब किस्तनों के हाथ में नहीं पहुंचने पाता। आर्थिक तंगी और दरिद्रता के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। गोबर इस स्थिति से क्षुब्द होकर ही शहर को पलायन करता है। धन का असमान वितरण भारतीय समाज के लिए अभिशाप हो रहा है। शोषण की चक्की में निरन्तर पिसते रहने के कारण होरी जिस समाज का प्रतिनिधित्व करता है, उसकी आयु आधी ही रह गई है। होरी स्पष्ट कड़ता है कि उसकी साठे तक पहुँचने की नौबत तक नहीं आयेगी और होता भी ऐसा ही है।

निष्कर्ष-उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'गोदान' युग-जीवन का यथार्थ चित्र लेकर सामने आता है। प्रेमचन्द शोषण के अबाध चक्र को प्रस्तुत कर उसके प्रति जन-जीवन को मरावधान करते हैं और अन्त में वर्ग-हीन समाजवादी समाज की स्थापना का सन्देश देते हुए शांति और सच्चे सुख के आने की मंगल सम्भावना व्यक्त करते हैं। यही 'गौदान' में प्रेमचन्द का उद्देश्य और उनका शाश्वत सन्देश है।

5.8 आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के सन्दर्भ में 'गोदान' की समीक्षा

आदर्श और यथार्थ- साहित्य में मानव जीवन और समाज का चित्रण होता है। जब साहित्यकार मानव-जीवन और समाज का आँखों देखा सच्चा चित्रण करता है, तब उसे यथार्थवादी चित्रण कहा जाता है और जब वह आँखों देखे रूप को अपनी कला और कल्पना में संस्कृत कर मानवमात्र के हितकारी रूप में उसे अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है, तब उसे आदर्शवादी चित्रण कहा जाता है। यथार्थ

चित्रण में प्रायः समानता होती है, है, परन्तु साहित्यकारों के आदर्श में अन्तर होने के कारण आदर्शवादी चित्रण में प्रायः भिन्नता रहती है। है। प्रेमचन्द ने मानव-जीवन और मानव-समाज की व्याख्या उपर्युक्त दोनों रूपों में की है, परन्तु उनके यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों ही प्रकार के चित्रण में संयंत्र है। उन्हें "अमंगल यथार्थ अग्राह्य है, मंगलमय यथार्थ संग्रहणीय है।" उनके 'गोदान' में अमंगल यथार्थ का ही रूप मिलता है।

यथार्थ की कुरूपता को मिटाकर उसे उन्होंने मानव-कल्याणकारी रूप में रखा है। प्रेमचन्द की दृष्टि में यथार्थवाद और आदर्शवाद- प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों तथा उपन्यासकला के विवेचन में स्थान-स्थान पर यथार्थवाद और आदर्शवाद के स्वरूप को स्पष्ट किया है। प्रेमचन्द यथार्थ और आदर्श का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

यचार्थवादी चरित्रों को लेखक (पाठक) के सामने यथार्थ के रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं है कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं।..... यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमें निराशावादी बना देता है। मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। आदर्शवाद हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ की वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार- कुशल नहीं होते हैं, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है।" को महत्व देते हैं-

प्रेमचन्द यथार्थवाद और आदर्शवाद को स्पष्ट करते हुए साहित्य में दोनों के समन्वय

"यथार्थवाद हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को चित्रित न कर बैठे, जो सिद्धान्तों के मूर्तिमान रूप हों-जिनमें जीवन्त न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण-प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।

इसलिए वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ आदर्श और यथार्थ का समन्वय हो गया हो, उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।"

प्रेमचन्द के उपन्यासों में आदर्शवाद यथार्थ की भूमि पर आधारित है। उन्होंने पहले यथार्थ का चित्रण करते हुए वास्तविक स्थिति की विषमता का उद्घाटन किया है, फिर उन्होने यथार्थ और आदर्श की स्थापनको है। गोदान में समाज के कार्य का चित्रण करते हैं। उन्होंने 'गोदान' में अन्य आदर्श की विफलता का चित्रण किया है।

प्रेमचन्दन से पूर्ण रूप से याद रहे और आदर्शवादीही स्वयं को आसन्मुख पथार्थवादी मानते थे। यह बात दूसरी है कि उनको अपने इस समन्वित आदर्श में सफलता नहीं मिली 'कर्मभूमि' तक प्रेमचन्द यथार्थवादी पृभूमि प्रस्तुत करते हैं, किन्तु निष्कर्ष आदर्शवादी देते हैं। पान्तु अपने इस निष्कर्ष में सफलता न देखकर ये वर्तमान व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक मानते है। 'गोदान' में समाज को वर्तमान दुर्दशा का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करके वे यह तथ्य उपस्थित कर देते हैं कि वर्तमान समाज की वैषम्य एवं शोषण में मुक्त ऐसी दयनीय स्थिति है, जिसमे होरी जैसा कर्मक्सकन पहुँचकर कारुणिक मृत्यु प्राप्त करता है। 'गोदान' में प्रेमचन्द आदशोन्मुख यथार्थवाद के सम्बन्ध में अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ते हुए देखे जाते हैं। वे हमारे समाज का यथार्थ कच्चा बिट्ठा सामने रखकर अन्याय और अत्याचार का डटकर विरोध कर समतामूलक ऐसे समाज की स्थापना का सन्देश देते हैं, जिसमें शोषण का अबाध चक्र न चालता हो। प्रेमचन्द 'गोदान' में यही कहते हैं कि तुम्हारी असली स्थिति यह है कि, जिसका निर्मूलन करके ही तुमको सच्चा सुख और शान्ति मिल सकती है।

'गोदान' के यथार्थवाद को मयादित उदात्त यथार्थवाद की संज्ञा दी जा सकती है। उनका यथार्थ चित्रण यथार्थवाद के नाम पर पाठकों में कुत्सा और कुरुचि उत्पन्न नहीं करता, वह पाठको के हृदय पर मार्मिक गहरा प्रभाव डालता है। 'गोदान' के पात्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें व्यक्ति और वर्ग की विशेषताओं का ऐसा समन्वय हुआ है कि उनका व्यक्तित्व सजीव हो उठा है। 'गोदान' में प्रेमचन्द

समस्याओं का आदर्शवादी हल नहीं खोजते, वे यथार्थ का ऐसा सशक्त, सजीव और कारुणिक चित्र प्रस्तुत कर देते हैं कि पाठक दयनीय स्थिति का उन्मूलन कर उससे प्राण पाने की प्रेरणा लेता है

'गोदान' में यथार्थ है, उसमें आदर्श का रूप कहीं नहीं हो पाया है। प्रेमचन्द ने जहाँ भी आदर्श और यथार्थ का समन्वय किया वहाँ उनकी कला धूमिल हो गई प्रेमचन्द का आदर्शवाद उनकी कृतियों के एक ही पहलू को बिगाड़ता है-वह है समस्या से सुन्दर परिणाम निकालने वाला, परन्तु उनके अन्तर में बसा हुआ यथार्थवाद समस्या की जटिलता चित्रित करने में बहुत कम मेल- मुलाहिजा करता है, जहाँ उनका आदर्शवाद दब गया है और उन्होंने बरबस परिणाम को ढूंढने का प्रयत्न नहीं किया, समस्या को सामने रखकर सन्तोष कर लिया है, वहीं वे अद्वितीय है।

'गोदान' प्रेमचन्द की उपन्यास-कला का चरमोत्कर्ष है। इसमें पूर्वाग्रह छोड़कर वे आदशोंन्मुखों यथार्थवादी की भूमि पर आ गए हैं। यथार्थ, अव्यावहारिक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी की विफलता देखकर वे 'गोदान' में यथार्थवादी हो गये। अतः उनकी मान्यता और कला का विकास दृष्टि में रखने से 'गोदान' के सम्बन्ध में प्रेमचन्द की यह मान्यता यहाँ अप्रभावी हो जाती है कि, उपन्यास वे ही उ उच्च कोटि के समझे जाते है, जिनमें यथार्थ और आदर्श का पूर्ण सामंजस्य हो।"

निष्कर्ष-उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोदान यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें उन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण की असफलता का अनुभव किया, वे आदर्शवाद का मोह त्यागकर समाज का यथार्थ विवरण सामने रख देते हैं। साथ ही यह संकेत देते हैं कि वर्तमान सड़ी-गली और दोषपूर्ण व्यवस्था में सुधार सम्भव नहीं है, इसे तो समूल हटाना ही है, इसके नाह होने पर हो नए सिर से मंगलमय नव-निर्माण हो सकता है। विचारक मेहता के रूप में आदर्शवाद को कुछ झलक अवश्य आ जाती है, परन्तु यह झलक आदर्शवाद की अव्यावहारिक और पराजय ही को सूचित करती है। जीवन भर कर्मठ रहकर और संघर्ष करता होरी दयनीय और कारुणिक स्थिति में दम तोड़ देता है। यह आदर्शवाद का दम तोड़ता है। अतः 'गोदान' पूर्ण रूप से यथार्थवादी उपन्यास है, उसमें भारतीय समाज की तत्कालीन स्थिति का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत हुआ है।

1. संकेत

"जिसे संसार दुःख कहता है, वह कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि-ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है। उसके मोह और आकर्षक की वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन उन विभूतियों से उसका प्रेम न रहेगा; उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लेय हो जाता है।"

सन्दर्भ-यहाँ डॉ. मेहता का कथन गोविन्दी के प्रति है। डॉ. मेहता गोविन्दी में आदर्श नारी के समस्त गुण देखते हैं। वे उनके प्रशंसक है। गोविन्दी उनसे अपनी प्रशंसा सुनकर कहती है कि आपको तो दार्शनिक के स्थान पर कवि होना चाहिए था। डॉ. मेहता दर्शन को कविता तक पहुंचाने के बीच की मंजिल मानते हुए कवि की स्थिति और दृष्टिकोण की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि कवि वही है जो बुझी हुई आशाओं, मिटी हुई स्मृतियों और टूटे हुए हृदय के अनुओं से प्रेम करता है और उसकी दृष्टि में ये विभूतियाँ हैं।

व्याख्या-कवि को वेदना में ही सुख मिलता है। कवि के लिए संसार का दुःख, सुख बन जाता है। कवि की गति संसार के अन्य व्यक्तियों से भिन्न होती है। अन्य जनों को वहाँ जहाँ धन, बल, ऐश्वर्य, रूप, विद्या और बुद्धि की विभूतियाँ मोहित करती हैं, उनके प्रति कवि को किचित भी आकर्षण नहीं होता, उसे संसार के भौतिक सुखों से विरक्ति होती है। उसका हृदय तो वेदना और करुणा से ओत-प्रोत होता है, अतः वह वेदना और करुणा को देखकर आकर्षित होता है व उसका हृदय आनन्द से नाच उठता है। भग्न आशायें, मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू उसकी प्रसन्नता का आलम्बन होते हैं। उसकी कविता का आधार वे संवेदनात्मक और कारुणिक विभूतियाँ ही होती हैं। जिस दिन इनसे उसका प्रेम नहीं रहेगा उस दिन वह कवि भी न रह सकेगा। उसकी कविता का स्फुरण, करुणा, वेदना और दुःख से ही होता है। दर्शन जीवन के वेदनात्मक, करुणा एवं दुःखपूर्ण पक्ष का उद्घाटन करता है, वह तटस्थ-सा बना रहकर इनसे विनोद

मात्र करता रहता है। दार्शनिक दुःख वेदना आदि की मीमांसा करता है, वह उससे प्रभावित नहीं होता, परन्तु कवि इनकी अनुभूतियों में निमग्न होकर कविता में प्रस्तुत कर देता है। जहाँ दार्शनिक का विश्लेषण दूसरों को प्रभावित नहीं करता, यहाँ कवि अपनी कविता के द्वारा इन अनुभूतियों के सम्बन्ध में अनुभूति जाग्रत करने में सफल होता है।

विशेष-उपन्यासकार ने यहाँ निम्नलिखित दो तथ्यों को स्पष्ट किया है-

1. कविता दार्शनिक तत्व की अनुभूतिमय अभिव्यक्ति है। अतः दर्शन को कविता के बीच की मंजिल कहना उपयुक्त है।

2. कविता का मूल स्रोत वेदना है।

2. संकेत "मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ..... जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है, जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है।... ज्ञानी कहता है, ओठों पर मुस्कराहट न आये, आँखों से आँसू न आये, मैं कहता हूँ, अगर तुम हँस नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू है।"

सन्दर्भ इस गद्यांश में डॉ. मेहता का कथन गोविन्दी के प्रति है। वे अपने जीवन का आदर्श करते हुए कहते हैं-

व्याख्या-मै प्रकृति का पुजारी हूँ इसलिए मनुष्य की बनावट और उसके ढंग से मुझे घृणा है। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य अपने इस प्राकृतिक रूप में रहे, जो प्रसन्नता में हँसे और दुःखों होने पर रुदन करे एवं क्रोध करने पर क्रोध के आलम्बन को मार डाले। दुःख और सुख का दमन करने वाले मनुष्य अपने प्राकृतिक रूप में नहीं होते। ऐसे लोग रोने को दुर्बलता और हँसने को हल्कापन समझते हैं। इस प्रकार के प्राकृतिक लोगों से मेरी प्रकृति नहीं मिलती। मैं जोवन को आनन्दमय क्रीड़ा मानता हूँ। मेरी दृष्टि में सरल और प्राकृतिक जीवन में कुत्सा, ईष्यां और जलन के लिए कोई स्थान नहीं है। वह सर्वथा सरल और स्वच्छन्द है।

मैं वर्तमान को ही सब कुछ समझता हूँ, जो कुछ व्यतीत हो चुका है, उसकी मुझे चिन्ता नहीं होती और भविष्य की भी मैं परवाह नहीं करता। भविष्य सर्वथा अनिश्चित होता है। उसकी अनिश्चयजनित शंका हमें कायर बना देती है। भूतकाल में जो कुछ व्यतीत हो चुका है, उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है, उसको चिन्ता के भार से कमर तोड़ना कोई महत्व नहीं रखता। अतः मनुष्य के लिए वर्तमान ही सब कुछ होना चाहिए। उनके जीवन की शक्ति इतनी कम है कि उसको भूतकाल से लेकर भविष्यकाल तक फैला दिया जायेगा, तो वह और अधिक क्षीण हो जायेगी। वर्तमान में भूतकाल की रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के जाल में उलझने से मनुष्य की शक्ति क्षीण होती है और वह पस्तहिम्मत हो जाता है। मनुष्य की जो शक्ति मानव धर्म के उत्कर्ष, सहयोग, भाई-चारा, आदि के विकास में लगनी चाहिये वह बाप-दादों के ऋण के चुकाने एवं पुरानी अदावतों का बदला लेने में क्षीण हो जाती है।

मेहता आगे ईश्वर एवं मोक्ष का विवेचन करते हुए कहते हैं कि हमारे यहाँ ईश्वर और मोक्ष की जो मान्यता है, उस पर हँसी आये बिना नहीं रहती। हमारी उपासना व मोक्ष के अहंकार की आज पराकण्ठा हो गई है और उसके द्वारा मानवता नष्ट होती जा रही है। यथार्थ में ईश्वर जीवन, क्रीड़ा, जिन्दादिली और प्रेम है। जीवन को सुखी बनाना ही ईश्वर और सच्ची उपासना है। ज्ञानी ओठों पर मुस्कराहट और आँखों में आँसू न आने की बात कहता है, परन्तु मेरी दृष्टि से मनुष्य के लिये हँसना और रोना तो उसके ऐसे गुण हैं, जिनको पृथक नहीं किया जा सकता और यदि वह हँस नहीं सकता तो वह मनुष्य न होकर पत्थर है। इस प्रकार का ज्ञान जो मनुष्यता को ही पीसकर नष्ट कर दे, वह ज्ञान न होकर कोल्हू के समान विनाशक होता है।

विशेष-प्रेमचन्द ने मेहता के शब्दों में रूढ़ियों व अन्धविश्वासों का विरोध करते हुए ईश्वर की मोक्ष, ज्ञान और मानव जीवन की उपयोगितावादी दृष्टिकोण से यथार्थ व्याख्या की है। यहाँ मेहता के रूप में प्रेमचन्द का ही व्यक्तित्व सजीव हो उठा है।

3. संकेत- "अज्ञान की भाँति भी सरल, निष्कपट और सुनहले स्वप्न देखने वाला होता है कि वह इसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों को निरीहता का जवाब सदैव पंजों और दाँतों से दिया है। वह अपना एक

आदर्श संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबद्ध करता है और उसी में मग्न रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध, कितनी अप्राकृतिक है, उसकी ओर विचार करना उसके लिये मुश्किल हो जाता है।"

सन्दर्भ-यहाँ डॉ. मेहता का स्वागत कथन है। वे कुश्ती के जोड़ देख रहे हैं। वे सोचते है कि शहर के कहे जाने वाले निरीह गाँव के बालकों के साथ नृशंसता का व्यवहार क्यों करते है। इतना चिन्तन करने के साथ ही मेहता की दार्शनिक प्रवृत्ति, ज्ञान का विश्लेषण करने लगती है। अज्ञान की अवस्था में जहाँ मनुष्य में विचार करने की शक्ति नहीं रहती, वहाँ ज्ञान की स्थिति में वह यथार्थवाद को छोड़कर आदर्शवादी हो जाता है।

व्याख्या-अज्ञान की तरह ज्ञान में पड़ा हुआ मनुष्य भी यथार्थ स्थिति को नहीं समझ पाता और अयथार्थ सपनों में खोया रहता है। अज्ञानी के स्वप्न यथार्थ पर आधारित होते हैं, उनमें सरलता और निष्कपटता होती है। ज्ञानी पुरुष के स्वप्न भी इस प्रकार निष्कपट होते हैं। परन्तु उसके स्वप्न यथार्थ नहीं होते, वे आदर्श में खोए रहते हैं। वह आदर्शवाद के आग्रह से यथार्थ की विभीषिका से नेत्र मूँद लेता है। जहाँ वह अपने आदर्श के विरुद्ध कार्य होता देखता है, वहाँ उसे अमानवीय घोषित कर देता है। क्योंकि मानवता में उसकी ऐसी दृढ़ आस्था होती है जिसके कारण वह यथार्थ को सोच नहीं सकता। उसे आदर्श लोक में विचरण करते हुए यथार्थ की भीषणताएँ दिखाई ही नहीं पड़तीं। वह यह भी नहीं सोच पाता कि भेड़िया अपनी हिंसक प्रकृति के कारण भेड़ों की निरीहता पर रहम नहीं दिखायेगा। यह पंजों और दाँतों से चीरकर ही उनकी निरीहता का उत्तर देगा। यथार्थ का यह रूप आदर्शवादी मानवता से सर्वधा विपरीत पड़ता है। आदर्शवाद के मोह में डूबा हुआ आदर्शवादी यथार्थ के भीषण, अगम्य, प्राकृतिक रूप को समझ नहीं पाता। इसी प्रकार शोषक नागरिक जो भेड़ियों से कम नहीं है, वे गाँव वालों की निरीहता पर रहम खाने से रहे।

विशेष-प्रेमचन्द ने आदर्शवादी निष्कर्षों की असफलता देखकर 'गोदान' में यथार्थ को पूर्ण रूप से ग्रहण किया।

4. संकेत- "अब वह प्रेम की नहीं श्रद्धा की वस्तु थी। अब वह दुर्बल हो गयी थी और दुर्बलता मनस्वी आत्माओं के लिए उद्योग मन्त्र है। मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना कर रहे थे, उसे श्रद्धा ने और भी गहरा और स्फूर्तिमय बना दिया। प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ महत्व भी श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है, और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार करना चाहता है जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समर्पण, जिसमें अहमण्यता का ध्वंस हो जाता है।"

संदर्भ-प्रारम्भ की तितली मालती आदर्श सेवाव्रती नारी बन जाती है। पहले जहाँ डॉ. मेहता उससे दूर भागते थे, वे स्वयं उसकी ओर आकर्षित हैं। उनके सिर में भयंकर दर्द होता है, जो मालती के हाथ रखते ही दूर हो जाता है। मेहता उसे मालती की तपस्या और सेवा-व्रत का प्रभाव मानते हैं। मालती के प्रति उनकी श्रद्धा उमड़ पड़ती है।

व्याख्या-मेहता अब मालती से विवाह करने के लिए आतुर थे, परन्तु मालती के तपस्वी और सेवाव्रती रूप को देखकर समझ जाते हैं कि मालती अब प्रेम की वस्तु न रहकर श्रद्धा की वस्तु बन चुकी है। श्रद्धा में उद्देश्य को प्राप्त करने की कामना नहीं रहती। प्रेम और श्रद्धा में अन्तर है। प्रेमास्पद पर प्रेमी जहाँ अपना एकाधिकार चाहता है, वहाँ श्रद्धेय सबकी श्रद्धा का अधिकारी बन जाता है। वह अपने श्रद्धेय पर दूसरों की श्रद्धा देखकर प्रसन्न होता है। प्रेम व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होता है, परन्तु प्रेम जब श्रद्धा का रूप ग्रहण कर लेता है, तब उसमें सामाजिकता आ जाती है, मालती अब मेहता के लिए श्रद्धा की वस्तु बन गई है, अब उसके लिए प्रेम दुर्लभ है। मेहता मालती के प्रेम की प्राप्ति में जिस सुख की कल्पना करते थे, उसमें श्रद्धा भाव आ जाने पर अब उनमें स्फूर्ति का संचार हो गया था। श्रद्धा का चरम आनन्द समर्पण में होता है। श्रद्धा में अहं नहीं रहता। मेहता के हृदय में मालती के प्रति अब प्रेम का स्थान श्रद्धा ने ले लिया था।

विशेष-यहाँ मेहता की मनःस्थिति के विश्लेषण में श्रद्धा और प्रेम का अन्तर स्पष्ट किया गया है।

"विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग की वह तृण था, जिसे पकड़े हुए यह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो का देकर उसके हाथ में यह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यश्वार्थ के निकट होने के कारण ही उसमें इतनी बेदना-शक्ति आ गयी थी। काना कहने से काना को जो दुःख होता है, यह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है ?"

सन्दर्भ-होरी और धनिया मुसीबतों के थपेड़ों से जूझते हुए जीवन-संग्राम में आगे बढ़े जा रहे थे। होरी रायसाहब के यहाँ जाने को उद्यत है। धनिया उसके कपड़े लाकर सामने रख देती है। होगी विनोद करता हुआ कहता है कि क्या वह ससुराल जा रहा है, जो पाँचों पोशाक लाकर रख दी है। यह हास्य-विनोद से आरम्भ हुआ वार्तालाप आर्थिक विपन्नता से जर्जरित स्थिति के विश्लेषण पर पहुंच जाता है। होरी के मुख से निकल जाता है कि 'साठे' पर पहुँचने की नौबत नहीं आयेगी। होरी के यह शब्द धनिया के हृदय पर चोट करके उसे आतंक, शंका और भय से भर देते हैं। इस गद्यांश में होरी के चले जाने पर उपन्यासकार से धनिया के हृदय की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है।
व्याख्या-होरी का यह कथन है कि साठे तक पहुँचने की नौबत नहीं आयेगी, धनिया के हृदय में आतंकमय कंपन उत्पन्न कर देता है। वह अपने नारीत्व की सम्पूर्ण तपस्या और छत से पति की मंगल-कामना मनाती हुई उसे अभयदान देने लगती है। उसके हृदय से आशीर्वादो का निकलता हुआ ब्यूह होरी को अपने अन्दर छिपाये ले रहा था। उसका जीवन आर्थिक संकटग्रस्त था और विपन्नताओं से भरा हुआ था। इस जीवन संघर्ष के अथाह सागर में उसका गही एकमात्र आश्रय देने वाला तृण था, जिसका सहारा लेकर वह इस जीवन-संघर्ष के सागर को पार कर रही थी। होरी ने जो कुछ कहा था, वह यथार्थ था। होरी की आयु अभी चालीस की भी नहीं थी, परन्तु विपत्तियों और संघर्षो ने उसे जर्जरित बना दिया था। धनिया समाजाती थी यह विपन्न और जर्जरित स्थिति साठे तक पहुँचने देगी। होरी के कहे हुए शब्द चि परिस्थिति के अनुकूल नहीं थे, परन्तु यथार्थ के निकट थे। अतः मानो वे झटका देकर उसके तिनके का साहरा भी छीन लेना चाहते हों। यही कारण था कि धनिया का हृदय असीम वेदना से भर गया था और वह पति की मंगल कामना के लिये आकुल हो उठी थी। हमको सत्य जितना अधिक प्रभावित करता है, असत्य नहीं। जैसे काने आदमी को यदि काना कहा जाय तो उसे दुःख होगा, क्योंकि वह यथार्थ में काना है। परन्तु दो आँखों वाले को यदि काना कहा जाय तो उसे दुःख नहीं होगा व हँस भले ही जाय। होरी ने जो कुछ कहा था, वह यथार्थ था। धनिया के हृदय का वेदना से भर जाना स्वाभाविक ही था।
विशेष- (1) भारतीय कृषक की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। धनिया के चिन्तन में भारतीय संस्कृति की आदर्श नारी मुहावरों से शैली में प्रवाह आ गया है। का चिन्तन है।
(2) भाषा में प्रसाद गुण है।
6. संकेत- "वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों में रंजित कर देती है, फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी काँपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने सग्न साप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संख्या आती है, शीतल और शान्त, जब हमें थके हुए पश्थिकों की भाँति दिनभर की यात्रा का वृतान्त कहते हुए सुनाते हैं। तटस्थ भांव से, मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहाँ नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुंचता।" ने वैवाहिक जीवन की सन्दर्भ गद्यांश में उपन्यासकार समता दिवस के उत्थान पतन से की है। जिस प्रकार दिन ऊभा से प्रारम्भ होकर संध्या को समाप्त होता है, उसी प्रकार वैवाहिक जीवन को ऊषाकाल से प्रारम्भ होता है, संख्या में उसका समापन होता है। जीवन वैचारिकत्वों का करो काराकार ने बड़ी मधुर पुत्रभूमि में प्रस्तुत किया है। दमड़ी बंसीर के मुंह लगने से होरा अपनी पानी पुनिया की पिटाई करता पर पड़ जाती है होरी घर के द्वार पर है। होरी उसे बचाता है। धनिया की दृष्टि आ जाता है। दोनों में वैवाहिक जीवन पर चुहल होती है। यहाँ सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन पर लेखक की अनुभूतिपूर्ण दृष्टि पड़ती है।
व्याख्या-विवाह का समय ऊषाकाल की मधुरिमा लिए होता है। उसमें गुलाबी मादकता होती है। पति और पत्नी के हृदय में ऊषा के समान स्वर्णिम और मधुर लालसाएँ जाग्रत हो जाती है। जिस प्रकार ऊषा गुलाबी मादकता लिए हुए आकाश से उदित होती है और अपनी सुनहरी किरणों से समस्त आकाश को स्वर्णित माधुर्य में रंजित कर देती है, उसी प्रकार विवाह का समय युवक-युवतियों के लिए ऊषाकाल होता है, जो जीवन को मादकता से भर देता है। दम्पत्ति का वैवाहिक मिलन उसके हृदयकाशों को लालसाओं से; माधुर्य एवं स्वर्णिम अभिलाषणा से भर देता है। वैवाहिक जीवन का ऊषाकाल उनके जीवन को मादकता, माधुर्य एवं अनुभूति से भर देता है। ऊषा

का बालारुण विकसित होता हुआ मध्याह्न का प्रचण्ड सूर्य बन जाता है। वह अपने प्रखर ताप का प्रसार करता है, जिसके कारण क्षण-क्षण में बगूले उठते हैं और पृथ्वी सूर्य की प्रचण्डता से कंपायमान हो उठती है। अब सूर्य की किरणें स्निग्ध, स्वर्णिम और माधुर्यपूर्ण नहीं रहती। वे अग्नि की तरह, दाहक हो जाती है। उन्का ताप लपटें उत्पन्न करता है, जिससे संसार जल उठता है। विवाह के पश्चात् गृहस्थी का भार और जीवन-संग्राम का संघर्ष सामने आता है, जो विवाह-काल के लालसाओं से भरे हुए मधुर आचरण को हटा देता है और जीवन- संघर्ष का जो यथार्थ रूप सामने आता है, वह मध्याह्न के सूर्य के समान ही प्रचण्ड होता है।

गृहस्थ-जीवन का यह संघर्ष ही वैवाहिक जीवन संध्या ले आता है। संध्या मिश्रामदायिनी होती है। उसमें शीतलता और शान्ति दोनों होती हैं। जो पथिक दिन भर चलते रहे हैं, वे संध्या को विश्राम करते हुए अपनी थकावट को मिटाते हैं और परस्पर दिन भर की यात्रा एवं अनुभवों का वृतान्त कहते-सुनते हैं। इस विश्रामदायिनी संध्या में वे दिन भर के संघर्ष और थकावट को भूल जाते हैं। वैवाहिक जीवन की संध्या भी विश्रामदायिनी है। दम्पत्ति जीवन संग्राम में एक-दूसरे से कंधा भिड़ाकर चलते हैं और उत्तरदायित्व का भार वहन करते हुए श्रमित हो जाते हैं। वे युवावस्था के मध्याह्न को पार कर वृद्धावस्था की संध्या में आकर विश्राम पाते हैं। यह उनकी यात्रा का वह छोर हैं, जहाँ उनकी थकावट दूर होती है। वे परस्पर जीवन-यात्रा वृत्तान्त कहते हुए श्रम-परिहार करते हैं। वे अब जीवन के उच्च शिखर पर बैठकर अपनी पीछे बीते हुए जीवन-संघर्ष को इस तटस्थ भाव से देखते हैं, जैसे उससे अब उनका कोई सरोकार ही नहीं रहा।

विशेष- (1) लेखक ने वैवाहिक जीवन की समता दिन के विकास से करके मानव जीवन के यथार्थ को प्रकट किया है। (2) शैली में अलंकरण है।

7 संकेत "धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से तो नहीं होता, मैंने बड़े-बड़े धनकुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है और आपने भी देखा होगा। रूप की चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है ?"

सन्दर्भ-मेहता, ओकारनाथ, तंखा, मिर्जा खिशेद आदि की मित्र मण्डली रायसाहन के यहाँ धनुषयज्ञ के अवसर पर जमी है। मेहता युग के उद्बुद्ध सचेतक और प्रगतिशील विचारों है। उनका मत है कि मनुष्य में छोटे-बड़े का अन्तर रहेगा, इस अन्तर को मिटा देने से मनुष्य जाति का सर्वनाथ ही हो जायेगा। धर्म प्रवर्तकों एवं विचारकों के द्वारा समता का प्रचार बहुत किया गया, परन्तु अप्राकृतिक तथा अव्यावहारिक होने के कारण ही यह सिद्धान्त सफल व हो सका। इसमें मिली हुई सफलता अस्थायी रही। अपने इसी मत का समर्थक करते हुए डॉ. मेहता करते है-

व्याख्या-धन को अन्याय के द्वारा सभी में समान रूप से फैलाया जा सकता है। परन्तु धनवानों का धन छीनकर जिनके पास धन नहीं है उनको न देना अन्याय होगा। धन-प्रकृति- प्रदत्त बस्तु नहीं है। वह प्रतिभा, बुद्धि और शक्ति से अर्जित होता है। अतः जिन्होंने उसको प्रतिभा, बुद्धि और शक्ति से अर्जित किया है, उनसे छीनकर उसका समाज में वितरण कर देना न्याय नहीं माना जा सकता। इस प्रकार अन्याय के द्वारा धन का समान वितरण करके समाज में फैलाया जा सकता है, परन्तु बुद्धि, चरित्र, प्रतिभा और शक्ति जो दैवीय वस्तुएँ हैं, उनको समस्त समाज में समान रूप से वितरित नहीं किया जा सकता। यदि धन का समान वितरण कर भी दिया जाये तो बुद्धि प्रतिभा, चरित्र और शक्ति वाला व्यक्ति उसे पुनः बढ़ा लेगा, परन्तु इन गुणों से रहित व्यक्ति उसे नष्ट कर देगा। फिर धन से ही छोटे-बड़े का भेद नहीं होता। संसार में बड़े-बड़े धनकुबेर विद्धान भी चरित्रवान भिक्षुओं के समक्ष सिर झुकाते हुए देखे जाते है। इस प्रकार रूपवती नारियों के द्वार पर बड़े-बड़े सम्राट नाक रगड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। भिक्षुक गौतम बुद्ध के सामने बड़े-बड़े सम्राट नतमस्तक होते थे और नूरजहाँ के रूप पर सम्राट जहाँगीर ने अपना साम्राज्य ही न्यौछावर कर दिया था। अतः गुणों की असमानता के कारण समाज में जो छोटे-बड़े का भेद है, उसे धन के समान वितरण के अप्राकृतिक कार्य से नहीं मिटाया जा सकता।

विशेष-यहाँ प्रेमचन्द साम्यवाद के धन के समान वितरण के सिद्धान्त से सहमत नही हैं। समाज के गुणों की असमानता के कारण छोटे-बड़े का भेद रहना अनिवार्य हैं।

8. संकेत "सामने की पर्वतमाला दर्शन तत्व की भाँति अगम्य और अत्यन्त फैली हुई मानो ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानो आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, , उसके अप्रत्यक्ष विराट रूप में देख ही हो। दूर के एक बहुत ऊँचे शिखर पर एक छोटा-सा मन्दिर था। जो उस अगम्य में बुद्धि की भाँति ऊँचा, पर खोया हुआ सा खड़ा था। मानो वहाँ तक पर मारकर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।"

सन्दर्भ-डॉ. मेहता शिकार खेलने जाते हैं। मालती भी उनके साथ में हैं। वहाँ से एक कलूटी लड़की के सद् व्यवहार से बहुत प्रभावित होते हैं। वह उनको अपनी झोंपड़ी तक ले जाती है। वे उसके साथ जाकर ऊँचाई पर बैठ जाते हैं। उनके सामने पर्वतमाला और प्रकृति- सुषमा नयनाभिरास दृश्य प्रस्तुत कर रही है। दार्शनिक प्रोफेसर मेहता उस दृश्य को देखते हुए दार्शनिक चिन्तन में खो जाते हैं।

व्याख्या-मेहता ऊँचाई पर बैठे हुए हैं। यहाँ का प्राकृतिक स्वच्छन्द जीवन उनके हृदय में अनुराग उत्पन्न कर रहा है। सामने पर्वतमाला फैली हुई है। वह अपने विस्तार और व्यापकता में दर्शन तत्व की तरह ही अगम्य और फैली लग रही है। उस पर्वतमाला के रूप में मानो ज्ञान विस्तार हो रहा हो। मेहता यह अनुभव कर रहे है, मानो उनकी आत्मा उस ज्ञान प्रकाश और अगम्यता को प्रत्यक्ष विराट रूप में देख रही हो। अर्थात् मेहता के सामने फैला हुआ पर्वत

परम तत्व के रूप में ज्ञान के प्रकाश और अगम्यता का साकार रूप लगता था। दूर के एक ऊँचे शिखर का छोटा-सा मन्दिर दिखाई दे रहा था, जो पर्वत रूपी परम तत्व की उस अगम्यता में बुद्धि की भाँति ऊँचा दिखाई दे रहा था, परन्तु किसी रहस्य को जानने की जिज्ञासा में खोया- खोया सा लगता था। बुद्धि ज्ञान की अगम्यता का रहस्य पाने के लिए ऊँची-उड़ान भरती है, परन्तु उस रहस्या का भेदन न कर पाने के कारण खोई-खोई सी रहती है। जैसे कोई पक्षी परों से उड़ान भरकर मन्दिर की ऊँचाई पर विक्षाम करने को जाता है, परन्तु उसे यहाँ स्थान नहीं मिलता है। इसी प्रकार मेहता का मन-पक्षी विस्तृत पर्वतमाला में परम-तत्व को प्रत्यक्ष रूप में देखता था, परन्तु उसका रहस्य-भेदन कर विश्राम पाने में असमर्थ था। विशेष-यहाँ दार्शनिक तत्व की सरल और सुगम अभिव्यक्ति हुई है। यह समस्त प्रकृति विराट परम सत्ता का ही प्रतिबिम्ब है। विशाल पर्वतमाला में उसी परम सत्ता का प्रकाश है। मेहता इसका अनुभव एक दार्शनिक की भाँति करते हैं।

9. संकेत- आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं; मेक-अप में प्रवीण बला की हाजिर जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हावभाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाशा का लोप-सा हो गया।

प्रसंग-प्रस्तुत पंक्तियां 'गोदान' के छटे अध्याय में से ली गई है। राय साहब अमरपाल सिंह के यहाँ दशहरे के अवसर पर उत्सव का आयोजन हो रहा है। 'धनुष यज्ञ' के के दृश्य का अभिनय भी होने वाला है। उस अवसर पर रायसाहब के यहाँ उनके नगरीय मित्र-परिचित क्रमशः आ रहे हैं। आने वालों में प्रो. मेहता, मिल मालिक खन्ना, पत्रकार ओंकार नाथ आदि आ चुके है। उसके बाद आती है डॉ. मिस मालती। उसी के व्यक्तित्व का परिचय प्रस्तुत पंक्तियों में कराते हुए उपन्यास कह रहा है:

व्याख्या-आगन्तुक महिला मालती ने ऊँची एड़ी का जूता पहन रखा था। चेहरे पर स्वाभाविक हंसी का भाव मचल रहा था। इंग्लैण्ड में पढ़कर आई मालती की प्रैक्टिस बहुत अच्छी चल रही थी। बड़े-बड़े ताल्लुकेदारों एवं घरानों में अपनी डॉक्टरी पेशे के कारण मालती का स्वत्रन्त्र प्रवेश था। मालती के व्यक्तित्व एवं चरित्र के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए उपन्यासकार प्रेमचन्द आगे कहते हैं- माती को देखने से ही पता चल जाता है कि वह नये युग की नव्य सभ्यता में पूर्णतया रंगी हुई है। कोमलता रहते हुए भी मालती का स्वभाव एवं अंग-अंग जैसे चंचलता का सजीव स्वरूप प्रतीत होता है। प्राचीन नारियों के समान मारती के स्वभाव में लज्जा या झिझक का नाम तक नहीं था। वह आधुनिक साज-सज्जा के ढंगों से पूर्णतया परिचित प्रतीत हो रही थी-अर्थात् उसने अपने-आपको आधुनिक ढंग से ही सजा सवार रखा था। किसी भी बात का जवाब वह तत्काल देने में विशेष निपुण थी। पुरुषों की मनोवृत्तियो को समझ पाने की

उसमें अद्भुत शक्ति विद्यमान थी। उसके लिये जीवन का अर्थ था आनन्द और मौज। इतना ही नहीं उसके व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण और स्वभाव में सक्रियता थी कि यह सहज ही किसी को आकर्षित कर सकती थी। जहाँ तक आत्मिक तत्वों का प्रश्न है, यहाँ वह केवल प्रदर्शन ही करना जानती थी। हृदय का काम वह हाव-भावों से लेती। अपनी मानसिक भावनाओं को काबू रखने का उसमें अद्भुत संयम था। अतः उसकी इच्छा या अभिलाषा को जान पाना सह कार्य ना था।

भाव यह है कि आधुनिक सुघड़ एवं निपुण नारी में जितने भी गुण एवं आकर्षण हो सकते हैं, वे सब मालती के चरित्र एवं व्यक्तित्व में विद्यमान थे।

विशेष व्यक्तित्व वर्णन एवं परिचय के लिये उपन्यासकार ने यहाँ प्रत्यक्ष वर्णनात्मक प्रणाली को अपनाया है। शब्दों द्वारा व्यक्तित्व का मूर्त चित्र प्रस्तुत कर देना इस प्रसंग की प्रमुख शेषता है। भाषा में सामान्य प्रयोग में आने वाले अंग्रेजी और के शब्दों का उर्दू के भी प्रयोग किया गया है। छोटे-छोटे वाक्यांशों में प्रदर्शित वर्ण एवं शब्द-मैत्री ने वर्णन को अत्यधिक सजीव एवं ग्राह्य बना दिया है। समूचे वर्णन में आत्मीयता का भाव स्पष्ट है।

10. संकेत "धनिया का भ्रातृ-स्नेह उस अँधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस बीच यौवन में भी वही कोमल हृदय बालिका नजर आई, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था, जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेट लेता था।"

सन्दर्भ-झुनिया गोबर से गर्भवती हो जाती है। गोबर भय से चुपचाप अपने घर में छोड़कर पलायन कर जाता है। धनिया गर्भवती झुनिया को रखकर अपने सिर कलंक लेने के लिए कभी तैयार नहीं है। वह दौड़ी हुई होरी के पास जाती है। होरी पुनिया के मटर के खेत की रखवाली कर रहा था, धनिया होरी का हाथ पकड़कर साथ ले आती है। है और झुनिया को किसी प्रकार भी घर में न रखने पर जोर देती है। परन्तु धनिया का मातृत्व जाग्रत हो जाता है और झुनिया -पर उसका ममत्व उमड़ पड़ता है। वह झुनिया को आश्रय देने का निश्चय करती है। द्वार पर पहुँचकर धनिया होरी को शपथ दिलाती हुई उस पर हाथ न उठाने का अनुरोध करती है। क्योंकि वह बेचारी तो वैसे ही भाग्य की सताई होकर रो रही है। इसी सन्दर्भ में उपन्यासकार ने होरी और धनिया की मानसिक स्थिति का निरूपण किया है।

व्याख्या-झुनिया की दयनीय स्थिति पर धनिया का असीम मातृत्व उमड़ते देखतर होरी की आँखे आर्द्र हो गई। गले में बाहें डालकर धनिया के झुनिया को आश्रय देने के आग्रह ने उसके हृदय में स्निग्ध स्मृतियाँ जाग्रत कर दीं। होरी का सारा शरीर और मुख-मण्डल चिन्ताओं से जर्जरित हो रहा था। रात्रि के वातावरण में घना अंधकार छाया हुआ, परन्तु धनिया का मातृ- स्नेह उस अन्धकार में दीपक के समान प्रकाशमान हो रहा था, जिससे होरी की चिन्ता जर्जरित मुद्रा प्रकाशमान होकर सुन्दर लगने लगी थी। दोनों के हृदय में अतीत का बीता हुआ यौवन जाग्रत हो उठा। धनिया का यौवन व्यतीत हो चुका था, परन्तु आज वह होरी को धनिया के रूप में वही कोमल हृदय बालिका दिखाई पड़ रही है, जिसने पच्चीस वर्ष पूर्व उसके जीवन में प्रवेश किया था और उसकी वधू बनकर आई थी। धनिया ने जो भुजाएँ गले में डालकर आलिंगन किया था, उसमें जो वात्सल्य का अथाह सागर भरा हुआ था, वह सारे कलंकों, बाधाओं और मूलबद्ध परम्पराओं को अपने में समेट लेने में सक्षम था।

विशेष-वात्सल्य के साथ ही दाम्पत्य प्रेम की बड़ी सुन्दर व्यंजना नहीं उपन्यासकार ने की है।

11. संकेत- विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन है, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।

प्रसंग-दशहरे के अवसर पर आयोजित 'धनुष यज्ञ' के उत्सव पर जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह के यहाँ प्रो. मेहता, डॉ. मालती, खन्ना, तन्खा, ओंकारनाथ आदि सभी लोग उपस्थित है। विभिन्न विषयों की चर्चा करते हुए वे सब लोग विवाह और तलाक आदि के विषय पर आकर चर्चा करने लगते हैं। प्रो. मेहता और खन्ना निर्बन्ध रहकर मुक्त भोग के मत का समर्थन करते हैं। मालती मिसेज

कामिनी खन्ना (गोबिन्दी) पर कुछ व्यंग्य कसती है कि यदि तलाक का बिल पास हो गया तो सबसे पहले उसका उपयोग मि. खन्ना ही करेंगे। फिर मालती प्रो. मेहता से पूछती है कि विवाह के सम्बन्ध में उनके क्या विचार है? तब अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए प्रो. मेहता कहते हैं: व्याख्या-मेरे विचार में विवाह कोई धार्मिक या आत्मिक क्रिया-प्रक्रिया न होकर, सामाजिक जीवन में एक व्यवस्था बनाये रखने के लिये स्त्री और पुरुष की इच्छा से सम्पन्न होने वाला एक सामाजिक समझौता मात्र है। जिस प्रकार दो व्यक्तियों या देशा में कोई समझौता सम्पन्न हो जाने के बाद नैतिकता या व्यावहारिकता की दृष्टि से उसे भंग करने का अधिकार किसी भी पक्ष को नहीं रह जाता, उसी प्रकार इस विवाह के समझौते के एक बार सम्पन्न हो जाने के बाद स्त्री (पत्नी) या पुरुष (पति) को यह अधिकार नहीं है कि वह इस समझौते को भंग करके जीवन और समाज के सामने किसी प्रकार का गलत उदाहरण पेश करे। जब एक चार विवाह या कोई अन्य समझौता हो गया, तो फिर उसे निभाने में ही कुशलता है। हाँ, जब तक कोई समझौता अन्तिम रूप से सम्पन्न नहीं हो जाता, तब तक जिस प्रकार दोनों पक्ष स्वाधीन होते हैं कि वे समझौता करें या न करें, इसी प्रकार जब तक यह विवाह नहीं हो जाता, तब तक स्त्री और पुरुष स्वतंत्र हैं कि वे विवाह के बन्धन में बन्धने से इन्कार कर दें। विवाह न करें। पर समझौता हो जाने के बाद-अर्थात् विवाह हो जाने के बाद तो उसे निभाने की एक प्रकार की सामाजिक एवं नैतिक बाध्यता हो जाती है। तब तो निभाने में ही गुजारा है। भाव केवल इतना है कि कोई भी समझौता भंग करने के लिये नहीं किया जाता। फिर सामाजिक समझौते तो अनेक प्रकार के नैतिक उत्तरदायित्व लिये रहते हैं उनके भंग होने से

जीवन और समाज में अराजकता आ सकती है।

विशेष-प्रसंग में प्रकट विचार वास्तव में उपन्यासकार के अपने ही विचार है। 'समझौता' शब्द का प्रयोग होने पर भी विचारों में आदर्श की गन्ध निश्चित रूप से विद्यमान है।

12. संकेत "वह आफत को सारी व्यंग्य बाणों से आहत और जीवन आघातों से व्यथित किसी वृक्ष को छांह खोजती फिरती थी और उसे एक भवन मिल गया था, जिसके आश्रय में वह अपने को सुरक्षित और सुखी समझ रही थी, पर आज वह भवन अपना सारा सुख विलास लिये अलादीन के राजमहल की भाँति गायब हो गया था, और भविष्य एक विकारल दानव के समान उसे निगल जाने को खड़ा था।

सन्दर्भ-इस गद्यांश में उपन्यास ने झुनिया की अन्तर्द्वन्द्व मन स्थिति को निरूपण किया है। बाल विधवा युवती झुनिया अपने पिता को यहाँ भाभियों के व्यंग्य-बाण सहती और आपत्तियों का सामना करती हुई दिन व्यतीत करती थी। गोबर ने उसे अपनाया तो उसकी आशाओं का महल खड़ा हो गया, परन्तु उस गर्भवती को गोबर अपने घर चुपचाप छोड़कर चला गया। झुनिया अपने अन्धकार-पूर्ण भविष्य के विषय में चिन्तन करती है।

व्याख्या-अंधेरी रात्रि में झुनिया होरी के घर में बैठी हुई थी। दीवट पर मिट्टी के तेल की कुम्पी जलती हुई मन्द प्रकाश फैला रही थी। झुनिया की आँखों में नींद नहीं, वह घुटनों पर सिर रखे हुए द्वार की ओर मुँह किये बैठी हुई थी। वह धनिया के लौटने की प्रतीक्षा करती हुई उस आनन्द को खोज रही थी जो कुछ समय पहले ही अपनी मोहिनी छवि दिखाकर उसके सामने से अदृश्य हो गया था। गोबर के रूप में उसे एक आश्रय प्राप्त हुआ था। वह बाल- विधवा होने के कारण घर में भाभियों आदि के व्यंग्य-बाणों से आहत होती थी, उसे आपत्तियों का सामना करना पड़ता था। वह इनसे ऋण पाने के लिये किसी वृक्ष की छाया खोजती फिरती थी। गोबर के रूप में उसको आशा से अधिक भवन का आश्रय प्राप्त हो गया था और इस आश्रय

में यह अपने को सुखी एवं सुरक्षित समझ रही ती, परन्तु यह भवन अलादीन के चिराग से बने भवन के समान था, जो उसके देखते-देखते अदृश्य हो गया। अर्थात् जिस गोबर ने उसे आश्रय दिया था, वह पलायन कर गया। अब उसका भविष्य अन्धकारमय हो रहा है। वह विकराल दानव बनकर उसे निगल जाने के लिए उद्यत हो रहा है।

विशेष अन्तर्द्वन्द्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है।

13. संकेत "अभिसार की मीठी स्मृतियाँ आयीं, जब अपनी उन्मत उसालों में, अपनी नशीली चितवनों में मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों में रख देता था, झुनिया किसी विद्योगी पक्षी की भाँति अपने छोटे से घोंसले में एकान्त जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें, मगर बहेलिए का जाल और छल भी तो वहाँ न था। गोबर ने उसके एकान्त घोंसले में जाकर उसे कुछ आनन्द पहुँचाया या नहीं, कौन जाने, पर उसे विपत्ति में डाल ही दिया। वह सम्भल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने एक साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।"

सन्दर्भ-गोबर ने झुनिया को अपने घर लाकर, बिठा तो दिया, परन्तु परिस्थिति का सामना करने का साहस न कर सका। वह होरी की मढ्या के पीछे जाकर छिप गया और उसने अपने तथा झुनिया के बारे में पिता व माँ को भली बुरी बातें करते सुना। पिता और माँ के घर आने पर झुनिया के विषय में उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिये वह घर की ओर दौड़ पड़ा परन्तु सामना करने का साहस न कर सका, झुनिया से प्रेम विवाह के किये हुए वायदों और उसको हो रहे कष्टों का संस्मरण कर गोबर का हृदय अन्तर्द्वन्द्र से भर जाता है। यहाँ उपन्यासकार ने गोबर की अन्तर्द्वन्द्र एवं पश्चतापपूर्ण मानसिक स्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या-गोबर के हृदय में भी भाषण अन्तर्द्वन्द्र की आँधी उठ रही है। उसने झुनिया से प्रेम और विवाह की जों बातें की थीं, वे उसके मानस का मंथन कर रही थीं। झुनिया से मधुर मिलन की स्मृतियाँ उसके हृदय को कचोट रही थीं। वह झुनिया से मधुर मिलन के समय अपनी उन्मत उसासों और नशीली चितवनों में अपने प्राण निकालकर उसके चरणों में रख दिया करता था। ये सारी स्मृति आज उसके हृदय को मथ रही थीं। गोबर सोचता है कि जब तक मैंने झुनिया के जीवन में प्रवेश नहीं किया था, वह एकान्त

में उसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रही ती, जिस प्रकार वियोगी पक्षी अपने छोटे घोंसले में एकान्त जीवन व्यतीत करता है। अपनी इस स्थिति में झुनिया एकान्त जीवन व्यतीत कर रही थी यह सही है कि मनुष्य का आग्रहजनित उन्मत प्रेम और विलास उसको प्राप्त नहीं था। मिलनोत्साह और प्रसन्नता के प्रकाश का वातावरण भी उसे प्राप्त नहीं था, शावकों जैसे बच्चों की मीठी कलरव आनन्द भी उसके लिये नहीं था, परन्तु इस अभावों में कोई पुरुष बहेलिया की तरह उसके जीवन को नष्ट करने के लिये छल का जाल नहीं बिछाता था। झुनिया के ऐसे नीरव घोंसले में वह गया। परन्तु उसने उसको लाभ पहुँचाया या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना तो निश्चित है कि उसने झुनिया को विपत्तियों में डाल दिया। वह उससे गर्भवती हो गयी। ऐसी आपत्तिग्रस्त स्थिति में अब वह क्या करे। इतना सोचते हुए गोबर सम्भल गया और झुनिया की रक्षा के लिये उसी प्रकार पीछे लौट पड़ा, जिस प्रकार युद्ध से भागता हुआ कोई सैनिक अपने साथी सैनिक की ललकार सुनकर पुनः युद्ध के लिए लौट पड़ता है।

विशेष-गोबर के अन्तर्द्वन्द्र का विश्लेषण करते हुए उसमें साहस जागृत होने की मनोदशा की सैनिक से तुलना की है।

14. संकेत- "मेरे जेहन में औरत बफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजवानी से कुमांगों से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्या का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्या स्बी की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत से ही क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य नहीं है। वह अपने को मिटायेगा, तो शून्य हो जायेगा, यह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्या में मिल जाने का स्वप्न देखेगा... जो सर्वांश में।"

सन्दर्भ-मिनर्वा द्वारा आयोजित कबड्डी खेल समाप्त होने पर मिर्जा और मेहता की मालती के विषय में बातचीत होती है। मिर्जा कहते हैं कि आपके साथ मालती का विवाह हो रहा है। मेहता इसका खण्डन करते हुए नारी और पुरुष का अन्तर स्पष्ट करते हैं और नारी के त्याग की प्रशंसा करते हुए कहते हैं:

व्याख्या-में अपनी जीवन-संगिनी में जो अवगुण देखता हूँ, वे मालती में नहीं है। मेरी दृष्टि में नाही त्याग और बलिदान से पति की आत्मा ही बन जाती है। उसका जैसा मूल बलिदान, त्याग और प्रेम पुरुष में नहीं मिलता। नारी पति के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार रहती है वह अपने अहं को मिटाकर अपने अस्तित्व को अपने पति में पूर्ण रूप से मिला देती है। पति और पत्नी के रूप में स्त्री और पुरुष का जो मिलन होता है उसमें पुरुष का शरीर ही रहता है, जबकि उसकी आत्मा के रूप में स्त्री की ही आत्मा रहती है। भाव यह है कि

नारी अपना सर्वस्व बलिदान करके पुरुष की आत्मा पर विजय पा लेती है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि स्त्री ही अपने को क्यों मिटाती है, पुरुष अपने को क्यों नहीं मिटाता और वह स्त्री से ही मिटने की आशा क्यों करता है? इसका सीधा उत्तर यह हैं कि पुरुष में नारी जैसा त्याग और बलिदान करने की शक्ति होती ही नहीं। यदि पुरुष अपने को मिटाने के लिए त्याग व बलिदान करेगा, तो यह शून्य रह जायेगा और उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। वह त्याग और बलिदान दूसरे के लिये न करके संसार से विरक्त होकर किसी गुफा में जा बैठेगा और इस प्रकार वह कर्मक्षेत्र से पलायन करके ईश्वर में लीन होने का स्वप्न देखेगा। इसका कारण यह है कि पुरुष तेज प्रधान जीव होता है और अपने तान के अहंकार में स्वयं को ज्ञान का पुतला समझता है। इसलिए उसका त्याग और बलिदान उसे संसार से पलायन कराता है और वह एकान्त में ईश्वर में लीन की कल्पना किया करता है। नारी में पुरुष के विपरीत गुण होते हैं। उसमें अहं नहीं होता अपितु वह पृथ्वी की तरह धैर्यशील होती है। वह शान्ति, क्षमा, दया और करुणामय होती है. कष्ट, सहिष्णुता का गुण उसमें सर्वोपरि होता है। पुरुष में नारी के जब ये गुण आ जाते हैं, तब वह महात्मा बन जाता है और जब नारी में पुरुष का तेज अहंकार आ जाता है, तब वह कुलटा हो जाती है। पुरुष ऐसा ही नारी की ओर आकर्षित होता है, जो सहिष्णुता, शान्ति, क्षमा,

टया, करुणा आदि गुणों से युक्त पूर्णरूप से स्त्री हो। विशेष मेहता के शब्दों में प्रेमचन्द ने नारी के विषय में अपनी मान्यता दी है। वह आदर्श नागरी उसी को मानते है जिसमे सहिष्णुता, शान्ति, क्षमा, दया, त्याग, बलिदान, करुणा आदि विशिष्ट गुण हो।

15. संकेत "पुरुष कहता है, जितने दार्शनिक और वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, वह सब पुरुष थे। सभी योद्धा, सभी राजनीति के आचार्य, बड़े-बड़े नाविक, बड़े-बड़े सब कुछ पुरुष थे, लेकिन इन बड़ों-बड़ों के समूहों ने मिलकर क्या किया? महात्माओं और धर्म-प्रवर्तकों ने संसार में रक्त की नदियाँ बहाने और वैमनस्य की आग भड़काने के सिवा और क्या किया? योद्धाओं ने भाइयों की गर्दन काटने के सिवा क्या यादगार छोड़ी राजनीतिज्ञों की निशानी अब केवल लुप्त साम्राज्य खंडहर रह गये हैं, आधिष्कारकों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी? पुरुषों की रची हुई इस संस्कृति में शान्ति कहाँ हैं? सहयोग कहाँ हैं?" सन्दर्भ-डॉ. मेहता वीमेंस लीग में भाषण दे रहे हैं। आज की इस सभा की सभा नेत्री

मिस मालती है। मेहता इससे पहले के भाषण-अंश में नारी के सहिष्णुता, शान्ति, दया, प्रेम, बलिदान आदि गुणों की प्रशंसा कर चुके हैं। पुरुष इन गुणों को पाने का प्रयत्न करके भी न या सका। उसे अपने को दार्शनिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, महात्मा, राजनीतिज्ञ, आविष्कारक आदि होने का अंहकार है। परन्तु उसने अपने कार्यों से हिंसा, अशान्ति, संघर्ष, युद्ध और विनाश को ही जन्म दिया है। डा. मेहता परुष के इन समस्त कार्यों को, जिनका कि उनको गर्व है, विश्लेषण करते हुए कहते हैं-

व्याख्या-पुरुष को इस बात का गर्व है कि संसार में जितने भी दार्शनिक वैज्ञानिक और आविष्कार हुए, उनको करने वाले ले पुरुष ही थे, समस्त बड़े-बड़े महात्मा पुरुष ही। थे। जितने भी महान योद्धा, राजनीतिज्ञ, बड़े-बड़े नाविक तथा अन्य क्षेत्रों में महान् और बड़े हुए, वे सब पुरुष ही थे, परन्तु इन लोगों ने क्या किया? यदि इनके कार्यों और उनकी उपलब्धियों का विश्लेषण किया जाय, तो यही परिणाम निकलेगा कि इन्होंने समाज को पतन और विनाश की और ढकेला। संसार में बड़े-बड़े महात्मा और धर्मप्रवर्तक सामने आये। उन्होंने अपने धर्म के प्रचार के लिए दूसरे धर्म वालों को कुचला। उन्होंने धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर समाज में जो व्यापक वैमनस्य फैला दिया, उसके परिणामस्वरूप ऐसी मारकाट हुई एवं हिंसा का तांडव नृत्य हुआ कि रक्त की सरिताएँ प्रवाहित हो उठीं। मध्य युग का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि मुसलमानों ने धर्म युद्धों की आड़ में कितना भीषण रक्तपात किया। शैव-वैष्णवों, धर्म- प्रचारकों के हिंसात्मक कृत्यों से मानवता कराह उठी। अब योद्धाओं की बात लीजिए, उन्होंने अपनी शक्ति और अधिकार बढ़ाने के लिए अपने भाइयों की गर्दन पर तलवार चलाई। इतिहास साक्षी है कि अशोक जैसा धार्मिक सम्राट अपने भाइयों को मारकर सिंहासन पर बैठा था, औरंगजेब ने भी भाइयों को कत्ल करवाकर तख्त पाया था। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों ने जिन विशाल साम्राज्यों की स्थापना की थी, उनकी निशानी अब उनके खण्डहरों के रूप में ही शेष रह गई है। यही बात बड़े-बड़े आविष्कारों के सम्बन्ध में है। इनके आविष्कारों से मानव की कोई समस्या भी हल नहीं हुई। इन आविष्कारों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना दिया, इन्होंने मनुष्य को बेकार कर दिया। अतः

पुरुषों के द्वारा जो दार्शनिक और वैज्ञानिक आविष्कार हुए अथवा महात्माओं और धर्म-प्रवर्तकों द्वारा जो प्रयास हुए तथा राजनीतिज्ञों के द्वारा जिस साम्राज्य की स्थापना हुई, उनसे न तो सहयोग की भावना आई और न शान्ति का ही प्रसार हो सका, अपितु मानव, मानव के रक्त का पिपासु बन गया। विशेष-प्रेमचन्द जी ने मशीनी आविष्कारों, राजनीतिज्ञों के प्रयासों और और धर्म-प्रवर्तको धार्मिक कृत्यों को मानव समाज को शान्ति के लिए निरर्थक बतलाया है।

16. संकेत- "मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ, उसी तरह जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को हिंसा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ। अगर हमारी देवियों सृष्टि और पालन के देव मन्दिर में हिन्सा और कलह के दानव क्षेत्र में आना चाहती है, तो उससे समाज का कल्याण न होगा। मैं इस विषय में दृढ़ हूँ। पुरुष ने अपने अभिमान में अपनी कीर्ति को अधिक महत्व दिया। वह अपने भाई का स्वत्व छीनकर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा, उसने बहुत बड़ी विजय पायी। देवियों मैं आप से पूछता हूँ, क्या आप इस दानव-लीला में सहयोग देकर इस संग्राम- क्षेत्र में उतर कर संसार का कल्याण करेगी। मैं आपसे विनती करता हूँ नाश करने बालों को अपना काम करने दीजिये, आप अपने धर्म का पालन किए जाइये।"

प्रसंग-प्रो. मेहता नारी जाति को प्रेरणा देना चाहता है वह आधुनिकता के आवेश में बापवी अधिकार रक्षा का आन्दोलन छोड़कर उन्हें जो प्रकृति-प्रदत्त अधिकार प्राप्त हैं, उन्ही के बल पर पुरुषों की हिंसक मनोवृत्तियों के विरोध में डट जायें। ताकि विनाश के कगार पर खड़ी मानवता की रक्षा हो सके। इस प्रकार पुरुषों को उनकी हिंसक मनोवृत्तियों के लिये फटकारते हुए और नारियों की उनकी सूजक मनोवृत्तियों के लिये प्रशंसा करते हुए प्रो. मेहता कहता है:

व्याख्या-सृष्टि के आरम्भ में लेकर आज तक तो मानव सभ्यता-संस्कृति का विकास हुआ है, उसमें अपने महत्वपूर्ण योगदान के कारण स्त्री का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, ऐसा मेरा दृढ विचार है। जिस प्रकार हिंसा और युद्धों के मार्ग की तुलना में अहिंसा, प्रेम, त्याग, श्रद्धा और विश्वास के मार्ग मानव सभ्यता के विकास के लिये महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ विकास है, उसी प्रकार पुरुष द्वारा किये गये कार्यों की तुलना में स्त्री के कार्य श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण हैं। इसी कारण मैं स्त्रियों के लिये अधिकार प्राप्ति और रक्षा के नाम पर आन्दोलनात्मक मार्ग अच्छा नहीं समझता। मेरे विचार में स्त्रियों का आज तक का मार्ग और रूख सृष्टि का पालन करने वाला होने के कारण किसी देवता के मन्दिर के समान पवित्र और शान्ति देने वाला है। इसके विपरीत वे जिस संघर्ष के मार्ग पर चलना चाहती है, वह हिन्सा का मार्ग होने के कारण राक्षस्सरी मनोवृतियों का परिचायक है। अतः इस मार्ग पर चलकर वह जीवन और समाज का किसी प्रकार से मंगल-विधान नहीं कर सकतीं। अपने विचारों को दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित करते हुए प्रो. मेहता फिर कहते हैं-पुरुष हमेशा ही अपने अहं से पीड़ित होकर यश-प्राप्ति का लालची रहा है। अपने इसी लालच की पूर्ति के लिए उसने अपने भाई तक को भी क्षमा नहीं किया। उसके अधिकार छीनकर, बल्कि यश और अधिकार-लिप्सा की पूर्ति के लिए अनेक बार भाई की हत्या तक करके भी उसने अपने विजेता होने का दम्भ भरा है। एक और नारी है जो कि अपने रक्त, मौस और मज्जा से मानव-शिशुओं का सृजन कर उन्हें जन्म देती है, पालती-पोसती है. दूसरी ओर पुरुष ने उन्हों को मशीन गनों और टैंकों जैसे घातक अस्त्र-शस्त्रों से विनष्ट करके रखा दिया है। इतना विनाश करके भी पुरुष ने अपने को विजेता के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है। इस पर भी हमारे यहाँ की यह परम्परा रही है कि यहाँ की माताएँ बहिनें और पत्नियाँ अपने पुत्रों, भाइयों और पतियों को अपने हाथों से सजा संवार कर, अपनी मंगल कामनाओं से प्रेरित होकर उसके माथे पर केशर-चन्दन का तिलक लगाकर उसे युद्ध के लिये भेजती रही हैं। उनकी इस मंगल-कामना को मात्र युद्ध के लिये आर्शीवाद मानकर पुरुष हमेशा भयानकर संहारों की सर्जना करता रहा है। कभी भी उसने अपनी शक्ति का प्रयोग किसी सृजनात्मक एवं कल्याणकारी मार्ग पर नहीं किया। उसी का भयानक परिणाम आज हमारे समाने हैं। पुरुष की दानवी शक्तियों अधिकाधिक सक्रिय होती गई। अपनी लालसा और शक्ति के मद में अन्धे होकर पुरुष ने हमेशा से जीवन के सुखों की हरियालियों को, निरीह प्राणियों को कुचला और मसला है। बस्तियों को अपनी विनाश-लीलाओं से श्मशान बनाया है और आज भी वह इसी विनाश और विध्वस के मार्ग पर ही चल रहा है।

प्रो. मेहता इसके बाद उपस्थित नारियों से देवियों से एक स्पष्ट प्रश्न करता है-क्या आप देवियों भी इस विनाश लीला में पुरुष की सहचारिणी बनना चाहती है? अर्थात् दयालुता, श्रद्धा और त्याग तपस्या के सहज स्वाभाविक और लाजक मार्ग को त्याग कर क्या आप भी पुरुष के समान केवल विनाश में सहायक होना चाहती है? क्या आप समझती है कि अधिकार-रक्षा के नाम पर युद्ध की सी आन्दोलनात्मक स्थितियों में पड़कर आप मानव संसार और समाज का कुछ भला कर सकेंगी? नहीं, यह मार्ग मानव-कल्याण का मार्ग कदापि नहीं हो सकता। अतः मेरा यह अनुरोध है, प्रार्थना है कि आप लोग अपने परम्परागत दया, श्रद्धा और मानवीय
सहानुभूति का मार्ग नहीं छोड़े। पुरुष समाज यदि अपने कार्यों से विनाश के मार्ग पर चलना चाहता है तो उसे चलते रहने दीजिये। आपके अपने कार्य उनको कभी भी सफल नहीं होने देंगे। अंतः नारी का उचित मार्ग आन्दोलनों का मार्ग नहीं है, बल्कि दया, कोमलता और सहानुभूति का मार्ग ही है।

भाव यह है कि सृष्टि का सृजन और विकास, श्रद्धा, आस्था, दयालुता, त्याग-तपस्या आदि के कारण ही सम्भव हो सका है। यही मार्ग आगे भी समूची सृष्टि और विशेषतः मानव- सभ्यता का कल्याण कर सकता है। कम से कम नारियों के लिए तो यही मार्ग उचित है। 17. संकेत- जिसे तुम प्रेम कहती हो वह धोखा है-उद्दीप्त लालसा का विकृत स्रूप उसी तरह से है जैसे संन्यास केवल भीख माँगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीबन में कम है, तो मुक्त विलास में बिल्कुल है। सच्चा आनंद, सच्ची शांति केवल सेबा व्रत में है। यही अधिकार का स्त्रोत है, वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही वह सीमेंट है जो दम्पत्ति को जीवन, पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रह सकता है, जिस पर बड़े- बड़े आधातों का भी कोई असर नहीं होता। जहाँ सेवा का अभाव है, वहीं विवाह-विच्छेद है, वही परित्याग है, अविश्वास है और उसके ऊपर पुरुष-जीवन का कर्णधार होने के कारण जिम्मेदारी ज्यादा है। आप चाहें तो नौका को आँधी और तूफान में पार लगा सकते हैं और आपने असावधानी की तो नौका डूब जायेंगी और उसके साथ आप भी डूब जायेंगे।"

सन्दर्भ-वीमेंस लीग में मेहता का भाषण चल रहा है। मेहता ने अभी कहा था कि नारी को गृहिणी का आदर्श त्याग कर तितली बनाना उसके आदर्श के अनुकूल नहीं है। मेहता के भाषण के अंश पर आपत्ति करती हुई मालती की छोटी बहन सरोज कहती है कि युवतियाँ अब विवाह को पेशा बनाना नहीं चाहतीं। पुरुष यदि अपने बारे में स्वतन्त्र हैं तो वे अपने विषय में स्वतन्त्र है। वे अब प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी। मेहता अपने भाषण को जारी रखते हुए कहते हैं।

व्याख्या-जिसे आजकल प्रेम कहा जाता है, वह यथार्थ में प्रेम न होकर धोखा मात्र है। वह प्रेम की उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप मात्र है। उद्दीप्त लालसा के इस विकृत रूप को प्रेम का संस्कृत नाम उसी प्रकार दे दिया गया है, जिस प्रकार भीख मांगने को संन्यास कहकर उसे संस्कृत रूप दिया जाय। साधारणतः भिखारी को बुरा कहा जाता है, किन्तु जब वह भिखारी गेरूआ चात्र धारण कर संन्यासी का वेश बनाकर भीख मांगने आता है तो संसार उसे संन्यासी समझकर उसका सम्मान करता है। इस प्रकार जैसे संन्यासी भिखारी का संस्कृत रूप है, उसी प्रकार प्रेम उद्दीप्त लालसा का संस्कार किया हुआ रूप है। उद्दीप्त लालसा नाम से समाज घृणा कारता है, परन्तु जब उद्दीप्त लालसा को प्रेम नाम दिया जाता है, तो समाज उसे स्वीकार कर लेता है।

यदि यह मान लिया जाय कि प्रेस वैवाहिक जीवन में कम रहता है, तो यह बात निश्चय है कि उन्मुक्त विलास में प्रेम नहीं रहता। मनुष्य को सच्चा आनन्द न तो विवाह में मिल सकता है और न उन्मुक्त विलास में ही, वह ती सेवा में ही प्राप्त होता है। सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द सेवा में ही मिलता है। सेवा प्रती को अधिकार प्राप्त कराता है और सेवा ही वह स्नोत है, जिससे निरन्तर शक्ति मिलती है
जिस प्रकार सोमेट दीवार को इंटो को जोड़े हुए एक रहता है, उसी प्रकार सेवा पति- पानी के दाम्पत्य जीवन में जीवनपर्यन्त स्नेह और साहचर्य बनाये रखती है। बड़े-बड़े संघर्ष और आधात भी सेवा-भावना के कारण परस्पर स्नेह पर आघात नहीं आने देते, जहाँ सेवा का अभाव होता है, वहीं अविश्वास जन्म लेता और परित्याग या विवाह-विच्छेद का अवसर आता है। स्त्री के ऊपर पुरुष की जीवन-नौका लेने का पूरा उत्तरदायित्व होता है। यदि नारी चाहे तो अपने सेवा-व्रत से आँधी और तूफानों के संघर्ष से इस नाव को पार लगा सकती है। यदि उनसे तनिक भी असावधानी की तो यह नाव बीच में ही डूब जायेगी और इसके डूबने पर स्वयं वह भी न बच सकेगी। विशेष-यहाँ

उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि सच्चा प्रेम सेवाभाव में ही होता है। 18. संकेत दोनों ने द्वार पर आकर किवाड़ों के दरार से अन्दर झाँका। दीवट पर तेल की कुप्पी जल रही थी और उसके माध्यम प्रकाश में झुनिया घुटने पर सिर रखे, द्वार की ओर मुँह किए अंधकार में उस आनन्द को खोज रही थीं, जो एक क्षण पहले अपनी मोहिनी छवि दिखा कर विलीन हो गया था। वह आफत की मारी, व्यंग्य-बाणों से आहत और जीवन के आघातों से व्यथित वृक्ष की छाँह खोजती फिरती थी और उसे एक भवन मिल गया था, जिसके आश्रय में वह अपने को सुरक्षित और सुखी समझ रही थी, पर आज वह भवन अपना सारा सुख-विलास लिये अलादीन के राजमहल की भांति गायब हो गया था और भविष्य एक विकराल दानव के समान उसे निगल जाने को खड़ा था। प्रसंग-भोला की विधवा बेटी झुनिया गोबर के प्रेम-पाश में फंसकर गर्भवती हो जाती है। जवानी के जोश में गोबर उसे अपने साथ तोले आता है, पर अपने माँ-बाप का सामना कर पाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। अतः झुनिया को अपने घर के पास छोड़कर स्वयं गायब हो जाता है। होरी और धनिया पहले तो उसे स्वीकार नहीं करते, घर से निकालने की चेष्टा करते हैं। होरी तो उस बेचारी को पीटने तक के लिये भी तैयार हो जाता है, परन्तु दयार्द्र होकर धनिया उसे रोक लेती है। धनिया की मातृत्व की भावना से पसीज कर होरी भी नर्म पड़ जाता है। वे दोनों अपने घर के भीतर झांक कर झुनिया को देखते हैं। उस समय की झुनिया की अन्तःबाह्य स्थितियों का चित्रण करते हुए उपन्यासकार अपनी ओर से कह रहा है-

व्याख्या-अपने मन में झुनिया के प्रति ममत्व का भाव लेकर धनिया और होरी ने घर के किवाड़ी के दराज में से उसकी स्थिति भांपने के लिए झाँका। उन्होंने देखा कि सामने दीवट पर कड़वे तेल का एक दीपक जल रहा है। उसके सामने प्रकाश में उन्होंने उदास एवं निराश-सी झुनिया को बैठे हुए देखा। अपने भविष्य के प्रति एक प्रकार की अनिश्चितता के कारण उसकी मुद्रा अजीब-सी हो रही थी। झुनिया ने अपना सिर अपने घुटनों पर रखा हुआ था और उसके चेहरे का रुख जैसे अपने भाग्य का निर्णय सुनने-जानने के लिये दरवाजे की ओर ही था। उपन्यासकार उस्की मनः स्थिति का सहज मनोविज्ञान से विश्लेषण करते हुए आगे कहता है-उस अन्धियाले से वातावरण में जैसे वह खो-से गये उस आनन्द के उल्लास एवं भाव की खोजने का प्रयत्न कर रही थी कि जो गोबर के साहचर्य एवं प्रेम-दिलासों में उसने कुछ ही देर पहले अनुभव किया था। जो उसकी उमंगों भरे भविष्य की कल्पनाओं का क्षणिक आधार बनकर सहसा गोबर की बेवफाई और उसकी माँ धनिया की प्रताड़ना के कारण अब विलुप्त ही गया था। लेखक का भाव यह है कि व्यक्ति कल्पना के आनन्द में भविष्य के अनेक सुन्दर चित्र मन में ही बनाता है, पर वास्तविकता का एक ही झटका उसे ध्वस्त करके रख देता है। वह अपने-आपको लुटा-लुटा-सा अनुभव करने लगता है। कुछ इसी प्रकार की स्थिति उस समय झुनिया की भी रही थी। झुनिया गोबर के प्रेम के वशीभूत होकर, उसका गर्भ धारण करने एक प्रकार से मुसीबत में फंस गई थी। उस पर झुनिया और धनिया के व्यंग्य-वचन-रूपी बाण् ने उसके मन-मस्तिष्क को और भी ध्वस्त तथा घायल कर दिया था। जिस प्रकार आहत और थका-मांदा यात्री अपनी थकान और जलन मिटाने के लिये किसी वृक्ष की छाया खोजता है,

उसी प्रकार मानसिक रूप से आहत और धकी मांदी झुनिया भी इस समय किसी ऐसे आश्रय की खोज में थी कि जहाँ बैठकर वह अपने तन-मन के ताप को शान्त कर सके। गीबर के प्रेम के कारण उसे एक भवन, अर्थात् आश्रम मिल गया था, वह उसे पाकर अपने-आपको सुखी एवं सुरक्षित भी अनुभव करने लगी थी। पर उसे अपने घर के द्वार पर पहुँचा कर स्वयं एकाएक गायब हो जाने के कारण, उस पर गोबर की माँ की झिड़कियों आदि के कारण वह अनुभव कर रही थी कि उसके सुख के विचार और आश्रय अलादीन के जादुई खेल के राजमहल के समान ही क्षणिक एक एवं अस्थाई झलक मात्र ही प्रमाणित होकर रह गये है। अब अपना भविष्य उसे एक ऐसे भयानक दानव के फैले मुख के समान प्रतीत होने लगा था, जो कि अभी-अभी उसे अपनी दाड़ों में कटकटा कर सारे का सारा एक साथ निगल जायेगा- अर्थात् उसके अस्तित्व को भी सुखद सपनों के समान पूर्णतया समाप्त कर देगा।

भाव यह है कि कल्पना में, जीवन में उमंगों एवं जोश में व्यक्ति अनेक प्रकार के सुखद ताने-बाने बुनकर अपने आप को निश्चिन्त-सा समझने लगता है, परन्तु जीवन के कटु यथार्थ का एक ही झटका उसके काल्पनिक सुखों को ही भूमिसात नहीं कर देता, बल्कि उसके अस्तित्व को भविष्य के सामने भी एक प्रश्न चिन्ह लगा देता है।

19. संकेत- मालती बाहिर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हंसी ही हंसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है। और जिए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हंसती है, इसलिये कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना, इसलिये नहीं है कि वह चहकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिये करे। नहीं, वह इसलिये चहकती है, और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।

प्रसंग प्रस्तुत पंक्तियाँ 'गोदान' उपन्यास के पन्दरहवें अध्याय के आरम्भ से ली गई है। इन पंक्तियों में उपन्यासकार डॉ. मालती का चरित्र-चित्रण करने के लिए उसके अन्तः- बाह्य व्यक्तित्व का विश्लेषण कर रहा है। उपन्यासकार यह बताना चाहता है कि पश्चिम में शिक्षित होकर और वहाँ के रहन-सहन को अपनाकर भी मालती का अन्तःकरण पाश्चात्य रंगों में रंगकर ही नहीं रह गया था। बाहिर से जितनी वह आधुनिका एवं चंचल दिखाई देती थी, आन्तरिक दृष्टि से उतनी ही वह सार-ग्रहिणी शक्ति रखती थी। वास्तव में वह कर्त्तव्य-भावना से अनुप्राणित होकर ही सब कुछ किया करती, इन्हीं भावों को स्पष्ट करते हुए उपन्यासकार कहता है-

व्याख्या-तितली और मधुमक्खी का उदाहरण देकर मालती के व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हुए उपन्यासकार कहता है कि मालती का व्यक्तित्व बाहिर से तो तितली के समान ही प्रतीत होता था। अर्थात् जिस प्रकार तितली उड़कर किसी भी फूल पर पहुंच जाती थी, उसी प्रकार मालती भी प्रत्येक आकर्षक वस्तु और व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित प्रतीत होती थी। किन्तु उसका आन्तरिक व्यक्तित्व मधुमक्खी के समान था। अर्थात् जिस प्रकार मधुमक्खी प्रत्येक फूल पर जाकर उसका रस लेकर मधु का छत्ता तैयार करती है, वह आन्तरिक दृष्टि से कठोर किन्तु संयमशील होती है, उसी प्रकार मालती भी जीवन के प्रत्येक पहलू एवं सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व से जीवन के सारतत्व को ग्रहण करने की अद्भुत शक्ति रखती थी। लोगों का अनुमान था कि उसके जीवन में केवल हंसी-खुशी और आनन्द का भाव ही सब-कुछ है। किन्तु वास्तविकता ऐसी न थी क्योंकि केवल गुड़ खाकर अर्थात् हंसी का आनन्द लेकर ही कोई व्यक्ति न तो जीवित ही रह सकता है और न जीवन को वास्तविकता को ही भोग-जान सकता है। ऐसा होने से जीवन में स्थिरता और जड़ता आ जाती है। स्थिरता, जड़ता या एकरसता में ही जीवन का सुख कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। अतः मालती जीवन में कुछ वसूलने के लिए ही हंसती है। मालती के चहकने और चंचलता प्रदर्शित करने का भी यह अर्थ नहीं है कि इसी को वह जीवन का सार-तत्व मानती है। न ही यह बात है कि उसने अपने अहं का विस्तार इस सीमा तक कर लिया है कि उसे केवल अपने ही व्यक्तित्व को, अपने सुख और आनन्द को ही बनाये रखने की चिन्ता है। नहीं, न तो वह आत्म-सीमित है और न घोर स्वार्थिनी ही कि जिसे अपने सिवाय अन्य किसी की चिन्ता ही नहीं रहती। इसके विपरीत उसके चहकने और आनन्द-विनोद से हंसते रहना उसके कर्त्तव्य का एक अंग बन चुका है। अर्थात् वह अपने समस्त कर्त्तव्यों का पालन भी प्रसन्नता के भाव से ही करना उचित मानती है। वह स्वयं हंसकर या प्रसन्न रहकर अन्य सम्पर्क में आने वाले लोगों को भी उसी आनन्दमय लोक में रखना अपना कर्त्तव्य मानती है। ऐसा करके वह अनुभव करती है कि अपने कर्त्तव्य का पालन कर लेने के बाद अब वह सन्तुष्ट है। उसका दायित्व निभ गया है, अतः वह स्वस्थ और हल्की है। भाव यह है कि मालती का चहकना, हँसना या आनन्दित रहते हुए उसके कर्त्तव्य-जीवन का एक अंग बन चुका है। उसके बाहरी एवं भीतरी असंतुलन में ही उसके जीवन का वास्तविक सन्तुलित सार है।

विशेष-तितली और मधुमक्खी के उपमान विशेष महत्वपूर्ण एवं साभिप्राय हैं। ये कोमलता और कठोर कर्तव्य परायणता के भी प्रतीक हैं। अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी प्रवृत्तियों के भी द्योतक हैं। तितली और मधुमक्खी की कठोर साधना भी है और मालती को उपन्यासकार ने उसी साधना का प्रतीक बनाकर चित्रितं किया है। छोटे-छोटे वाक्य एवं भावानुरूप भाषायी प्रयोग विशेष दृष्टव्य हैं।

द्रुतपाठ के कवि

लघुउत्तरीय प्रश्न

5.9 भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कृतित्व

भारतेन्दुजी आधुनिक काल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। उन्होंने जीवन में अनेक रूपों को भोगा। उन्होंने कविता, नाटक, कहानी, निबन्ध, उपन्यास इत्यादि की विधाओं में कार्य किया। सम्पादन भी किया और अनुवाद भी। भारतेन्दु का जन्म सन् 1850 में हुआ था। हिन्दी-साहित्य का यह मेधावी साहित्यकार केवल 34 वर्ष तक जीवित रहा और इसकी मृत्यु सन् 1884 में हो गयी। जीवन के छोटे से काल में जो कुछ भी इस लेखक ने हमें दिया, वह शायद ही कोई अन्य पुरुष इस अवस्था में दे सकता था। भारतेन्दु जी एक महान राजनीतिज्ञ, समाज सेवी और साहित्यकार थे। इन्होंने समाज को खुली आँखों से देखा, उसे परखा और इस विषय पर अपनी भावनाएँ प्रकट की। इस महान् साहित्यकार ने इस युग की भाषा एवं साहित्य पर प्रभाव डाला।

भारतेन्दुजी की मृत्यु माघ कृष्णा 6 सं. 1941 वि. को चौतीश वर्ष चार माह की अल्पायु में हुई। भारतेन्दुजी के अन्तिम दिवस चिन्तामय रहे। उनके पारिवारिक जन साहित्य-सेवा तथा देश-सेवा में धन के व्यय को अपव्यय समझते थे। आपको अपने भाई से अलग होना पड़ा।

अग्रवाल वैश्य में इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीरचन्द्र थे। इनके पुत्र फतहचन्द्र के पुत्र हर्षचन्द्र और हर्षचन्द्र के पुत्र गोपालचन्द्र थे। हरिश्चन्द्र, गोपालचन्द्र के पुत्र थे। गोपालचन्द्र भी कवि थे और उनका उपनाम गिरधरदास था। बचपन से ही भारतेन्दु को साहित्यिक वातावरण मिला था और उसके अंकुर पनप रहे थे।

15 वर्ष की अवस्था में ही इनको परिवार के साथ जगन्नाथ धाम जाने का अवसर मिला। इसी समय उन्हें बंगाल में जनजागरण के उगते हुए नव-साहित्य को देखने व पढ़ने का अवसर मिला। इस साहित्य का उन पर प्रभाव पड़ा। वहाँ से लौटने के पश्चात् वह घर में चैन से न बैठ सके। केवल सत्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'कवि वचन सुधा' नाम की एक पत्रिका निकाली। इसके पश्चात् उन्होंने भारतेन्दु मैगजीन नामक पत्रिका निकाली। आरम्भ में तो इन पत्रिकाओं में ब्रजभाषा की कविताओं को ही स्थान मिला, किन्तु बाद में इसमें सभी प्रकार की कविता, गद्य लेखन इत्यादि को भी स्थान मिला।

भारतेन्दु शासन के कृपापात्र और कोष-भाजन दोनों बने शासन ने अवैतनिक मजिस्ट्रेट नियुक्त किया, किन्तु अपने सुधारात्मक रवैये के कारण उन्होंने कई लेख लिखे और उन्हें राज- द्रोह की सजा दी गई। भ्रमण के कारण उन्हें बहुत्त अनुभव हुआ। जगह-जगह उन्होंने सुधार के लिए भाषण भी दिए। ये यात्राएँ उनके लिए वरदान सिद्ध हुई। इन्होंने कवि सम्मेलनों, मुशायरों में भी काफी योगदान दिया। भारतेन्दु जहाँ एक ओर धार्मिक वातावरण से परिपूर्ण थे, वहीं उन्हें रीतिकालीन प्रवृत्तियों ने भी बहुत प्रभावित किया। उन्होंने सभी विधाओं में लेखनी चलाई एवं समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। आचार्यशुक्ल लिखते हैं-"अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा से केवल एक और तो वे पचाकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं, दूसरी और बग देश के माइकल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में शुमते हुए नव-भक्तमाल गूचते हुए दिखाई देते हैं, दूसरी ओर मन्दिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हंगी रड़ाते और स्त्री-शिक्षा और समाज-सुझाव पर व्याख्यान देते हुए पाए जाते हैं। प्राचीन और नवीन के इस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें सन्देह नहीं। भारतेन्दु ने नाटक, काव्य धर्म इत्यादि पर रचनाएँ की है। कहा जाता है इन्होंने कुल 175 ग्रन्थ लिखे हैं। कुछ सप्पादित भी है। हिन्दी के अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत उर्दू, मारवाड़ी, बंगाल, मराती व पंजाबी भाषाओं में भी रचनाएँ की हैं।

नाटक-भारतेन्दु ने अनुवादित, रूपान्तरित और मौलिक नाटक लिखे। अनुवादित-रत्लावली नाटक, पाखण्ड विडम्बना, धनंजय विजय, कर्पूर-मजरी, मुद्रा-

राक्षस, दुर्लभ बन्धु।

रूपान्तरित-विद्या-सुन्दर, सत्य-हरिश्चन्द्र ।

मौलिक (अ) नाटक-प्रेम-जोगिनी, चन्द्रावली, भारत-जूननी, नील-देवी, सती प्रताप। (ब) प्रहसन-वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, विषष्य विषमौषधम, अन्धेर नगरी।

काव्य-भारतेन्दु प्राचीन और नवीन कड़ियों को जोड़ने वाली कड़ी थे। उनका काव्य दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है- (1) परम्परागत और (2) नवीनोन्मुख। परम्परागत काव्य के अन्तर्गत भारतेन्दुजी की भक्ति-विषयक और श्रृंगापरक रचनाओं को लिया जा सकता है। नवीनोन्मुख काव्य में देश-भक्ति, जाति-भक्ति, समाज-सुधार आदि विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। प्रेम सम्बन्धी रचनाओं में निम्नलिखित रचनाएँ उल्लेखित हैं-

'प्रेम-फुलवारी', 'प्रेम-प्रताप', 'प्रेम-मधुरी', 'प्रेम-मालिक', 'प्रेम-तरंग', आदि सात पुस्तके प्रेम पर ही हैं। 'होली', 'मधुमुकुल', 'वर्षा-विनोद', आदि में भगवान की विविध क्रीड़ाओं का वर्णन है।

निबन्ध-भारतेन्दुजी ने समाज सुधार, भारत की दुर्दशा के लिए अनेक निबन्ध लिखे। उनके मित्र मण्डल में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, अंबिकाराम इत्यादि प्रमुख है, उन्होंने इनसे अनेक निबन्ध लिखवाये।

धर्म-ग्रन्ध-भारतेन्दुजी वैष्णव भक्त थे। आप प्रेम-लक्षण-भक्ति में विश्वास करते थे। आपकी सभी रचनाओं में भक्ति का यह रूप मिलता है। भक्ति भावना से प्रेरित होकर भारतेन्दु ने 'भक्त-सर्वस्व', 'वैष्णव-सर्वस्व', 'वल्लभीय-सर्वस्व', 'त्वदीय सर्वस्व', 'भक्ति- सूत्र वैजयन्ती', 'सर्वोत्तम स्त्रोत भाषा', 'उत्तरार्द्ध भक्त-माल', 'उत्सवावला', 'वैशाख माहात्म्य' और 'अष्टादश पुराणोपक्रमणिका' की रचना की।

राज-भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ-भारतेन्दु ने राजनीतिपूर्ण रचनाएँ भी कीं। उनकी राजभक्ति अन्य राजभक्ति न होकर स्वस्थ आधार पर थी। ब्रिटिश राज्य की भलाई और बुराई दोनों पर उनकी दृष्टि थी। अंग्रेजी राज्य में भारत की जो उन्नति हुई, उसके वे प्रशंसक रहे, किन्तु अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध उन्होंने सदैव क्षोभ भी व्यक्त किया। ड्यूक के सम्मान में समर्पित 'सुमनांजलि' कृति राजभक्ति से पूर्ण है। इसके अतिरिक्त 'भारत वीरत्व', 'विजय वल्लरी', 'रिपनाष्टक', 'वैजयन्ती विजय वैजयन्ती' आदि कृतियाँ भी इसी प्रकार की हैं।

इतिहास-भारतेन्दुजी इतिहास के प्रेमी थे। उन्होंने सर्वप्रथम खोजपूर्ण इतिहास लिखने का प्रयास किया। आपके इतिहास सम्बन्धी कितने ही लेख एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुए। भारत के गौरवपूर्ण अतीत को चित्रित करने के साथ-साथ आपने मुहम्मद इतपत के कवि ।

साहब तथा प्रान्नर, जर्मनी आदि के ऐतिहासिक पुरुषों का भी वर्णन किया है। 'काश्मीर कुसुम', बूंदी का राजवंश', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'खत्रियों की उत्पत्ति' एवं 'उदयपुरोदय' आदि आपको खोज पूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

कथा-साहित्य-कथा-साहित्य में भी भारतेन्दुजी पथ प्रदर्शक के रूप में आते हैं। कया साहित्य में भारतेन्दुजी अधिक न लिख सके, किन्तु अल्पायु में जो कुछ भी उन्होंने लिखा, वह महावपूर्ण है। 'रामलीला', 'हमीर हठ', 'राजसिंह', 'एक कहानी', 'कुछ आप बीती और कुछ जग बोती', 'सुलोचना', 'मरालसोपाख्यान', 'शीलावती', 'सावित्री-चरित्र' आदि को आपके कथा-

साहित्य के अन्तर्गत लिया जा सकता है। उपन्यासे-पूर्ण-प्रकाश, चन्द्रप्रभा, रामायण-समय, बादशाह दर्पण इत्यादि उल्लेखनीय व्यंग्य और हास्य रचनाएँ स्थापा, बन्दर समा, बकरी-विलाप, बसन्त-होली के अन्तर्गत 16 दोहों में वर्णन है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रेम, भक्ति इत्यादि सम्बन्धी दोहे, कवित्त, सवैये, गजल, पद, मुकरी, दोसुखने इत्यादि की रचना की। वे रसा के नाम से कविता लिखते थे।

प्रकाशन के क्षेत्र में सुन्दरी तिलक, पावस कवित्त संग्रह का प्रकाशन किया। उन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। साथ ही कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मेगजीन, बालाबोधिनी तथा भगवद्-भक्ति तोषिणी इत्यादि भी प्रकाशित की। राधा-कृष्णादास ने नाटक, आख्यायिका, उपन्यास, काव्य, स्त्रोत, अनुवाद या टीका, परिहास, धर्म सम्बन्धी इतिहास, राज-भक्ति सूचक व्याख्यान आदि बारह शीर्षकों में क्रमशः बीस, आठ, अट्ठाइस, सात, आठ, अठारह, जात, नौ, सत्ताइस, तेरह, अठारह, पचहत्तर अन्यों का योग करते हुए 248 रचनाओं का उल्लेख प्रेम- फुलवारी में किया है।

उनकी भाषा मंजी हुई, बृज रही है। व्याकरण सम्मत और मधुर है। मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग किया है, अपनी एक पुस्तक 'हिन्दीभाषा' में उन्होंने गद्य के अनेक उदाहरण दिये हैं, जिनमें संस्कृत बाहुल्य भाषा, अन्य य में संस्कृत के कम रूप उसमें तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों का बाहुल्य है, विदेशी शब्द भी है, वह अलंकृत एवं प्रसाद गुण से से सम्पन्न है, जहां उन्हें व्यग्य करना होता था, वहाँ वे कहावतों, मुहावरों का विशेष प्रयोग करते थे। विदेश शब्दों में, ग्रेजुएट, जुदा, कलाम, जहन्नुम, सल्लाह इत्यादि शब्द हैं।

विषयानुकूल, भावानुकूल और पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग नाटकों और अन्य स्थलों पर किया है, वह विविधता देने वाली है। विरह के प्रयोग में भाषा रस पूर्ण है, व्यंग्य में अलग वह गंभीर और प्रभाव पूर्ण है, इन अलंकारों का उसमें सहज प्रयोग हुआ है।

5.10 रामकुमार वर्मा के एकांकी साहित्य का परिचय

हिन्दी एकांकीकारों में डाक्टर रामकुमार वर्मा का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। डॉ. वर्मा की एकांकी कला बहुमुखी है। उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, पौराणिक, समस्या प्रधान, भौतिक तथा हास्य व्यंग्य पूर्ण एकांकियों की रचना की है। डॉ. वर्मा सभी प्रकार के एकांकियों की रचना करने में सफल रहे है, किन्तु ऐतिहासिक एकांकियों ने उनकी प्रतिभा सबसे अधिक निखरी है। जैसे- 'चारुमित्रा', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'तैमूर की हार', 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'विक्रमादित्य', 'समुद्रगुप्त', 'शिवाजी', 'भुक्तारिका', 'कौनुदो महोत्सव', 'कलंक रेखा', 'स्वर्णश्री', 'प्रतिशोध' आदि उनकी उत्कृष्ट ऐतिहासिक रचनाये है।

डॉ. वर्मा ने ऐतिहासिक एकांकियों की रचना से पूर्व विस्तृत ऐतिहासिक अध्ययन किया है। उन्होंने देश तथा समाज की तत्कालीन परिस्थितियों का पूर्ण अध्ययन किया तथा उस संस्कृति

के पदार्थ स्वरूप को एकियों में स्थान देने के लिए प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों का आश्रय लिए था. इसी से उनके ऐतिहासिक एकांकियों में उत्कालीन वातावरण और पात्रों के वास्तविक व्यक्तित्व का यथार्थ चित्रण मिलता है।

डॉ. वर्मा के ऐतिहासिक एकांकियों की एक अन्य प्रमुख विशेषता है संकलन त्रय का पूर्ण निर्वाह । कया-वस्तु, काल तथा स्थान इन तीनों का संकलन घटनाओं को ऐसा गुम्फित कर देता है कि वे केन्द्रित होकर एक ही दृश्य में सिमट जाती है। पात्रों का संयोजन घटनाओं के प्रवाह में होता है। वर्मा जी कुछ ऐसे काल्पनिक पात्रों की रचना करते हैं, जो प्रमुख पात्र को चारित्रिक विशेषताओं, उसके स्वभाव एवं व्यक्तित्व को उभाकर एक स्पष्ट एवं सुनिश्चित रूप दे सके और इन सबका चित्रण परिस्थिति के अनुरूप हो तथा यथार्थता एवं सत्यता लिये हुये हो।

विषय की दृष्टि से डॉ. वर्मा के एकांकियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-एक तो वे एकांकी है, जिनमें प्राचीन भारतीय उदात्त आदर्शों को चरितार्थ किया है। दूसरे वे एकांकी है, जिसमें सौन्दर्य, प्रेम और यौवन की समस्याओं को प्रमुखता दी गई है। ये समस्याये भी दो प्रकार की है, एक वे, जिनमें पति-पत्नी की पारस्परिक प्रेम सम्बन्धी समस्याओं को चित्रित किया है तथा दूसरे वे, जिनमें परिवार की सीमा से बाहर उत्पन्न प्रेम अथवा काम सम्बन्धी समस्याओं को चित्रित किया है। जहाँ उन्होंने पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों और उनसे उत्पन्न सघर्षों को चित्रित किया है, वहाँ पत्नी के चरित्र में उदात्त भारतीय आदर्शों से परिपूर्ण नारी का रूप प्रस्तुत किया है।

वर्मा जी के एकांकी चारित्रिक द्वन्द्व प्रधान है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ एकांकियों की रचना केवल चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व को दर्शाने के लिये ही की गई है। 'औरंगजेब की आखिरी रात' नामक एकांकी में औरंगजेब का मानसिक ऊहापोह, 'परीक्षा' में प्रो. केदार तथा 'नहीं का रहस्य' में प्रो. हरिनारायणन के मन की उथल-पुथल में चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व को देखा जा सकता है। 'एक तोला अफीम की कीमत' में मुरारी मोहन की दबी हुई तथा अपूर्ण इच्छाओं में यह द्वन्द्व और भी अधिक स्पष्ट हुआ है। चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के कारण ही उनके एकांकियों में औत्सुक्य बना रहता है, जिससे वे पाठकों तथा दर्शकों के लिये बहुत प्रिय तथा प्रभावशाली बन गये हैं।

अभिनेयता की दृष्टि से वर्मा जी के एकांकी बहुत सफल हैं। रंगमंच व्यवस्था को दृष्टि में रखकर ही उन्होंने एकांकियों की रचना की है। एकांकी की कथावस्तु के अनुरूप स्टेज की साज-सज्जा का उन्होंने बहुत ध्यान रखा है।

वर्मा जी के सामाजिक एकांकी भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। स्वयं एकांकीकार का कथन है- "जीवन के स्वाभाविक गति प्रवाह को एक बल देना तथा उसकी दिशा में झुकाव ला देना ही घरी नाटक रचना का मुख्य उद्देश्य रहा है। अपनी इस कला का प्रयोग मैं सामाजिक एकांकियों तथा नाटकों में विशेष रूप से कर सका हूँ।" इस उक्त कथन से एकांकीकार की सामाजिक एकाकिया म पाइ जान वाली मूल भावना पर प्रकाश पड़ता है। उनका प्रथम सामाजिक नाटक 'बादल की मृत्यु' 1930 में प्रकाशित हुआ था। उनके निम्न एकांकी भी सामाजिक है और समय- समय पर प्रकाशित हुए हैं। 'परीक्षा', 'एक्ट्रेस', 'सही रास्ता', 'आशीर्वाद', 'उत्सर्ग', '18 जुलाई की शाम' आदि। लगभग सभी सामाजिक एकांकी स्त्री मनोविज्ञान से सम्बन्धित हैं। इन एकांकियों के नारी पात्र अपने चरित्र में सजीव आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार वर्मा जी ने सामाजिक एकांकियों के स्वाभाविक गति प्रवाह को बलपूर्वक आदर्शवाद की ओर उन्मुनत किया है। सामाजिक एकाकियों की विशेषता यह है कि इनमें समाज के उन व्यक्तियों का व्यंग्य किया गया है, जिनका स्वरूप बाहर से देखने में कुछ और ही है, परन्तु आन्तरिक वास्तविकता उससे पूर्णतः चिन्न है। ऊपर से सुसभ्य तथा सुसंस्कृत होने का बाना पहनने वाले ये व्यक्ति समाज के साधारण व्यक्तियों को कितना धोखा देते हैं तथा जन-जीवन को अस्त करते हैं, उसका खुला चित्र वर्मा जी ने स्पाह किया है। इन सामाजिक एकांकियों में यथार्थ के साथ आदर्श का समन्वय हुआ है, जो कि बहुत ही व्यावहारिक है। इन एकांकियों में जिन सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है, उन पर विचार करने के लिये हमें बरबस विवश होना पड़ता है।

उक्त समस्त विवेचन के पश्चातु यह कहना उचित ही है कि वर्मा जी के एकांकियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे कलात्मकता से सम्पन्न है। उनकी भाषा में लालित्य, कचित्य को सुमधुरता एवं सूक्ष्म सांकेतिकता है। इन्होंने मध्ययुगीन इतिहास को पृष्ठभूमि के रूप में चुना है। इसी से उनके ऐतिहासिक एकाकियों में विशेष रूप से नैतिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई है। 'समुद्रगुप्त', 'कौमुदी महोत्सव', 'विक्रमादित्य', 'ध्रुवतारिका' आदि एकांकियों में भारतीय आदशों की उच्चता, पावनता, सत्यनिष्ठा और प्राचीन सांस्कृतिक गौरव का चित्रण है. जिनमें राजाओं के शौर्य, स्वाभिमान, देशभक्ति तथा स्वातन्त्र्य प्रेम आदि उदात्त गुणों का चित्रण किया गया है।

उक्त समस्त विवेचन में बर्मा जी के जिन-जिन एकांकियों का नामोल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त भी उनके अनेक एकांकी प्रकाशित हुये हैं। 'चम्पक' में एकांकीकार की कला बहुत परिष्कृत है। 'पृथ्वों का स्वर्ग', 'फैल्टहैट', 'कवि पतंग', 'छींक' आदि इनके हास्य एवं व्यंग्य प्रधान एकांकी है। 'चन्द्रलोक का प्रथम यात्री' विशुद्ध वैज्ञानिक एकांकी है, जो कि वैज्ञानिक उपलब्धियों के आधार पर लिखा गया है। 'रूप की बीमारी' तथा 'अन्धकार' भी उनके साधारण एकांकी है। 'रजनी की रात' समस्या प्रधान एकांकी है। 'राजरानी सीता' एक पौराणिक एकांकी है। 'दुर्गावती' मेगढ़ामाडला की महारानी दुर्गावती का वृत्तान्त है, साथ ही उनके पुत्र वीरनारायन और दीवान धारासिंह के शौर्य और कौशल का चित्रण है।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि वर्मा जी के समस्त एकांकी ऊँची मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। उनकी पृष्ठभूमि भारतीय प्राचीन संस्कृति के उदात्त आदर्शों से अनुप्राणित है। इन्होंने अब्य तथा दृश्य दोनों तत्वों को अपने एकाकियों में समन्वित किया है। इसी कारण रंगमंच पर सफलतापूर्वक इनके एकांकियों का मंचन किया जा सकता है। उनके समस्त एकांकी सफल एकांकी है।

5.11 जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी कला का सामान्य परिचय

एकांकीकार जगदीशचन्द्र माथुर का रामान्य परिचय-आपका प्रथम एकांकी 'मेरी बाँसुरी' सरस्वती में सन् 1936 में प्रकाशित हुआ और उसी के साथ आपने हिन्दी एकांको नाटक के क्षेत्र में पदार्पण किया। आपके कई एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपने भारतीय तथा यूरोपीय कई नाटककारों एवं एकांकीकारों का अध्ययन किया और अपनी लेखनी की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता प्रदान की है। उनके ही शब्दों में, वह कभी किसी विशेष लेखक के अनुगामी नहीं बने। वह नयी राह के आग्रही रहे और नये तये प्रयोग करते रहे। जगदीशचन्द्र माथुर के एकांकियों को सामान्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-व्यंग्ययुक्त एकांकी तथा ऐतिहासिक आदर्शवादी एकांकी। प्रथम कोटि के एकांकियों मे आज के सभ्यसमाज की समस्याओं पर तीखा व्यंग्य है।

इन्होंने व्यंग्य और नाटकीयता द्वारा पात्रों के चरित्र को उभारा है। अधिकांश पात्र विचारों के प्रतीक बन गए हैं। अभिनय के प्रति माथुर साहब की रुचि आरम्भ से ही रही है। इसलिए अपने एकांकी नाटकों में आपने अभिनेयता पर विशेष बल दिया है।

संवाद अथवा कथोपकथन-जगदोशचन्द्र माथुर के एकांकी नाटक अभिनय के लिए लिखे गये हैं। अतएव इनके संवाद ऐसे हैं जिन्हें अभिनय करते समय पात्र आसानी से बोल सकें। इन संवादों के वाक्य छोटे-छोटे हैं। इनमें पर्याप्त गति है-वे कथा को प्रवाह भी प्रदान करते हैं और पात्रों के चरित्र का उद्घाटन भी करते जाते हैं।

देश-काल-बदलते हुए गाँव के ढाँचे और झूठे राजनीतिक जागरण के परिणाम इस नाटक में भली प्रकार दिखाए गए हैं। शहर के आदमी के दिमाग में अब भी गाँव स्वप्नलोक है। परन्तु वहाँ जाकर रायसाहव व उनके परिवार का मोह भंग हो जाता है। गाँव के लोग सीधे- सादे नहीं रह गये। वहाँ बहुत छोटे दर्जे की पॉलिटिक्स चलती है। गाँव और नगर की समस्याएँ कितनी भिन्न है। यह भी नाटककार ने उजागर करके दिखा दिया है।

भाषा-शैली-एकांकी की भाषा चलती हुई, व्यावहारिक हिन्दी है जिसमें अरबी, फारसी, अंग्रेजी के शब्दों के साथ ग्रामीण शब्दों का भी समावेश पाया जाता है। एक-दो स्थानों पर मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया गया है। भाषा ठेठ मध्यमवर्गीय शिक्षित समुदाय द्वारा प्रयुक्त है।

श्री भुवनेश्वर प्रसाद का कारवाँ जिस प्रकार एकांकी के क्षेत्र में एक परिवर्तन लाया, उसी प्रकार 'भोर का तारा' ने साहित्य-गगन को एक विशिष्ट आभा से परिपूर्ण कर दिया है।

'ओ मेरे सपने' और 'भोर का तारा' के प्रणेता में जगदीशचन्द्र माथुर प्रबल प्रतिभा सम्पन्न आधुनिक एकांकीकार है, साथ ही रंगमंचीय कला पर उनका पूर्ण अधिकार है।

5.12 लक्ष्मीनारायण लाल के एकांकी साहित्य का परिचय

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल एक सुविख्यात एकांकीकार हैं। आपने सामाजिक, पौराणिक, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक सभी प्रकार के एकांकी लिख कर एकांकी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। लक्ष्मीनारायण मिश्र की तरह आपने भी सामाजिक समस्याओं को लेकर एकांकियों की रचना की है। प्रारम्भ में आपने ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियों की रचना की किन्तु बाद में सामाजिक समस्याओं की ओर आपका ध्यानकर्षण हुआ और आपने उत्कृष्ट कोटि के सामाजिक एकांकियों का सर्जन किया। आपके प्रमुख एकांकी संकलनों में ताजमहल के आँसू, पर्वत के पीछे, नाटक बहुरंगी, नाटक बहुरूखी, दूसरा दरवाजा, खेल नहीं नाटक आदि हैं।

(1) 'ताजमहल के आँसू' में उर्वशी, महाकाल का मंदिर, ताज महल के आँसू, जहाँआरा का स्वप्न, नूरजहाँ की एक रात, सीमान्त का सूरज, गाँव का ईश्वर, सात एकांकी संकलित

(2) 'पर्वत के पीछे' में छः एकांकी पर्वत के पीछे, सुबह होगी, नई इमारतें, मड़वे है। भोर, धुएँ के नीचे, कैद से पहले, संकलित हैं।

(3) 'नाटक बहुरंगी' में मम्मी ठकुराइन, दो मन चाँदनी, सुबह से पहले, औलाटी का बेटा, बाहर का आदमी, शाकाहारी, शरणागत, गली की शांति, चौथा आदमी, काल पुरुष और अजन्ता की नर्तकी, मैं आइना हूँ, जादू बंगाल का, वारह एकांकी संकलित है।

(4) 'नाटक बहुरूपी' में ग्यारह एकांकी है-गुड़िया, वरुण वृक्ष का देवता, बदल आ गए, मीनार को बाहें, हम जागते रहे, रावण, हँसी की बात, ठण्डी-छाया, मोहिनी कथा, गदर वसन्त ऋतु का नाटक

(5) 'दूसरा दरवाज़ा' में छह एकांकी है- 'केवल तुम और हम, दूसरा दरवाजा, फिर बताऊँगी, धीरे बहो गंगा, हाथी घोड़ा, चूहा, काफी हाउस में इन्तजार।

(6) 'खेल नहीं नाटक' में आठ एकांकी है-'अखबार, परिचय, शहर, अप्रासंगिक, खेल, एक घंटा, नहीं क्रिकेट।

कथानक की दृष्टि से इन एकांकियों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. सामाजिक (क) जनसमाज- 'सुबह होगी' 'मड़वे का भोर' धुएँ से नीचे, कैद से पहले, शहर, मम्मी ठकुराइन, चौथा आदमी, दो मन चांदनी, सुबह से पहले, वारह का आदमी, शाकाहारी, गली की शांति, गुड़िया, बादल आ गए, वसंत ऋतु का नाटक, हँसी को बात, मोनार की बातें।

(ख) परिवार-मैं आइना हूँ, औलादी का बेटा, ठण्डी छाया, मोहनी कथा, नई ईमारतें, धीरे बहो गंगा, काल पुरुष और अजंता की नर्तकी।

(ग) कार्यालय-अखबार, एक घंटा, फिर बताऊँगी, हाथी घोड़ा चूहा।

(घ) युवा आक्रोश-परिचय, खेल, अप्रासंगिक, केवल तुम और हम, दूसरा दरवाजा।

(ई) बंगाल की लोक-संस्कृति-जादू।

2. ऐतिहासिक (क) 5) पौराणिक शरणागत, रावण, उर्वशी, सीमान्त का (ख) प्राच्यकालीन-अरुण वृक्ष का देवता, महाकाल का मंदिर। सूरज ।

(ग) मध्यकालीन-ताजमहल के आँसू, जहाँआरा का स्वप्न, नूरजहाँ की एक रात। (घ) 1) राष्ट्रीय चेतना काफी हाउस में इन्तजार हम जागते रहें, गदर, नहीं, क्रिकेट।

सामाजिक एकांकियों में कुछ एकांकी ऐसे हैं जिनमें किसी मनोवैज्ञानिक रहस्थ का उद्घाटन किया गया है, कुछ ऐसे हैं जिनमें कुछ दार्शनिताः विचारों का उद्घाटन किया गया है। सब मिलाकर, ताजमहल के आँसू, संग्रह में आत्मिक भावुकता की पार्श्व भूमि पर आँसुओं से भीगी हुई अतीत की मौन कथाएँ संग्रहीत हैं एवं 'पर्वत के' पीछे' संग्रह के एकांकियों में सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं को मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। 'नाटक बहुरंगी' एवं 'नाटक बहुरूपी' संग्रहों के एकांकियों में रंगमंच और नाट्य-शिल्प की दृष्टि से कई प्रकार के प्रयोग किये गये हैं। 'दूसरा दरवाजा' में युवक-युवती आक्रोश एवं संत्रास के चित्र बड़े महत्वपूर्ण हैं। इनमें रंग-शिल्प की विशिष्टता मिलती है। 'खेल नहीं नाटक' में आज के समाज तथा राजनीति की विसंगतियों को नयी तकनीक के साथ प्रस्तुत किया गया है।

वस्तु-निरुपण-डॉ. लाल के एकांकियों में कोई विस्तृत कथा वस्तु नहीं होती। बस, एक मूलभाव अथवा मूल समस्या को लेकर ही वे रचे गए हैं, किन्तु वह मूल भाव अथवा मूल समस्या इतनी तीखी, प्रवल और महत्वपूर्ण होती है कि व्यावहारिक कथोपकथनों तथा रंगमंचीय कुशलता के ताने-बाने के साथ दर्शकों का मन झकझोरते हुए भी मोह लेती है। वह मूल भाव, संघष या समस्या हमारे जीवन का इतना सत्य यथार्थ होती है कि दर्शक अपने को उसमे खो देता है, लगता है रंगमंच पर वह स्वयं ही अवतरित हो मया है।

उन्होंने अपने अधिकांश एकांकियों के नाम प्रतिकात्मक रखे हैं।

हमारे समाज में समस्याएँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं और हैं, किन्तु डॉ. लाल के अपने एकांकियों के लिए उन्हीं मार्मिक एवं ज्वलन्त समस्याओं को चुना है जो पाठकों और दर्शकों को अधिक अपील करती हैं- सीधे हृदय पर चोट करती है क्योकि वे अपनी निजी समस्याएँ लगती हैं। 'सुबह होगी' एकांकी में एक बेबस लड़की अपनी नवजात बच्ची को झाड़ियों में छोड़ जाती है। समाज में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो उस लड़की को स्वीकार कर सके। एक और कहती है-"पापा तो नहीं है लेकिन वहाँ की, परिस्थितियाँ कुछ अजीब हैं। झाड़ों में फेंका हुआ, न जाने किसका बत्त्वा, न जाने किस कारण से, सो भी लड़की।" भारतीय नारी का कितना यथार्थ चित्र निम्न संवाद में मिलता है- "इस देश में जन्म से ही औरत को सिखाया ही जाता है किताब पढ़ाई जाती है कि औरत कमजोर है, सहन-शीलता उसका सौन्दर्य है, पुरुष उसका ईश्वर है..... औरत का अलग कोई अस्तित्व ही नहीं....."

'मड़वे का भोर' एकांकी में एक ऐसे परिवार का यथार्थ, कारुणिक और सजीव चित्र प्रस्तुत किया है जो सामंती चंगुल में फंसा हुआ होने के कारण अपनी लड़कियों को उनकी बिना इच्छा के अधेड़ अवस्था के व्यक्तियों के साथ बाँधने के लिए विवश होता है। 'धुएँ के नीचे' एकांकी सैक्स की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। सैक्स की समस्याओं के कारण मानसिक रूप से त्रस्त मरीजों की चिकित्सा करने वाला डाक्टर स्वयं सैक्स की समस्याओं में फँसा हुआ है। यही व्यंग्य की सबलता है। 'शहर' नामक

एकांकी में हमारे समाज की उन विसंगतियों का बड़ा स्पष्ट एवं तीखा चित्रण है, जिनके कारण सारा देश जल रहा है। यह विसंगति उन 'मार्डन' लोगों के गाल पर एक तमाचा है जो अपने स्वार्थ में अहं में, मिथ्या आदर्श में, फैशन में, उस गरीब वर्ग को भूले हुए हैं, जो उन्हें जिलाए हुए हैं, उनकी बड़ी-बड़ी हवेलियों को, बड़ी-बड़ी फैक्टरियों को अपनी पीठ पर लादे हुए हैं।

डॉ. लाल अपने एकांकी में प्रारम्भ से ही एक जिज्ञासा एवं उत्सुकता दर्शकों में उत्पन्न करने में सफल हो जाते हैं और वह उत्सुकता निरन्तर बढ़ती जाती है। दर्शक बराबर समस्या या संघर्ष के परिणाम को जानने के लिए उत्सुक बना रहता है-सांस रोके हुए समस्या के समाधन के लिए आतुर बना रहता है, जब तक कि एकांकी समाप्त नहीं हो जाता।

डॉ. लाल घटनाओं, भावों, विचारों, व्यंग्यों, संवादों का ऐसा सामंजस्य स्थापित करते हैं कि आश्चर्य होता है। संक्षिप्तता, प्रभावऐक्य, ध्यानाकर्षण और सामजस्य की कला उनके एकांकियों में उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है। 'खेल नहीं नाटक' के एकांकियों में ये सारे गुण गुण विशिष्ट रूप से मिलते हैं। इन एकांकियों के सम्बन्ध में डा. लाल ने लिखा है- "इन नाटकों को पढ़कर, खेलकर, अभिनीत और प्रस्तुत कर आप शायद पाएंगे कि नाट्य-लेखन से लेकर प्रदर्शन तक कितना बड़ा परिवर्तन आया है।" पिछले तीन दर्शकों के अन्तराल में एकांकी कला में जो विकास • हुआ है, वह डा. लाल के एकांकियों से प्रकट हो रहा है।

भाषा-डॉ. लाल ने कई स्थानों पर प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है। डॉ. लाल की भाषा में एक करारा व्यंग्य और तीखापन सदैव विद्यमान रहता है। व्यंग्य-भाषा में हमारे समाज की सच्चाई का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया जाता है, जो पाठक अथवा दर्शक के हृदय पर सीधे चोट करता है। अनेक स्थलों पर भाषा में भावात्मक उमड़ पड़ती है। भावात्मक शैली में भी समाज पर करारे व्यंग्य किए गए हैं। उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज विदेशी शब्द हैं। उन्होंने लक्षणा, व्यंजना, अमिधा का प्रयोग किया है। साथ ही लोकोक्ति, कहावत एवं मुहावरो का प्रयोग है। कहीं कहीं भाषा अलंकृतं हुई वह देश, काल, वातावरण एवं पात्रों तथा सन्दर्भ के अनुकूल है। अभिनेयता एवं रंग में पकी अनुकूलता-डॉ. लाल रंगमंच के जादूगर हैं। उन्होने नाटकों में रंग निर्देश दिए हैं-पात्र, वातावरण, भाषा, दृश्य, प्रकाश, इत्यादि की दृष्टि से वे मंच के अनुकूल है एवं अभिनेयता भी है।

5.13 जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों की समीक्षा

जैनेंन्द्र जी के उपन्यासों में उद्देश्य की प्रधानता और कथानक की गौणता मिलती है। केवल कहानी सुनांना-उनका उद्देश्य नहीं है। जैनेन्द्र जी कहानी को उलझाकर उसका विस्तार नहीं करते, वे कथा के माध्यम से मानव-मन की उलझनों और गहराइयों में उतर जाते हैं। अतः कहानी तो उनके उपन्यासों में बहाना मात्र बनकर रह जाती है। कथानक की गौणता के कारण जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के अधूरे से से लगते हैं। इसलिए कथानक कथानक के शिथिलता दिखाई पड़ती है। जैनेन्द्रजी के उपन्यासों के कथानक उनको दार्शनिकता में सर्वत्र से दबे हुए हैं। दार्शनिक चिन्तन कथानक के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध कर देता है। जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों के कथानकों का गठन नैतिक प्रश्नों के आधार पर किया है। 'सुनीता', 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' के कथानकों के आधार मुख्य रूप से नैतिक हैं। 'त्यागपत्र' के कथानक का गठन पाप-पुण्य की गहन समीक्षा के आधार पर हुआ है। कथानक के प्रारम्भ में ही यह प्रश्न उठा दिया गया है कि समाज की मान्यताओं के आधार पर मृणाल को पापिनी कहा जाएंगा या नहीं। मृणाल के तथाकथित पतन के विभिन्न स्वरूपों और कारणों की विवेचना के आधार पर ही 'त्यागपत्र' का कथानक गठित हुआ है। इसी प्रकार जैनेन्द्र जी के प्रत्येक उपन्यास का कथानक किसी न किसी नैतिक प्रश्न को लेकर गठित हुआ है।

कथानक का विकास-जैनेन्द्र जी ने एक ही व्यक्ति के अन्तर्गत तक अपने को सीमित रखा है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों के कथानक व्यक्तिनिष्ठ हो गए हैं और उनमें विस्तार के स्थान पर गहरे पैठने की प्रवृत्ति अधिक है। जैनेन्द्रजी के कथानक विकास के लिए जिन घटनाओं को लिया है, वे संकेत प्रधान हैं। इस प्रकार कथानक का विकास घटनाओं से न होकर घटनाओं के संकेतों से होता है। जैनेन्द्र जी के कथानकों का संकेत प्रधान होना एक विशेषता हैं।

त्यागपत्र में मृणाल के चारित्रिक पतन की घटना का विवरण नहीं है। परन्तु इस ओर संकेत मात्र ही कर दिया है। पति द्वारा परित्यक्त होने पर, कोयले वाले की रखैल बनने की ओर संकेत करके जैनेन्द्र जी आगे बढ़ गए हैं।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में असाधारण घटनाओं का अभाव है। घटनावली के स्थान पर कथानक जीवन की सामान्य गतियों और संकेतों को लेकर ही विकसित होता है। उनके उपन्यासों में बड़ी-बड़ी घटनाएँ नहीं मिलतीं। घटनाएँ प्रायः साधारण जीवन से उत्पन्न होती हैं तथा अपने स्वाभाविक रूप से धीरे-धीरे आगे बढ़ती हैं। वह दार्शनिक चिन्तन का सूत्र पकड़कर एक विचित्र रहस्यात्मकता और मोहकता का आवरण ओढ़ लेती है। 'त्यागपत्र' में मृणाल का विवाह और पति द्वारा परित्यक्, होने पर कोयले वाले का सहारा लेना, निराश्रय होकर संसार की दृष्टि में अधिकाधिक गिरते जाना आदि सामान्य घटनाएँ हैं। 'परख' में सत्यधन का कट्टो को पढ़ाने, उसके प्रति आकर्षित होने और फिर विवाह के प्रश्न पर असमंजस होने आदि की. अत्यन्त साधारण घटनाओं को लेकर कथानक का गठन हुआ है।

असाधारण घटनाओं के अभाव में भी जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में औत्सुक्य का तत्व बना रहता है। जैनेन्द्र कहीं-कहीं कहानी के तार की कड़ियाँ तोड़ देते हैं और कहीं-कहीं घटनाओं के क्रम में उलट-फेर कर देते हैं। इस प्रकार स्वयं औत्सुक्य आ जाता है। नाटकीय आकस्मिकता की सहायता से भी जैनेन्द्र जी कौतूहल बनाये रखते हैं। 'त्यागपत्र' में मृणाल द्वारा एक परिवार में पढ़ाने का काम करना और प्रमोद का उसी परिवार में लड़की को देखने जाना 'जयवर्द्धन' में मि. हुस्टन के डिब्बे में वेष बदलकर इन्द्रमोहन का अचानक प्रवेश आदि नाटकीय आकस्मिकता कौतूहल की सृष्टि करती हैं। घटनाओं का संकेत उत्सुकता को आगे बढ़ा देता है।

अश्लील प्रसंग-जीवन का यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण करने के कारण जैनेन्द्र अपने उपन्यासों के कथानकों में ऐसे प्रसंगों का वर्णन भी कर गये हैं, जिन्हें अश्लील कहा जाता है। ऐसे प्रसंगों को जैनेन्द्र ने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है।

जैनेन्द्र जी इन्हें अश्लील नहीं मानते। इनके द्वारा वे अपने पात्र की मनोवृत्ति प्रकाशन करने का प्रयास करते हैं। उपर्युक्त प्रसंग में सुनीता जो अपने पति श्रीकांत में अटल भक्ति रखती है, वह नग्न होकर हरिप्रसन्न के मन की प्रश्थि खोलने का प्रयास करती है। सुनीता के मन में किसी प्रकार का कपट नहीं है। वह पति के चित्र को प्रणाम करके हरिप्रसन्न के पास आई है और लौटकर श्रीकान्त को सारी घटना बतला देती है

कथानक का अन्त-कथानक के उपसंहार में जैनेन्द्र जी नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा करत हैं। कहीं प्यार को महिमा बतलाते हैं, कहीं नैतिक कर्तव्य सामने लाते हैं। कहीं अहं का दमन करते हैं, कहीं अहिंसा की व्यर्थता सिद्ध करते हैं, कहीं सांसारिक ऐश्वर्य एवं सुख के प्रति अनाशक्ति एवं निसंगता को सामने लाते हैं। 'त्यागपत्र' का आरम्भ पाप-पुण्य की समीक्षा में हुआ है।

कथानकों का दुःखान्त-जैनेन्द्रजी के उपन्यासों के प्रायः सभी कथानक दुखान्त है। उनको दुःखवादी प्रकृति और दार्शनिक चिन्तन से संसार का निस्सार मानव के कारण ही कथानकों के अन्त में अपवाद छा गया है। प्रश्नान्त कथानक में वे समस्या का कोई निराकरण प्रस्तुत न कर उस पर प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं।

'त्यागपत्र', 'कल्याणी' और 'सुखदा' उपन्यास दुखान्त हैं। 'त्यागपत्र' की मृणाल निराश्रय होकर जब तिल-तिल कर मरती है, तो उसकी मृत्यु की सूचना प्रमोद के मन को ऐसा आघात लगता है कि वह जजी से त्यागपत्र दे देता है। प्रमोद आत्मविश्लेषण करता हुआ स्वार्थपरता का उद्घाटन करता है। उसके अवसाद की छाया और गहरी हो जाती है। ◘

5.14 निर्मल वर्मा का संक्षिप्त परिचय

निर्मल वर्मा नयी कहानी के अग्रणी कथाकार माने जाते हैं। इनकी कहानियों में स्वयं भोगे हुए क्षणों के समानान्तर जाने वाले जीवन्त चित्रों की अभिव्यक्ति तथा अनुभूतियों की प्रामाणिकता दर्शनीय है। इनकी कहानियों में दो दृष्टियाँ स्पष्ट रूप से उभरी यथार्थ का सम्पूर्णता को स्वीकारना और अयथार्थ को समग्रतः अस्वीकारना। नामवर सिंह के शब्दों में "निर्मल वर्मा ने स्थूल यथार्थ की सीमा पार करने की कोशिश की है। उन्होंने तात्कालिक वर्तमान का अतिक्रमण करना चाहा है, उन्होंने प्रचलित कहानी-कला के दायरे से भी बाहर

निकलने की कोशिश की है, यहाँ तक कि शब्द की अभेद्य दीवार को लाँघ कर शब्द के पहले के 'मौन जगत' में प्रवेश करने का भी प्रयत्न किया है और वहाँ जाकर प्रत्यक्ष इन्द्रिय-बोध के द्वारा वस्तुओ के मूल रूप को पकड़ने का साहस दिखलाया है।"

निर्मल वर्मा के प्रकाशित कहानी संग्रह 'परिन्दे', 'जलती झाड़ी', 'पिछली गर्मियों में', 'बीच बहस में', 'मेरी प्रिय कहानियां', 'प्रतिनिधि कहानियां', 'कव्वे और कालापानी', 'सूखा' तथा अन्य कहानियाँ हैं। 'परिन्दे' कहानी संग्रह में 'डायरी का खेल', 'पिक्चर पोस्ट कार्ड', 'सितम्बर की एक शाम' तथा 'परिन्दे' आदि सात् कहानियाँ हैं। 'जलती झाड़ी' संग्रह में दस कहानियाँ है, जिनमें 'द लवर्स', 'पराये शहर में', 'जलती झाड़ी' एवं 'लन्दन की एक रात' बहुचर्चित कहानियाँ हैं। 'कव्वे और काला पानी' संग्रह में सात कहानियाँ संग्रहीत हैं। इनमें 'दूसरी दुनिया', 'आदमी और लड़की' तथा 'कव्वे और कालापानी' उल्लेखनीय हैं। इनमे से कुछ कहानियाँ यदि भारतीय परिवेश को उजगार करती हैं तो कुछ हमें यूरोपीय जमीन से परिन्दित कराती हैं।

यह कहना, सच है कि निर्मल वर्मा की कहानियाँ विदेशो भावभूमि को लेकर लिखो गयी है, जो विशेषता लड़की और शराब के माहौल को प्रदर्शित करती है। इनमें व्यक्ति जीवन की शून्यता, नीरसता और एकान्नता के वातावरण का गहराई से अंकन किया है। निर्मल वर्मा वैयक्तिक कहानीकार है। इन्होंने व्यक्तिगत प्रेम, यौन चेतना व सम्बन्ध और उससे प्रभावित पारिवारिक संबंधों, जीवन-मूल्यों तथा आदशों का अंकन किया है। काम वासना की तीव्रता में उसके पात्र जीवन की सार्थकता देखते हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ विदेशी परिवेश के जीवन में वोदिका, चीयान्ती, विदेशी शराब, पहाड़ों, जंगलों, नीली आँखों, भूरे बालों तथा हिमानी मौसम के साथ, विदेशी महिलाओं के आगोश में प्रेम का वर्णन विशेषतः मिलता है। अतः यह कहना अस्वाभाविक नहीं है कि निर्मल वर्मा की कहानियों में अकेलापन एक अभिशाप या आतंक बनकर व्यक्त हुआ है।

निर्मल वर्मा के कहानी संसार में सामाजिक सरोकारों की न मालूम-सी मौजूदगी और समय की प्रामाणिकता का लगभग निषेध अनजाने या अनायास नहीं है। इसके पीछे इनका कलावादी व्यक्तिवादी रुझान सक्रिय है। निर्मल वर्मा न केवल 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के प्रशंसक हैं अपितु उसे खासा क्रांतिकारी करार देते हैं। इनकी कहानियों में कहानीपन कम, काव्यात्मक तरलता अध्यष्टता और रहस्यमयता का आच्छादन अधिक है। मनः स्थितियों के उद्घाटन में भाषा का जो रूप तय किया गया है, वह विशिष्ट और अप्रस्तुत बहुल है।

निर्मल वर्मा नई कहानी के प्रमुख लेखक है। नई कहानी प्रारम्भ, विकास, चरम सीमा आदि के शास्त्रीय शिल्प-विधान में न होकर सीधी और सहज होती है। इससे जीवन के एक क्षण-क्षणों, सजीव दृश्य दृश्यों का सजीव चित्रण होता है। निर्मल वर्मा की कहानियों की यह प्रमुख विशेषता है कि वे जीवन के दृश्य का एक क्षण का चित्र प्रस्तुत करती है। आलोच्य कहानी इस कसौटी पर खरी उतरती है।

पात्र-निर्मल वर्मा के पात्रों की सीमितता से सम्बन्धित उनकी कहानियाँ प्रथम पुरुष में है और लेखक अपने साथ घटित घटना का वर्णन करता है। उसका चरित्र किस प्रकार का है यह कहानी पढ़ने पर पता चलता है। वृद्ध मछुआरे तथा दो बालक कहानी में आते हैं। इस प्रकार घटना पर अधिक बल दिया है फिर भी यत्र-तत्र चित्रण बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक बन पड़ा है। यथा-

"उसने अपनी पाइप दुवारा सुलगा ली और पुराने ओवरकोट के कॉलर ऊपर कानों तक चढ़ा लिये। पानी पर तिरती धूप का एक हिस्सा वृच्चों के लट्टू-सा घूमता हुआ किनारे आ लगता था और टूट जाता था, किन्तु बूढ़े का ध्यान उधर नहीं था। मैं बहुत सोचता हुआ भी ठीक से निश्चय नहीं कर पाया कि उसकी आँखें किस खास बिन्दु पर टिकी हैं। उसकी आंखें खुली है या बन्द, यह भी सही-सही कह पाना कठिन था।

संवाद-संवाद संक्षिप्त, सुगठित, पैने और सटीक होने चाहिए जो पाठकों पर अपना अमिट छाप छोड़ सकें। संवाद पात्रों के चरित्र चित्रण में सहायक और परिस्थितियों तथा घटना 'वकास में सहायक होते हैं। वे वातावरण की सृष्टि में योगदान करते हैं। कथा की अग्रिम और त्रिगत घटनाओं की सूचना देते हैं। इस प्रकार संवाद पात्र योगदान करते हैं। कथा की अग्रिम और विगत घटनाओं की सूचना देते हैं। इस प्रकार संवाद पात्र एवं घटनाओं के सच्चे प्रकाशक होते हैं।

इस प्रकार यह नाटकीय संवाद उनकी निःसंकोचता को प्रकट कर रहे हैं और लेखक का झिझकने वाला स्वभाव भी प्रकट हो रहा है। भाषा शैली-भाषा भावों का वाहन है और शैली उनके प्रकाशन का विशेष ढंग है। इस प्रकार भाषा-शैली भावों के भली प्रकार प्रकाशन का पूर्ण साधन है। निर्मल वर्मा की भाषा बड़ी भाव-व्यंजक है। उसमें आधुनिकता के सन्दर्भ में घटित घटना का वर्णन है। वर्माजी ने इस कहानी

। द्वतपाठ के कवि में भाबों का घटना से इस प्रकार का सुन्दर तालमेल किया है जो स्तुत्य है। भाषा शुद्ध साहित्यिक और शैली चित्रात्मक है। कहीं-कहीं उसमें विवेचना का सहारा भी लिया गया है। गेली कितपर्व वातावरण- घटना तथा पात्रों में सजीवता और सत्यता दिखलाने के लिए कहानीकार देशकाल और वातावरण का चित्रण करता है। वातावरण के सजीव चित्रण से पात्र क्या परिस्थितियां स्पष्ट हो उठती हैं। जिस प्रकार रंग और तुलिका के द्वारा चित्रित चित्र से स्पष् पता चलता है कि अमुक चित्र है उसी प्रकार वातावरण का महत्व है। आधुनिक नगरों, होटलों तचा एकान्त स्थल के वातावरण के लेखक ने बड़े सजीव और आकर्षक चित्र खींचे हैं। उन्होंने उचित वातावरण का निर्वाह किया है।

उद्देश्य एवं सन्देश-लेखक का दृष्टिकोण यथार्थोन्मुख आदर्शवाद प्रतीत होता है। वह आदर्शवाद का चित्रण करता है और उपन्यास का कलेवर आदर्श के स्थान पर यथार्थ की लपेट में लिपटा है परन्तु लेखक स्वयं को एक ऐसा भोड़ देता है जो जीवन और मृत्यु के लिए अनिवार्य है। प्रश्न 7. मन्नू भण्डारी की उपन्यास कला की विशेषताएँ बताइए। उत्तर- जीवन परिचय-श्रीमती मन्नू भण्डारी का जन्म सन् 1931 ई. में राजस्थान के भागुपुरा स्थान में हुआ। आपको परिवार में साहित्यिक वातावरण मिला। आपके पिता सुखसम्पत्तिराम भण्डारी 'हिन्दी पारभाषिक शब्दकोष' के निर्माता थे। आपने हिन्दी-साहित्य में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रारम्भ से ही आपकी लेखन की ओर रुचि रही है।

महिला साहित्यकारों में आपकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं- 1. अन्य महिला साहित्यकारों ने प्रायः कविता को ही अपने जीवन लेखन का क्षेत्र बनाया।

आपने कहानी और उपन्यास लेखन को अपना क्षेत्र बनाया। 2. इन्होने नारी उन्नयन की भावनाओं का खुलकर चित्रण किया है। आपका अन्य महिला- साहित्यकारों की तरह नारी-गत संकोच उभरा नहीं है।

आजकल श्रीमती मन्नू जी दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक कालेज में अध्यापिका हैं। सुप्रसिद्ध राजेन्द्र यादव आपके पति हैं।

मन्नू जी ने कहानियों के साथ उपन्यास और रिपोर्ताज भी लिखे हैं। 'अकेली और एक पुरुष' तथा 'एक नारी' अपनी दो पुस्तकें राजेन्द्र यादव जी के सह-लेखन में प्रकाशित हो चुकी हैं। महिला कहानीकारों में मन्नू भण्डारी का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक नारी के मन का आपने बड़ी गहराई और मार्मिकता से चित्रण किया है। आपकी कहानियों में भारतीय परिवार का भी सजीव और यथार्थ चित्रण हुआ है। मन्नू भण्डारी जी की कहानियों में तथ्य और बोध नए हैं। कहानियों का शिल्प विधान सीधा-सादा और आकर्षक है। आपकी कहानियों में भाषा की सरलता और व्यंजकता रोचकता ला देती है। कहानी संग्रह-1. मैं हार गई, 2. तीन सिपाही एक तस्वीर, 3. यही सच है, 4. बिना- दिवारों का घर।

नई कहानी और मन्नू भण्डारी-नयी कहानी की कथा लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने स्त्री-पुरुष के विभिन्न सम्बन्धों, परिवार और समाज के बहुत से अन्तर्विरोधों तथा अहसास को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इनकी कहानियों में अहसास के नितान्त प्रामाणिक सन्दर्भ पूरी संवेदनशीलतां के साथ प्रगट होते हैं। कुछ लोगों ने मन्नू भण्डारी की संवेदनशीलता का विरोध किया है, लेकिन उनकी संवेदना-अतिरेक में लिजलिजी भावुकता नहीं बनती है। इनकी संवेदनशीलता जीवन की ऐसी दृष्टि देती है जो आदमी शीघ्र पढ़ने वाले कवि. को सही जिन्दगी से जोड़ती है। "मन्नू की कहानियाँ अपने परिवेश के विविध अनुभवों, मानवीय पीड़ा, मानवीय दृष्टि, अपने खुलेपन और अकृत्रिम भाषा के कारण सार्थक और प्रभावशाली कहानियाँ बन पड़ी हैं।" (रामदरश मिश्र)

मन्नू भंडारी की पहली कहानी 'नया समाज' में 1954 ई. में प्रकाशित हुयी। लेकिन इन्हें ख्याति 'कहानी' पत्रिका में 1956 ई. में प्रकाशित 'मैं हार गई' से मिली। विगत पचपन वर्षों में इन्होंने लगभग साठ कहानियाँ लिखी है। उनके प्रकाशित कहानी संग्रह 'में हार गई', 'तीन निगाहों की तस्वीर', 'यही सच है', 'एक प्लेट सैलाब', 'त्रिशंकु', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' उल्लेखनीय है।

मन्नू भंडारी की कहानियों एक उपन्यासों में व्यक्ति और समाज संश्लिष्ट हैं और एकदम निजी और वैयक्तिक समस्याएँ कुछ ही कहानियों में उभरती हैं। कहानी लेखिकाओं में उनकी यदि अलग से पहचान दिखाई देती है तो उसका एक कारण यह भी है कि 'कथ्य' को सही और संतुलित ढंग से व्यक्त करने वाली भाषा उनके पास है। उनकी भाषा में व्यंग्य, लालित्य, कोमलता, आत्मीयता, चुभन, तलखी आदि का नपा-तुला और सार्थक प्रयोग है।

आज की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में नारी जीवन की संगतियों-विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के साथ परम्परागत जीवन-मूल्यों एवं शारीरिक पवित्रताओं की धारणाओं में विघटन का वर्णन यथार्थ दृष्टि से किया है। युगगत बदलती जीवन परिस्थितियों के कारण व्यक्ति आत्म केन्द्रित होता जा रहा है, वह व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को महत्व देता है। यही टूटता परिवेश तथा पारिवारिक संबंध इनकी कहानियों में चित्रित है। वैचारिक स्तर पर नयी और पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं का द्वन्द्व यंत्र-तंत्र दृष्टव्य है। यही वैचारिक द्वन्द्व परम्परागत मूल्यों के परिवर्तन का कारण बना है।

मन्नू भंडारी की कहानियों एवं उपन्यासों में किस्सागोई नहीं है, लेकिन कहानी पढ़ते- सुनने से मिलने वाला 'कथारस' इनकी कहानियों में सदैव मिलता है। इन्होने स्वप्न-विश्लेषण, पूर्व दीप्ति, फैंटेसी आदि आधुनिक शिल्पविधियों को अपनाया है, लेकिन कहानियों के रूपबन्धन में किसी प्रकार की जटिलता और उलझाव प्रायः नहीं हैं। इसीलिए इनकी कहानियों में पठनीयता का गुण अच्छी मात्रा में है। सामान्य पाठक इनमें रमता है।

5.15 भीष्म साहनी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय

भीष्म साहनी का जन्म सन् 1931 में रावल पिण्डी में हुआ। उन्होंने 1931 में मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की, 1933 में इण्टरमीडिएट। फिर लाहौर में 1931 में बी.ए. एवं अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। पहले व्यापार किया फिर अनरेरी रूप में शिक्षण कार्य किया। 1947 में दिल्ली आए। यहाँ साहित्य गोष्ठियों में जाने लगे। वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए। उनका कथन है 'साहित्य का जीवन से अटूट सम्बन्ध है लेकिन जीवन कोई अमूर्त अवधारणा नहीं है तरह-तरह के अनुभव, घटनाएँ, आपसी रिश्ते, मानव समाज के भीतर चलने वाले संघर्ष, विसंगतियाँ और अन्तरविरोध, विडम्बनाएँ आदि भी जीवन की परिधि में आते हैं।

भीष्म साहनी अत्यन्त कोमल, शालीन, मृदुभाषी एवं मितभाषी हैं। उनकी विदेश यात्राएँ रूस, चेकोस्लोवाकिया, इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, मिस्त्र, अंगोला, मोजाम्बिक आदि है।

उन्होंने निम्नलिखित पुरस्कार प्राप्त किये-1. लेखक शिरोमणि पुरस्कार, पंजाब सरकार द्वारा 1975 में, 2. साहित्य अकादमी पुरस्कार, तमस पर 1975, 3. प्रेमचन्द पुरस्कार तमस पर 1976, 4. दिल्ली साहित्य कला परिषद् द्वारा सम्मान 1980, 5. लोटस पुरस्कार 1980, 6. उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'वसंती' पर 1985 में, 7. हिन्दी-उर्दू साहित्य पुरस्कार लखनऊ 1990, 8. हिन्दी अकादमी दिल्ली 'मायादास की माड़ी' 1990।

5.16 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

- भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक निबन्ध लिखिए।
- भारतेन्दु के जीवनवृत्त का वर्णन करते हुए उनकी काव्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
- भारतेन्दु के कवित्व और जीवन का वर्णन कीजिए।
- भीष्म साहनी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।

- निर्मल वर्मा का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
- कथावस्तु, कथानक का गठन, कथानक का विकास और अन्त की दृष्टि से जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों की समीक्षा कीजिए।
- लक्ष्मीनारायण लाल के एकांकी साहित्य का परिचय देते हुए उनकी एकांकी कला का विवेचन कीजिए।
- जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी कला का सामान्य परिचय दीजिए और एकांकी नाटक के मुख्य तत्वों के आधार पर उनके एकांकी नाटक 'बन्दी' की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
- रामकुमार वर्मा के एकांकी साहित्य का परिचय दीजिए तथा उनकी एकांकी कला पर प्रकाश डालिए।
- जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी कला का सामान्य परिचय दीजिए और एकांकी नाटक के मुख्य तत्वों के आधार पर उनके एकांकी नाटक 'बन्दी' की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
- रामकुमार वर्मा के एकांकी साहित्य का परिचय दीजिए तथा उनकी एकांकी कला पर प्रकाश डालिए।
- भारतेन्दु के जीवनवृत्त का वर्णन करते हुए उनकी काव्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
- भारतेन्दु के कवित्व और जीवन का वर्णन कीजिए।
- "यथार्थ और आदर्श का समन्वय प्रेमचन्द की उपन्यास-कला की विशेषता है।" यह कथन 'गोदान' में चरितार्थ होता है। तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
- "प्रेमचन्द के साहित्य का उद्देश्य ही जन-जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना है और जितना वास्तविक चित्र गोदान में प्रस्तुत कर सके हैं, उतना वे अपने दूसरे उपन्यासों में नहीं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
- 'गोदान' उपन्यास लेखनोद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
- "प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उद्देश्य समाज-मंगल की भावना से प्रेरित है।" गोदान के आधार पर इस मत की व्याख्या कीजिए।
- होरी के चरित्र का विश्लेषणात्मक परिचय देते हुए उसके नायकत्व का परीक्षण कीजिए।
- "होरी आज भी समस्त भारतीय किसान-चेतना का जीवन पक्ष है।" इस कथन के आलोक में होरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
- "गोदान में पहली बार किसान को नायक का दर्जा मिला है।" नए परिप्रेक्ष्य में नए कथा नायक की उपस्थिति का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
- "गोदान' में नागरिक जीवन का निरूपण कथा-शिल्प की दृष्टि से भले ही अतिशेष हो, किन्तु वह भारतीय जीवन के समग्र चित्रण के लिए आवश्यक था।" उपर्युक्त कथन के औचित्य को प्रमाणित कीजिए।
- "गोदान तत्कालीन भारतीय समाज का दर्पण है।" इस कथन की विवेचना अथवा कीजिए।
- "गोदान' भारतीय किसान की त्रासदी का नाम है।" इस कथन की व्याख्या और विवेचना कीजिए।
- "गोदान के माध्यम से प्रेमचंद ने समसामयिक ग्रामीण और शहरी जीवन की सामाजिक विसंगतियों का चित्रण किया है।" इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
- "गोबर' नई पीढ़ी का ऐसा युवक है, जिस पर परम्परा संस्कारों का प्रभाव अत्यन्त है।" प्रस्तुत कथन के सन्दर्भ में गोबर का चरित्रांकन कीजिए।

- 'गोदान' के गोबर का चरित्र प्रस्तुत करते हुए बताइये कि नई पीढ़ी का कहाँ तक प्रतिनिधित्व करता है ?
- गोदान का गोबर सामाजिक शोषण और अन्याय के विरुद्ध उभरती हुई नई पीढ़ी के विद्रोह और असंतोष का प्रतिनिधि पात्र है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में गोबर का चरित्रांकन कीजिए।
- "धनिया होरी के जीवन का लंगर है यदि धनिया न हो तो होरी कब का उखड़ गया होता।" इस कथन के सन्दर्भ में धनिया की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

5.17 सारांश

निबन्ध-भारतेन्दुजी ने समाज सुधार, भारत की दुर्दशा के लिए अनेक निबन्ध लिखे। उनके मित्र मण्डल में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, अंबिकाराम इत्यादि प्रमुख है, उन्होंने इनसे अनेक निबन्ध लिखवाये।

धर्म-ग्रन्ध-भारतेन्दुजी वैष्णव भक्त थे। आप प्रेम-लक्षण-भक्ति में विश्वास करते थे। आपकी सभी रचनाओं में भक्ति का यह रूप मिलता है। भक्ति भावना से प्रेरित होकर भारतेन्दु ने 'भक्त-सर्वस्व', 'वैष्णव-सर्वस्व', 'वल्लभीय-सर्वस्व', 'त्वदीय सर्वस्व', 'भक्ति- सूत्र वैजयन्ती', 'सर्वोत्तम स्त्रोत भाषा', 'उत्तरार्द्ध भक्त-माल', 'उत्सवावला', 'वैशाख माहात्म्य' और 'अष्टादश पुराणोपक्रमणिका' की रचना की।

राज-भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ-भारतेन्दु ने राजनीतिपूर्ण रचनाएँ भी कीं। उनकी राजभक्ति अन्य राजभक्ति न होकर स्वस्थ आधार पर थी। ब्रिटिश राज्य की भलाई और बुराई दोनों पर उनकी दृष्टि थी। अंग्रेजी राज्य में भारत की जो उन्नति हुई, उसके वे प्रशंसक रहे, किन्तु अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध उन्होंने सदैव क्षोभ भी व्यक्त किया। ड्यूक के सम्मान में समर्पित 'सुमनांजलि' कृति राजभक्ति से पूर्ण है। इसके अतिरिक्त 'भारत वीरत्व', 'विजय वल्लरी', 'रिपनाष्टक', 'वैजयन्ती विजय वैजयन्ती' आदि कृतियाँ भी इसी प्रकार की हैं।

इतिहास-भारतेन्दुजी इतिहास के प्रेमी थे। उन्होंने सर्वप्रथम खोजपूर्ण इतिहास लिखने का प्रयास किया। आपके इतिहास सम्बन्धी कितने ही लेख एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुए। भारत के गौरवपूर्ण अतीत को चित्रित करने के साथ-साथ आपने मुहम्मद साहब तथा प्रान्नर, जर्मनी आदि के ऐतिहासिक पुरुषों का भी वर्णन किया है। 'काश्मीर कुसुम', बूंदी का राजवंश', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'खत्रियों की उत्पत्ति' एवं 'उदयपुरोदय' आदि आपको खोज पूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

कथा-साहित्य-कथा-साहित्य में भी भारतेन्दुजी पथ प्रदर्शक के रूप में आते हैं। कया साहित्य में भारतेन्दुजी अधिक न लिख सके, किन्तु अल्पायु में जो कुछ भी उन्होंने लिखा, वह महावपूर्ण है। 'रामलीला', 'हमीर हठ', 'राजसिंह', 'एक कहानी', 'कुछ आप बीती और कुछ जग बोती', 'सुलोचना', 'मरालसोपाख्यान', 'शीलावती', 'सावित्री-चरित्र' आदि को आपके कथा-

साहित्य के अन्तर्गत लिया जा सकता है। उपन्यासे-पूर्ण-प्रकाश, चन्द्रप्रभा, रामायण-समय, बादशाह दर्पण इत्यादि उल्लेखनीय व्यंग्य और हास्य रचनाएँ स्थापा, बन्दर समा, बकरी-विलाप, बसन्त-होली के अन्तर्गत 16 दोहों में वर्णन है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रेम, भक्ति इत्यादि सम्बन्धी दोहे, कवित्त, सवैये, गजल, पद, मुकरी, दोसुखने इत्यादि की रचना की। वे रसा के नाम से कविता लिखते थे।

प्रकाशन के क्षेत्र में सुन्दरी तिलक, पावस कवित्त संग्रह का प्रकाशन किया। उन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। साथ ही कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मेगजीन, बालाबोधिनी तथा भगवद्-भक्ति तोषिणी इत्यादि भी प्रकाशित की। राधा-कृष्णादास ने नाटक, आख्यायिका, उपन्यास, काव्य, स्त्रोत, अनुवाद या टीका, परिहास, धर्म सम्बन्धी इतिहास, राज-भक्ति सूचक व्याख्यान आदि बारह शीर्षकों में क्रमशः बीस, आठ, अट्ठाइस, सात, आठ, अठारह, जात, नौ, सत्ताइस, तेरह, अठारह, पचहत्तर अन्यों का योग करते हुए 248 रचनाओं का उल्लेख प्रेम- फुलवारी में किया है।

उनकी भाषा मंजी हुई, बृज रही है। व्याकरण सम्मत और मधुर है। मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग किया है, अपनी एक पुस्तक 'हिन्दीभाषा' में उन्होंने गद्य के अनेक उदाहरण दिये हैं, जिनमें संस्कृत बाहुल्य भाषा, अन्य य में संस्कृत के कम रूप उसमें तत्सम, तद्भव,

देशज शब्दों का बाहुल्य है, विदेशी शब्द भी है, वह अलंकृत एवं प्रसाद गुण से से सम्पन्न है, जहां उन्हें व्यग्य करना होता था, वहाँ वे कहावतों, मुहावरों का विशेष प्रयोग करते थे। विदेश शब्दों में, ग्रेजुएट, जुदा, कलाम, जहन्नुम, सल्लाह इत्यादि शब्द हैं।

5.18 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी उपन्यास - एक अंतर्यात्रा: रामदरश मिश्र
2. व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा राग दरबारी : नंदलाल कल्ला
3. राग दरबारी कृति से साक्षात्कार : चंद्रप्रकाश मिश्र
4. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय